।संभवतः इसी कारण। "इनकी।महाराज उदोत सिंह की। राजसभा को एक सौ कवि अलंकृत करते थे । महाकवि हरिसेवक मिश्र ने इनके आश्रय में ही "कामरूप कथा" नामक महाकाव्य का प्रणयन किया था । दिग्गज, धनराज, गोप कवि इनके ही कवि रत्नों में से थे ।[1] आलोच्य कृति "राजधर सतसई" के प्रणेता राजधर मिश्र भी इनके प्रमुख कवि रत्नों में से थे ।

"इन राजाओं के आश्रय में रहने वाले कवि भी राजरुचि को पहचान कर रसास्वाद की व्यावहारिक और सैद्धान्तिक प्रक्रिया को शास्त्रीयता प्रदान करते थे । आश्रयदाता के विनोद के लिए रसरीति की विस्तृति की जाती थी । शुद्ध शास्त्रीय पक्षों की अपेक्षा नायिका भेद, नखशिख और ऋतुवर्णन जैसे विषयों का विस्तार ही होता था । शास्त्रीय आवरण केवल आभिजात्य वैशिष्ट्य की दृष्टि से होता था । -- सामान्य राजा का आश्रित कवि शुद्ध विलास की दृष्टि से कवि कर्म या आचार्य कर्म में प्रवृत्त होता था ।"[2] राजधर जी भी इसके अपवाद नहीं हैं । "राजधर सतसई" में भी दरबारी- राजाश्रित - कविता की अ उपर्युक्त विशेषताएँ देखना शक्य हैं ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अभीष्ट
==========================

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अभीष्ट है - "राजधर सतसई का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन" । एतदर्थ, भरतमुनि कृत " नाट्यशास्त्र " से लेकर भानुदत्त कृत "रसमंजरी" तक विविध काव्यशास्त्रीय ग्रंथों को आधार बनाया गया है । किन्तु, पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रियों को आधार मानकर काव्यशास्त्र को विस्तृत-व्यवस्थित स्वरूप में प्रस्तुत करने का श्रेय विशेष रूप से साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज को है । इसके साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि रीतिकालीन कविगण भानुदत्त कृत "रसमंजरी"

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। ओरछा का इतिहास, लेखक ठाकुर लक्ष्मण सिंह, पृ0 - 12।

।2। रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि,
डॉ0 वेंकटरमणराव, पृष्ठ - 13।

से पर्याप्त प्रभावित रहे हैं । अतः, राजधर सतसई के काव्यशास्त्रीय अनुशीलन हेतु साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ एवं रसमंजरीकार भानुदत्त को प्रमुख आधार माना है । वैसे, हिन्दी काव्याचार्यों का काव्यशास्त्र में मौलिक योगदान तो नहीं है, किन्तु जहाँ कहीं राजधर इनसे प्रभावित हुए हैं, वहाँ निर्दिष्ट कर दिया गया है । इसके अतिरिक्त राजधर के व्यक्तिगत वैशिष्ट्य का भी यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है ।

इस प्रकार, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध शोध - साहित्य - श्रीवृद्धि में " गिलहरी प्रयास " मात्र है ।

::::::::::::::::::::
::::::::::::::::::::

अध्याय - 1

# सतसई का रूप विधान और परम्परा

## :-- सतसई का रूप विधान --:

### काव्य शैली के विभिन्न प्रकार :-

संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने काव्य का वर्गीकरण अनेक प्रकार से प्रस्तुत किया है ।

### भामह :-

सर्व प्रथम भामह ने अपने काव्यालंकार में रचना, भाषा, विषय एवं शैली के आधारों पर भेद प्रस्तुत किए ।

।1। रचना के आधार पर उसके दो भेद किए- ।1। गद्य ।2। पद्य

।2। भाषा के आधार पर तीन भेद किए- ।1। संस्कृत ।2। प्राकृत ।3। अपभ्रंश

।3। विषय के आधार पर चार भेद किए- ।1। इतिहास पर आधृत वृत्तदेवादिचरितशंसि ।चरित काव्य। ।2। उत्पाद्य ।कल्पित। वस्तु वाले काव्य ।3। कलाश्रय अर्थात कला प्रधान काव्य ।4। शास्त्राश्रय अर्थात शास्त्र प्रधान काव्य

।4। शैली के आधार पर उसके पाँच भेद किए- ।1। सर्गबन्ध ।महा काव्य। ।2। अभिनेयार्थ ।नाटकादि। ।3। आख्यायिका ।4। कथा ।5। अनिबद्ध ।मुक्तक।[1]

### दण्डी -

रचना के आधार पर आचार्य दण्डी ने गद्य पद्य के अतिरिक्त मिश्र काव्य संज्ञा से काव्य की एक नवीन विधा और जोड़ दी जो गद्य एवं पद्य का मिश्रित रूप ।चम्पू काव्य। है ।[2]

---

।1। शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्द्विधा । संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा ।। वृत्तदेवादिचरितशंसि चोत्पाद्यवस्तु च । कला शास्त्राश्रयं चेति चतुर्धा भिद्यते पुनः ।। सर्गबन्धो भिनेयार्थं तथैवाख्यायिकाकथे । अनिबद्धं च काव्यादि तत्पुनः पञ्चधोच्यते ।। ।भामह। काव्यालंकार 1/16-18

।2। पद्यं गद्यं च मिश्रं च तद् त्रिधैव व्यवस्थितम् । काव्यादर्श - दण्डी -1/11

उन्होंने पद्य काव्य के भी – मुक्तक कुलक, कोष, संघात तथा महा काव्य – उपभेद किए ।[1] गद्य काव्य के कथा और आख्यायिका नाम के दो उपभेद बताए ।[2] मिश्र काव्य के नाटकादि एवं श्रव्य-मिश्र चम्पू का उल्लेख किया ।[3]

**वामन –**

वामन ने काव्य के दो भेद माने हैं – (1) अनिबद्ध (2) निबद्ध । और कहा है कि प्रसिद्ध होने के कारण इनके लक्षण नहीं दिए जा रहे हैं ।[4] वामन ने निबद्ध के लिए सन्दर्भ और प्रबन्ध शब्दों का भी प्रयोग किया है । दश रूपक को (नाटकादि) उत्तम काव्य बताया है । काव्य के अन्य भेदों – कथा आख्यायिका, महाकाव्य आदि को भी दश रूपक का ही विस्तार कहा है ।[5]

**राजशेखर –**

राजशेखर ने मुक्तक और प्रबन्ध, द्विविध काव्य के पाँच-पाँच भेद और बताए हैं । (1) शुद्ध (2) चित्र (सपर्याय) (3) कथोत्थ (ऐतिहासिक इति वृत्त) (4) संविधान काव्य (सम्भावित इतिवृत्त) (5) आख्यानवान् (परिकल्पित इतिवृत्त) ।[6]

**आनन्दवर्धन –**

ध्वन्यालोक में प्रसंगवश काव्य के जिन भेदों का उल्लेख किया है उनमें भी मुक्तक और प्रबन्ध ये ही दो प्रधान भेद हैं ।[7]

---

(1) काव्यादर्श, दण्डी, – 1/14
(2) काव्यादर्श, दण्डी, – 1/23
(3) काव्यादर्श, दण्डी, – 1/31
(4) तदनिबद्धं निबद्धं च । काव्यालंकार सूत्र, वामन 1/3/27
तदिदं गद्यपद्यं काव्यमनिबद्धं निबद्धं च । अनयोः प्रसिद्धत्वाल्लक्षणं नोक्तम् ।
(5) काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, वामन 1/3/26-32
(6) काव्य मीमांसा, राजशेखर 108
(7) ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन– 3/7

विश्वनाथ :-

विश्वनाथ कविराज ने उक्त पूर्ववर्ती आचार्यों के आधार पर इस विषय में कुछ अधिक विस्तार किया है । साहित्य दर्पण के षष्ठ परिच्छेद में काव्य के दो भेद माने हैं - (1) दृश्य (2) श्रव्य । दृश्य काव्य को रूपक भी कहते हैं,[1] उसके दस भेद हैं ।[2] दस रूपकों के अतिरिक्त अठारह उपरूपक भी होते हैं ।[3]

दृश्य काव्य का निरूपण करने के पश्चात् श्रव्य को वर्गीकृत किया गया है । श्रव्य काव्य तीन प्रकार का होता है (1) पद्य (2) गद्य (3) गद्य-पद्य (चम्पू) ।

पद्य के पुनः दो प्रधान भेद होते हैं - (1) मुक्तक (2) प्रबन्ध गद्य-पद्यमय काव्य का जिसे चम्पू कहते हैं, विश्वनाथ ने एक विशिष्ट रूप विरुद बताया है । इसमें राज स्तुति की जाती है । अन्त में उन्होंने एक नवीन भेद 'करम्भक' का उल्लेख किया जो विविध भाषाओं में लिखा जाता है ।[4]

पद्य काव्य के भेद -

पद्य- छन्द रचना पद्य कहलाती है ।[5]
पद्य काव्य के दो प्रधान भेद हैं - (1) प्रबन्ध (2) मुक्तक ।

प्रबन्ध काव्य :-

भामह ने पद्यमय निबद्ध काव्य के भेद प्रभेद नहीं किए । उन्होंने एक मात्र प्रबन्ध काव्य - महाकाव्य - का लक्षण लिखा है । उनके अनुसार महाकाव्य महान व्यक्तियों से संबद्ध होता है और स्वयं भी महान होता है ।[6]

---

(1) साहित्य दर्पण, विश्वनाथ - 6/1
(2) साहित्य दर्पण, विश्वनाथ - 6/3
(3) साहित्य दर्पण, विश्वनाथ - 6/4-6
(4) साहित्य दर्पण, विश्वनाथ - 6/313-337
(5) छन्दोबद्धपदं पद्यं - साहित्य दर्पण, विश्वनाथ - 6/314
(6) सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्चयत् । काव्यालंकार, भामह 1/19

दण्डी ने सर्गबन्ध महाकाव्य के अतिरिक्त मुक्तक, कुलक, कोष और संघात को उल्लिखित किया है, किन्तु इनकी परिभाषायें न देकर इन्हें सर्गबन्ध काव्य के अंग रूप में स्वीकार किया है ।[1] वामन ने अनिबद्ध और निबद्ध के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा और न ही निबद्ध काव्य के किसी भेद का उल्लेख किया । साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ कविराज महाकाव्य के अतिरिक्त प्रबन्ध के काव्य[2] और खण्ड काव्य[3] भेद माने हैं । किन्तु सामान्यतः प्रबन्ध काव्य के दो ही भेद प्रचलित हैं । ।1। महाकाव्य ।2। खण्ड काव्य[4]

## :- महाकाव्य -:

महाकाव्य के स्वरूप और धारणा का बहुत विवेचन हुआ है । अग्निपुराण,[5] भामह[6], दण्डी[7], विद्यानाथ,[8] हेमचन्द्र,[9] आदि ने महाकाव्य सम्बन्धी लक्षणों का उत्तरोत्तर विकास किया ।[10] इनके पश्चात् संस्कृत के अन्तिम महाकाव्य सम्बन्धी धारणा का पूर्ण विकास साहित्य दर्पण में दिए हुए लक्षणों में देखने को मिलता है । जो निम्न लिखित है -

'पद्यकाव्य के प्रकारों में जो सर्गबन्धात्मक काव्य प्रकार है उसे महाकाव्य कहा करते हैं । ।चरित्र वर्णन की दृष्टि से। इस सर्गबन्ध रूप महाकाव्य में एक ही नायक का चरित्र चित्रित किया जाया करता है । यह नायक चाहे कोई देव विशेष हो, या प्रख्यात राजवंश का राजा हो ।

---

।1। काव्यादर्श दण्डी - 1/13
।2। साहित्य दर्पण, विश्वनाथ - 6/306
।3। साहित्य दर्पण, विश्वनाथ - 6/307
।4। काव्य के रूप- बाबू गुलाब राय पृ0-80
।5। अग्नि पुराण व्यास अध्याय 337, काव्यादि लक्षण
।6। काव्यालंकार भामह 1/19/02
।7। काव्यादर्श, दण्डी- 1/14-19
।8। प्रताप रुद्रयशोभूषण, विद्यानाथ काव्य प्रकरण पृ0-96
।9। काव्यानुशासन अध्याय-8, सूत्र 6 ।हेमचन्द्र।
।10। विस्तृत विवरण के लिए देखिए -काव्य शास्त्र, डा0 भगीरथ मिश्र पृ0-43-47

जिसमें 'धीरोदात्त' नायक के गुण विद्यमान रहा करते हैं। किसी-किसी महाकाव्य में एक राजवंश में उत्पन्न अनेक राजाओं को भी चरित्र चर्चा दिखाई देती है। (रसाभिव्यंजना की दृष्टि से) श्रृंगार, वीर और शान्त रसों में से कोई एक ही रस किसी महाकाव्य में 'अंगी' अथवा प्रधान रूप से परिस्फुट किया जा सकता है। इन तीनों रसों में से जो रस भी अंगी अथवा प्रधान रखा जाये, उसकी अपेक्षा अन्य सभी रस 'अंग' अथवा अप्रधान रूप से अभिव्यक्त किए जा सकते हैं। (संस्थान रचना की दृष्टि से) नाटक की सभी सन्धियाँ महाकाव्य में आवश्यक मानी गई हैं। (इतिवृत्त योजना की दृष्टि से) कोई भी ऐतिहासिक अथवा किसी महापुरुष के जीवन से सम्बद्ध कोई लोक प्रसिद्ध वृत्त कथा (कथा) वर्णित किया जा सकता है। जैसे तो (उपजीविता की दृष्टि से) महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय का काव्यात्मक निरूपण किया जाया करता है। किन्तु चरम फल के रूप में किसी एक का ही सर्वतोभद्र उपनिबन्ध सुनिश्चित-सुविदित माना गया है।

इन उपर्युक्त स्वरूप-संगत विशेषताओं के अतिरिक्त कतिपय अन्यान्य विशेषताएँ भी हैं जो सर्वमान्य रूप महाकाव्य में पायी जाती हैं। जैसे कि (1) महाकाव्य का आरम्भ मंगलात्मक हुआ करता है। यह मंगल या तो 'नमस्कारात्मक' हो या 'आशीर्वादात्मक' हो या 'वस्तु निर्देशात्मक' हो, महा कवि की इच्छा किंवा वर्ण्य विषय पर निर्भर है। (2) किसी किसी महाकाव्य में खलनिन्दा तथा 'सत्प्रशंसा' भी उपनिबद्ध रहा करती है। (3) प्रत्येक सर्ग में किसी एक वृत्त में पद्य रचना की जाया करती है। (4) आठ सर्ग से कम सर्ग महाकाव्य में नहीं हुआ करते हैं और वे सर्ग भी ऐसे हुआ करते हैं जो न तो बहुत छोटे हों और न बहुत बड़े। (5) किसी किसी महाकाव्य में भिन्न-भिन्न वृत्तों में भी बद्ध पद्यों से सर्ग निर्माण हुआ करता है। (6) किसी सर्ग के अन्त में उसके अगले सर्ग में आने वाले वृत्त की सूचना आवश्यक हुआ करती है। (7) सर्गबन्धात्मक काव्य में इन-इन विषयों का यथा स्थान किंवा यथा-सम्भव सांगोपांग वर्णन किया जाया करता है -

(1) सन्ध्या (2) सूर्य (3) चन्द्र (4) रात्रि (5) प्रदोष (6) अंधकार (7) दिन (8) प्रातःकाल (9) दोपहर (10) मृगया (11) पर्वत (12) ऋतु (13) वन उपवन (14) समुद्र (15) संभोग (16) विप्रयोग (17) मुनि (18) स्वर्ग (19) नगर (20) यज्ञ (21) संग्राम (22) यात्रा (23) विवाह (24) सामाप्रपाय बाकृत्य (25) पुत्रजन्म इत्यादि ।

(8) महाकाव्य का नाम कवि के नाम पर, वर्ण्य चरित के आधार पर, नायक के नाम के अनुसार अथवा इनके अतिरिक्त किसी अन्य आधार पर किया हुआ रहता है ।

(9) महाकाव्य के सर्ग का भी नाम रखा जाया करता है जोकि उसमें वर्ण्य वृत्त के अनुसार हुआ करता है ।

गद्य काव्य में संधिबंधक की रचना तो अनिवार्यतः हुआ करती है किन्तु सन्धंगों की रचना (अनिवार्य नहीं अपितु) उनकी उपयोगिता की दृष्टि से ही यत्र तत्र की जाया करती है।

यही सर्गबन्ध काव्य का प्रकार जिसे प्राचीन ऋषि कवियों ने रचा है सर्ग के बदले 'आख्यान' में विभाजित किया जा सकता है । यही महाकाव्य यदि प्राकृत भाषा में रचा गया हो तो सर्गों में रचित न होकर 'आश्वासों' में रचित हुआ करता है । इन आश्वासों में जो छन्द प्रयुक्त हुआ करते हैं वे अधिकतर 'स्कन्धक' अथवा 'गलितक' नाम के छन्द हुआ करते हैं । यही महाकाव्य यदि अपभ्रंश भाषा में रचा जाये तो उसमें 'सर्ग रचना के बदले 'कुडवक' की रचना हुआ करती है । इन कुडवकों में अपभ्रंश भाषा के योग्य अनेकानेक छन्द रचे जाया करते हैं ।[1]

डा० भगीरथ मिश्र ने साहित्य दर्पण में वर्णित महाकाव्य के लक्षणों को सात विभागों में व्यवस्थित किया है – (1) कथावस्तु (2) नायक (3) रस (4) छन्द (5) वर्णन (6) नाम (7) उद्देश्य ।[2]

---

(1) साहित्य दर्पण, विश्वनाथ –6/315–327 (हिन्दी व्याख्या डा० सत्य व्रत सिंह, पृ०– 549–554

(2) काव्य शास्त्र डा० भगीरथ मिश्र– पृ० 48–50

### 2. काव्य

आचार्य विश्वनाथ कविराज ने महाकाव्य और खण्ड काव्य के बीच की एक विधा 'काव्य' नाम से मानी है। काव्य पद्य प्रबन्ध का वह प्रकार है जो संस्कृत, प्राकृत, किंवा अपभ्रंश में निबद्ध किया जाया करता है। इसमें सर्गों का बन्ध आवश्यक नहीं और न ही सन्धियोजक की सम्पूर्ण रचना अपेक्षित है। इसकी रूप रेखा 'एकार्थ प्रवण' अर्थात् एक वृत्त अथवा चरित्र से सम्बद्ध पद्य सन्दर्भ से ही पूर्ण हो जाया करती है। उदाहरणार्थ- 'भिक्षाटन-काव्य' और 'आर्या विलास' आदि।[1]

### 3. खण्ड काव्य

प्रबन्ध काव्य का तीसरा भेद खण्ड काव्य या खण्ड प्रबन्ध है खण्ड काव्य के लक्षणों पर अधिक विस्तार से विचार नहीं किया गया परन्तु इसमें प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें कथावस्तु सम्पूर्ण न होकर उसका एक अंश ही होती है। प्रायः जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना या दृश्य का मार्मिक उद्घाटन होता है और अन्य प्रसंग संक्षेप में रहते हैं।[2]

साहित्य दर्पणकार के अनुसार - 'खण्ड काव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च'[3] अर्थात् खण्ड काव्य के ही एक अंश के रूप में होता है। साहित्य दर्पण के आधुनिक टीकाकार हरिदास सिद्धांत वागीश के अनुसार उक्त कारिका में चकार ग्रहण से महाकाव्य का भी आदेश हो जाता है। अतः खण्ड काव्य महाकाव्य के ही एक अंश के अनुकरण पर प्रणीत काव्य को कहते हैं।

---

(1) साहित्य दर्पण विश्वनाथ - 6/328
(हिन्दी व्याख्या डा० सत्य व्रत सिंह) पृ०- 554

(2) काव्य शास्त्र- डा० भगीरथ मिश्र पृ०-57

(3) साहित्य दर्पण, विश्वनाथ 6/329

:- मुक्तक -:
::::::::::

मुक्तक शब्द 'मुच्'[1] धातु से 'क्त' प्रत्यय जोड़ने पर निष्पन्न होता है और भूतकाल एवं कर्माश्रय के समानाधिकरण विशेषण का प्रत्यायन कराता है ।[2] इस प्रकार मुक्त शब्द विशेषण का कार्य करता है जिसका अर्थ है स्वतंत्र । मुक्त शब्द से संज्ञार्थ[3] में अथवा ह्रस्वार्थ[4] में 'कन्' प्रत्यय होने पर मुक्तक शब्द बनता है । इस प्रकार मुक्तक का अर्थ होता है - 'मुच्यते इति मुक्तकम् तदेव ह्रस्वं द्रव्यं मुक्तकम्' । अर्थात् लघु-कलेवर मुक्त पदार्थ मुक्तक कहलाता है ।

वैयाकृत शब्द कल्पद्रुकोष में मुक्तक का लक्षण इस प्रकार किया गया है ।

विनाकृतं विरहितं व्यवच्छिन्नं विशेषितम् ।
भिन्नं स्यादथ निर्लुंठं मुक्तकं पाति शोभनम् ॥

इस लक्षण के प्रथम चार शब्दों से सिद्ध है कि जो पद अर्थ पर्यवसान तथा रस चर्वणा में परापेक्षी न होकर स्वतः पूर्ण हो वह मुक्तक कहलाता है ।[5]

:- मुक्तक का महत्व -:
::::::::::::::::::::

वस्तुतः प्रबन्धकाव्य का और मुक्तक का अपने अपने स्थान पर महत्व है उनकी अपनी विशेषतायें हैं । कवि तद्युगीन परिस्थितियों के अनुसार ही उनका प्रयोग अपनी प्रतिभा से करता है । रीतिकाल में मुक्तकों का ही प्रयोग हुआ है । इस काल में मुक्तकों का प्रयोग क्यों हुआ ? इसको बताने से प्रथम हम मुक्तक की विशेषताओं को स्पष्ट करना उचित समझते हैं ।

---

।1। तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः । अष्टाध्यायी-पाणिनि - 3/4/70
।2। निष्ठा, वही - 3/2/102
।3। संज्ञायाम् कन् वही - 5/3/87
।4। ह्रस्वे, वही - 5/3/86
।5। गाथासप्तशती, डा० परमानन्द शास्त्री पृ० -16

प्रबन्ध काव्य में रस और चमत्कार प्रबन्धव्यापी होते हैं अतः रसानुभूति सम्पूर्ण काव्य पर निर्भर रहती है । किसी एक पद विशेष पर नहीं । इसलिए प्रबन्ध काव्य में प्रसार अधिक होता है और मुक्तक में गहराई । वस्तुतः, प्रबन्ध काव्य की रसपरता भी कुछ एक समाविष्ट भावमय स्थलों पर ही आश्रित रहती है और ऐसे स्थल अपने आप में पृथक स्वतंत्र काव्य इकाइयों के रूप में अस्तित्व रखने की सामर्थ्य रखते हैं । प्रबन्ध काव्य के कारण उनका महत्व नहीं होता बल्कि प्रबन्ध काव्य का महत्व उनके कारण होता है । जॉन ड्रिंक वाटर के अनुसार, "वस्तुतः काव्य गुण सम्पन्न कोई भी लम्बी कृति, चाहे वह नाटक हो या महाकाव्य पृथक-पृथक अनुभूतियों की एक श्रृंखला है जो उन्हें उद्बुद्ध करने वाली शक्ति से भिन्न किसी अन्य शक्ति द्वारा जोड़ी जाती है ।

> "Any long work in which poetry is persistent, be it epic or drama or narrative, is really a succession of separate experiences governed into a related whole by an energy distinct from that which evoked them."[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस धारा नहीं रहती जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय से एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है । इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है । इसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संगठित जीवन या उसके किसी एक अंश का प्रदर्शन नहीं होता, बल्कि कोई एक रमणीय खण्ड दृश्य इस प्रकार सामने ला दिया जाता है कि पाठक रस विभोर हो जाता है ।[2] अतः मुक्तक में रस की सान्द्रता अधिक होती है ।

मुक्तक का कलेवर लघु होने पर भी उसका अपना निजी महत्व है । प्रबन्ध काव्य का क्षेत्र विस्तृत होता है अतः विभाव, अनुभाव, संचारी का

---

(1) The Lyric, John Drinkwater - PP.54

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ0-247

वर्णन सुगमता से किया जा सकता है । किन्तु मुक्तक में इनका समाहार करना कठिन होता है । अतः कवि मुक्तक में अभिधा के स्थान पर व्यन्जना शब्द शक्ति से कार्य लेता है । जिसके कारण काव्य उत्तम कोटि में जा पहुँचता है ।

मुक्तक का आकार लघु होने से उसमें शब्द का प्रयोग अत्यन्त सावधान होकर करना पड़ता है । कहने का सीमित अधिकार होने के कारण कवि, चुस्त और समस्त शब्दों का ही प्रयोग करता है । इस प्रकार मुक्तकों में गागर में सागरभरा जाना कवि का अभीष्ट रहता है ।

इसके अतिरिक्त, कवि सम्मेलनों में प्रबन्ध काव्य पाठ करने वाला उपहास ही पा सकता है जबकि मुक्तक के द्वारा कवि अल्प क्षणों में वाह-वाही लूट सकता है ।

आचार्य शुक्ल के अनुसार प्रबन्ध काव्य यदि एक वन स्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता ।[1] महफिलों में वनस्थली उठाकर नहीं ले जायी जा सकती है वहाँ गुलदस्ता ही आवश्यक है ।

राजा भोज कवियों को मुक्त हस्त दान देते थे इसके सैकड़ों किस्से प्रचलित हैं । महाराज जय सिंह द्वारा प्रत्येक दोहे के लिए बिहारी को एक अशर्फी प्रदान की जाती थी । किन्तु इनमें एक भी ऐसा नहीं है जिसमें किसी कवि के महाकाव्य को सुनकर किसी ने इनाम दिया हो । संस्कृत एवं रीतिकालीन कवि मुक्तकों द्वारा ही अपने आश्रयदाता का सम्मान एवं पारितोषिक प्राप्त करते थे ।

रीतिकालीन परिवेश : मुक्तक

रीतिकाल में मुक्तकों की प्रधानता का बहुत कुछ श्रेय दरबारी परिवेश को है जिसमें क्षणिक अनुरंजन को विशेष महत्व दिया जाता था अल्प समय में अपनी पूरी तत्परता से श्रोता या पाठक की मन-बुद्धि को चमत्कृत कर देने वाले मुक्तकों का सामन्ती वातावरण में अत्यधिक सम्मान था । पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि दरबार में प्रभाव जमाने के लिए नाद तत्व का होना अनिवार्य होता था, अतः रीति कवियों ने कवित्त सवैया जैसे छन्दों को ही अपनी काव्याभिव्यक्ति का माध्यम चुना ।

---

आचार्य रामचंद्र शुक्ल · पृ० 247

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0247

दोहों में यद्यपि नाद तत्व उतना नहीं होता पर लक्षण को संक्षेप में कहने के लिए सबसे अधिक उपयोगी यही छन्द सिद्ध हुआ, अतः काव्य शास्त्र निरूपण में इसका उपयोग किया गया । दूसरे जिन हिन्दी कवियों को दो पंक्तियों वाले छोटे आकार से 'शेर' की प्रतिद्वन्द्विता करनी होती थी वे 'दोहा' सामने लाते थे और उसमें पूरी कारीगरी दिखाया करते थे ।[1]

उनका साहित्यिक परिवेश ऐसा था कि उसमें मुक्तक की उपयोगिता सिद्ध हुई । इन मुक्तकों का कला प्रधान और संगीत प्रधान होना अनिवार्य था । उन्होंने अनेक प्रकार की उद्भावनाएँ की हैं वे उनके लिए समय की गति से पिछड़ा थे ।[2]

## मुक्तक संग्रह के भेद -

वैदिक काल से ही मुक्तकों को लिखने की परम्परा प्रवहमान है एवं उनको संग्रहीत भी किया जाता रहा है । आचार्य विश्वनाथ ने पद्य के पाँच भेद निरूपित किए हैं । (1) मुक्तक- जिसके पद (अपने अर्थ में) अन्य किसी पद्य की आकांक्षा से 'मुक्त' अथवा स्वतंत्र हुआ करते हैं । (2) युग्मक- जिसमें दो पद्यों की रचना अर्थ ग्रहण में पर्याप्त मानी जाती है । (3) सांदानितक- जिसकी रचना तीन पद्यों में पूर्ण हो जाया करती है । (4) कलापक- जिसकी रूप रेखा पद्य - चतुष्क में पूर्ण हो जाती है । (5) कुलक- जिसमें पाँच पद्यों का एक 'कुल' दिखाई दिया करता है ।[3]

सा0द0 के अनुसार मुक्तकों के संग्रह को कोष कहते हैं । जिसमें सभी पद्य (मुक्तक) परस्पर स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं । उसके अनुसार कोष दो प्रकार का होता है । (1) व्रज्या क्रम रचित (2) अक्रम रचित । व्रज्या क्रम रचित कोष के उदाहरण रूप उन्होंने 'मुक्तावली' को उल्लिखित किया और 'व्रज्या' की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'सजातीयानामेकत्र सन्निवेशो व्रज्या' अर्थात् एक ही जाति के मुक्तकों का संग्रह 'व्रज्या' कहलाता है ।

---

(1) बिहारी, पं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र- पृ0 53-56
(2) वही पृ0 56
(3) सा0द0 विश्वनाथ - 6/314

सा0 द0, विश्वनाथ - 6/314

वज्जा लग्गं प्राकृत मुक्तक कोष में वज्जा अथवा व्रज्या का लक्षण देते हुए कहा गया है कि एक ही विषय से सम्बद्ध बहुत सी गाथाओं को एक ही प्रकरण में रखने के कारण इस ग्रंथ का नाम वज्जालग्गं है और वज्जा (सं० व्रज्या) पद्धति को कहते हैं ।[1]

वज्जा लग्गं में व्रज्या की जो परिभाषा प्रस्तुत की गई थी, समय पाकर उसकी परिधि में विस्तार हुआ । समान विषय से सम्बद्ध ही नहीं समान छन्द में रचित तथा समान ही अक्षर से प्रारम्भ होने वाले पद्य भी एक ही जाति के समझे जाने लगे । गाथा सप्तशती के अनुकरण पर रचित संस्कृत मुक्तक कोष आर्या सप्तशती में अकारादि क्रम से व्रज्याओं का विधान किया गया है । और समान अक्षर से प्रारम्भ होने वाली सभी आर्याओं को चाहे उनका प्रतिपाद्य विषय कुछ भी हो, एक ही व्रज्या के अन्तर्गत रखा गया है ।[2]

आचार्य विश्वनाथने व्रज्या क्रम से संकलित कोष को जो श्रेष्ठ समझा है ।[3] उसका कारण यही है कि विषय अथवा छन्द के निरन्तर परिवर्तित न होने के कारण रसास्वादन में अविच्छिन्न सामरस्य अथवा एकरूपता बनी रहती है । यह आवश्यक नहीं है कि कोष में संगृहीत पद्य किसी एक ही कवि की रचना हों अनेक कवियों की रचना भी कोष कहलाती है ।

मुक्तकों को संग्रह करने का दूसरा आधार है - संख्या । इसमें कोषकार को किसी संख्या विशेष का प्रतिबन्ध नहीं रहता है । पंचक, अष्टक, शतक, सतसई, हजारा आदि मुक्तकों की संख्या पर ही आधृत कोष हैं ।

---

(1) वज्जा० -4

(2) गाथा सप्तशती, डा० परमानन्द शास्त्री- पृ० 36-37

(3) सा०द० विश्वनाथ- 6/329

मयूर कवि ने शृंगार रस के आठ पद्यों का कोष रचा है जो 'मयूराष्टक' के नाम से जाना जाता है । भर्तृहरि ने अपनी नीति, शृंगार एवं वैराग्य सम्बन्धी उक्तियों को शतक में बाँधा है । अमरुक ने अपनी शृंगारिक उक्तियों को शतक में संग्रह किया । मूक कवि ने पाँच सौ पद्यों को 'मूक पंचशती' में संग्रहीत किया । इत्यादि ।

## सतसइयों का रूप विधान एवं परम्परा

सतसइयों की एक सुदीर्घ परम्परा है । प्राकृत भाषाओं के प्रचलन के समय से ही 'सतसई' परम्परा का प्रादुर्भाव हो चुका था । यद्यपि कतिपय विद्वान संस्कृत की 'आर्या सप्तशती' को इस परम्परा का प्रारम्भिक ग्रन्थ मानते हैं, किन्तु 'गाहा सत्तसई' का प्रभाव आर्या पर भी देखा जा सकता है । सतसई परम्परा में समय-समय पर युगानुकूल परिवर्तन होते रहे । जैसे, सतसइयों का प्रमुख विषय शृंगार ही रहा किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी सतसइयों की रचना हुई । इस सतसई परम्परा को सुविधा के दृष्टि से हम तीन भागों में विभक्त करके विवेचन करेंगे ।

(1) प्राकृत

(2) संस्कृत

(3) हिन्दी

### (1) प्राकृत की सतसई-परम्परा

सतसई परम्परा के प्रारम्भिक चरण (प्राकृत काल में) जिन रचनाओं का उल्लेख किया जाता है, उनमें दो प्रमुख हैं -

(1) गाहा सत्तसई (गाथा सप्तशती)

(2) वज्जालग्गं

### (1) गाथा सप्तशती

सतसई परम्परा का सर्व प्रथम ग्रंथ प्राकृत भाषा में रचित सात वाहन हाल की गाथा सप्तशती है । इसमें कवि हाल ने कोटि गाथाओं में से सात सौ गाथाओं को (चुनकर) संग्रहीत किया है ।[1]

---

(1) गाथा सप्तशती, सातवाहन हाल- 1/3

इन गाथाओं के रचयिताओं के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है । भुवन पाल ने गाथा सप्तशती की टीका में उसके रचयिताओं की संख्या 384 लिखी है ।[1] पिशेल के मतानुसार प्राकृत की गाथाओं की रचना में कवियित्रियों का भी योगदान है ।[2] गाथा सप्तशती में संगृहीत गाथाओं के कतिपय रचयिताओं के नाम- प्रवरसेन, सर्वसेन, मान, देव अथवा देवराज, वाक्पति राज, कर्ण अथवा कर्णराज, अवन्ति, वर्म्मन, ईशान, दामोदर, मयूर, पद्म स्वामी, वल्लभ अथवा भट्ट वल्लभ, नरसिंह, अरि केसरी, वत्स, वत्सराज अथवा वत्स भट्टी आदि वराह, माउर देव, विग्रह, धनंजय, कपिराज, सिंह, अमित, माधव सेन, शशि प्रभा, नरवाहन- हैं ।[3] इसमें कुछ रचनाएँ हाल द्वारा रचित हैं ।[4]

डा० परमानन्द शास्त्री ने अपने शोध प्रबन्ध में विश्लेषण करने पर रूप विधान की दृष्टि से गाथा सप्तशती की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है -

(1) यह एक अक्रम रचित मुक्तक कोष है । विभिन्न जाति के पद्यों का मधु-मधु संग्रह है ।

(2) इसका नाम संगृहीत मुक्तकों की संख्या पर आधारित है । इस प्रकार के उपलब्ध कोषों में यह सर्व प्रथम है ।

(3) इसमें किसी एक विषय की उक्तियाँ नहीं हैं । अपितु शृंगार, नीति, खल निन्दा, सज्जन प्रशंसा राज प्रशस्ति, देवनमस्कृति, प्रकृति चित्रण आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ संगृहीत हैं, जिनमें शृंगार का बाहुल्य है ।

(4) इसके 700 पद्य सात शतकों में विभक्त हैं । प्रत्येक शतक के अन्त में उसकी समाप्ति सूचक पुष्पिका के रूप में एक अलग गाथा दी गई है, जिसमें इस कृति तथा कर्ता का नामोल्लेख हुआ है ।

(5) इस कोष में प्रारम्भ से अन्त तक एक ही छन्द (गाहा, सं० गाथा) प्रयुक्त हुआ है, जो मात्रिक वृत्त है तथा लघु कलेवर है ।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) देखिए, हिन्दी गाथा सप्तशती पृ०- 5-12
(2) प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, आर० पिशेल (अनु० डा० हेमचन्द्र जोशी) पृ०-21
(3) हिन्दी गाथा सप्तशती पृ०- 9-12
(4) काव्यमाला 21, गाथा सप्तशती- सं० साहित्याचार्य भट्ट श्री मथुरा नाथ शास्त्री पृ०-2
(5) गाथा सप्तशती-डा० परमानंद शास्त्री पृ०- 38

(2) वज्जालग्गं

प्राकृत की दूसरी सतसई का नाम है- वज्जालग्गं । यह जयवल्लभ द्वारा संगृहीत मुक्तकों का कोष है । इसकी रचना गाथा सप्तशती के आधार पर हुई है । गाथा सप्तशती की लगभग सौ गाथायें भी इसमें संगृहीत हैं तथा उसकी साठ प्रज्याओं में से पच्चीस वज्जालग्गं से मेल खाती है । गाथा सप्तशती के समान यह भी कई कवियों की रचनाओं का संग्रह है ।[1] जिन कवियों की रचनायें इसमें संगृहीत हुई हैं वे भी विभिन्न कालों में प्रादुर्भूत हुए थे । विषय की दृष्टि से इसमें भी अनेक विषयों से सम्बन्धित उक्तियाँ हैं, किन्तु शृंगार का प्राधान्य है ।

रूप विधान -

(1) वज्जालग्गं मूल से ही क्रम रचित कोष है । जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें क्रम व्यवस्था को ही महत्व प्रदान किया गया है ।

(2) वज्जालग्गं का नामकरण क्रम व्यवस्था के आधार पर हुआ है ।

(3) वज्जालग्गं की व्युत्पत्ति करते हुए पिशेल ने अपने प्राकृत व्याकरण में लिखा है कि यह शब्द, प्रज्या और लग्ग-लग्न (चिन्ह) से बना है ।[2] वज्जालग्गं की विभिन्न प्रतियों में उसका शीर्षक भी विभिन्न पाये जाते हैं- विज्जालग्गं, वज्जालग्गं, पद्यालयं और पज्जालयं ।[3]

(4) यद्यपि वज्जालग्गं के विभिन्न संस्करणों में 795, जिनमें से 3 की पुनरावृत्ति हुई है अतः वस्तुतः पद्यों की संख्या 792 ही हुई । किंतु कतिपय विद्वानों का अभिमत है कि मूल प्रति में 700 पद ही होंगे ।[4]

---

(1) वज्जा० -3
(2) प्राकृत व्याकरण, पिशेल, नियम- 12
(3) गाथा सप्तशती डा० परमानंद शास्त्री - पृ०-39
(4) वज्जालग्गं की भूमिका, जुलियस लेबर पृ०-8

। ।5। यद्यपि इसमें विभिन्न विषयों से सम्बन्धित उक्तियाँ संकलित हैं तथापि श्रृंगार का ही प्राधान्य है ।

वज्जालग्गं के रूप विधान को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि इसमें भावपक्ष एवं कला पक्ष पर गाथा सप्तशती का पर्याप्त प्रभाव है । इस प्रकार वज्जालग्गं सतसई परम्परा की द्वितीय कड़ी है ।

।2। संस्कृत की सतसई परम्परा

<u>आर्या सप्तशती ।गोवर्धनाचार्य विरचित।</u>

संस्कृत साहित्य में सतसई परम्परा के अन्तर्गत सर्व प्रथम ग्रंथ गोवर्धनाचार्य प्रणीत आर्या सप्तशती है । आर्या सप्तशती की रचना का मूलाधार गाथा सप्तशती ही है, अतः इसका रूप-विधान भी गाथा सप्तशती के रूप विधान से पर्याप्त साम्य रखता है ।

आर्या सप्तशती एक ऐसा मुक्तक कोष है, जो न तो गाथा सप्तशती की भाँति अक्रम रचित ही है, न वज्जालग्गं के समान क्रम रचित । उसमें विषय पर आधृत वर्गीकरण भी नहीं है, अपितु इसकी रचना आर्या छन्द में अकारादि वर्णानुक्रम में ही की गई है । 'अतः वज्जालग्गं में व्रज्या की जो परिभाषा दी गयी है आर्या सप्तशती की व्रज्यायें उसके अनुसार संपादित नहीं हुई क्योंकि उनमें एकार्थ प्रस्ताव विषयक लक्षण का अनुसरण न करके समान अक्षर से प्रारम्भ होने वाली विभिन्न अर्थों और प्रसंगों की द्योतक आर्याओं को एक व्रज्या के अन्दर रखा गया है, अतः विश्वनाथ की परिभाषा के अन्तर्गत 'सजातीय' शब्द को नया दृष्टिकोण दिए बिना उसकी परिभाषा की परिधि में भी आर्या सप्तशती की व्रज्याओं को नहीं लिया जाता । उसके लिए हमें समान अक्षरों से प्रारम्भ होने वाले पद्यों को भी सजातीय मानना पड़ेगा, जो ही यह बात विचित्र सी लगती है । इस प्रकार गोवर्धनाचार्य ने व्रज्या विषयक धारणा को नई दृष्टि दी ।[1]

गाथा सप्तशती एवं वज्जालग्गं की भाँति आर्या सप्तशती एक सम्पादित ग्रन्थ न होकर अपितु एक व्यक्ति ।गोवर्धनाचार्य। की मौलिक रचनाओं का उसी के द्वारा किया गया संग्रह है । इसमें 756 श्लोक संग्रहीत हैं ।

---

।1। गाथा सप्तशती- डा० परमानंद शास्त्री पृष्ठ- 41

प्रारम्भ में 54 श्लोकों में मंगला चरण, तथा पूर्ववर्ती कवियों की स्तुति की गई है एवं आर्या सप्तशती का प्राकथन किया गया है । मुख्य भाग में 702 आर्या छन्द हैं । इन्हें गाथा सप्तशती के सदृश शतकों में विभाजित नहीं किया गया है । अकार, व्रज्या, आकार व्रज्या आदि शीर्षक देकर सम्पूर्ण सप्तशती के 696 श्लोकों को 34 भागों में विभाजित किया गया है । अन्त में 6 श्लोकों में अपनी रचना के सम्बन्ध में कथन किया गया है ।

यद्यपि इसमें खलनिन्दा, सत्पुरुष प्रशंसा, नीति विषयक अन्योक्तियाँ राज प्रशस्ति आदि विषयों से सम्बन्धित अनेक पद्य संगृहीत हैं, तद्यपि श्रृंगार का ही प्राधान्य है ।

गोवर्धनाचार्य प्रणीत आर्या सप्तशती संस्कृत साहित्य की अपूर्व निधि है । हिन्दी की रीतिकालीन सतसइयों पर इसका पूर्ण प्रभाव देखा जा सकता है । बिहारी एवं मतिराम ने अनेक आर्याओं के भावों को ज्यों का त्यों ग्रहण कर ब्रजभाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।[1]

श्री मद्भगवद्गीता और दुर्गा सप्तशती

यद्यपि ये रचनाएँ स्वतंत्र रूप से नहीं लिखी गई है, न ही इनका प्रभाव रीति कालीन सतसईयों पर दृष्टिगोचर होता है, तद्यपि संस्कृत सतसई परम्परा के अन्तर्गत इनका उल्लेख करना अनुपयुक्त नहीं होगा ।

(3) श्री मद्भगवद्गीता - गीता को महाभारत के पर्व के अन्तर्गत 25वें अध्याय से 43 वें अध्याय तक रचित 18 अध्यायों को रूप दे दिया गया है । इसमें लगभग 700 श्लोक हैं इसे सतसई परम्परा के अन्तर्गत माना जा सकता है ।

---

(1) रीति कालीन श्रृंगारिक सतसईयों का तुलनात्मक अध्ययन, डा0 पुष्प लता पृ0-29

**(8) दुर्गा सप्तशती**

दुर्गा सप्तशती में 700 श्लोक हैं । यह भी स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं लिखा गया मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत देवी माहात्म्य नामक पृथक अंश है, जो दुर्गा सप्तशती के नाम से प्रसिद्ध है । मार्कण्डेय पुराण के अध्याय 81 से 93 तक 13 अध्यायों में देवी का माहात्म्य वर्णित है ।

गीता एवं दुर्गा सप्तशती की रचना अन्य सतसइयों की भाँति मुक्तक काव्य के रूप में नहीं हुई । आद्यन्त कथा सूत्र गतिशील है ।

इन दोनों ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि लौकिक साहित्य की भाँति धार्मिक साहित्य में भी सतसई परम्परा को महत्व प्रदान किया गया ।

**आर्या सप्तशती (पं० विश्वेश्वर विरचित)**

संस्कृत सतसई परम्परा में एक अन्य 'आर्या सप्तशती' परिगणित की जाती है, जिसके रचयिता नेपाल देश के पर्वतीय श्री विश्वेश्वर पण्डित हैं ।

इस आर्या सप्तशती में 764 श्लोक हैं । प्रथम 72 श्लोक मंगला चरण देव स्तुति, पूर्व कवि स्तुति आदि से सम्बन्धित हैं । तत्पश्चात अकारादि वर्णानुक्रम में शेष श्लोक रखे गए हैं । इस सतसई की विशेषता यह है कि पं० विश्वेश्वर जी प्रत्येक श्लोक से सम्बन्धित सर्ग तत्सम्बन्धित श्लोक से पूर्व निर्दिष्ट करते हुए, इसकी टीका स्वयं ही संस्कृत में लिखी है ।

यह भी श्रृंगार प्रधान सतसई है । इसके कतिपय श्लोक गाथा सप्तशती से भी भाव साम्य रखते हैं । उदाहरणार्थ- '(पानी पिलाने वाली)' प्रपालिका को देखकर पथिक कैतारिक भाव हो आया और वह भी उसकी ओर अनुरागवती होकर पानी की धारा को पतली करने लगी ।[1]

इस आर्या के भाव का गाथा सप्तशती की निम्नलिखित गाथा से 000 साम्य देखा जा सकता है ।

'प्रपालिका (प्याऊ लगाने वाली) के सौन्दर्य का पान करने में मग्न पथिक अपनी अंजलि में छेद करके पानी को निकालता रहता है और उसकी ओर आकृष्ट प्रपालिका भी अत्यन्त पतली धारा से जल डालती है ।[2]

---

(1) आर्या सप्तशती पं० विश्वेश्वर- आर्या-22।
(2) गाथा सप्तशती हाल 2/3।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ के वर्णन अपनी मौलिक अभिव्यक्ति से सम्पन्न है । उदाहरण के लिए संयोग श्रृंगार का एक श्लोक समीक्षणीय है—

रमणीनां कुच मुकुलौ परि निदधाने करं पितौ ।
मुकुली भवतो नयने अपि, तत्स्पर्शोत्सुकतयैव ।।[1]

अर्थात् स्त्रियों के मुकुलित कुचों के ऊपर प्रिय हाथ रखता है । उस समय नेत्र भी मुकुलित हो जाते हैं कि प्रिय का स्पर्श हमें भी प्राप्त हो ।

इस आर्या में नायिका के नेत्रों के बन्द हो जाने की उत्प्रेक्षा अपने आप में मौलिक है ।

पर्वतीय श्री विश्वेश्वर पंडित की आर्या सप्तशती सतसई परम्परा की एक कड़ी है । कालक्रमानुसार यह रीति कालीन है । पर यह ग्रंथ संस्कृत में रचित है, अतः यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

## (3) हिन्दी सतसई परम्परा

हिन्दी की सतसई परम्परा का रचना क्रम सत्रहवीं शती से बीसवीं शती तक बिखरा हुआ है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल वर्गीकृत हिन्दी साहित्य के काल क्रमानुसार उनका परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है :-

(1) <u>भक्ति कालीन सतसइयाँ (संवत 1375-1700)</u>

(अ) तुलसी सतसई (ब) रहीम सतसई

(2) <u>रीति कालीन सतसइयाँ (संवत 1700-1900)</u>

बिहारी सतसई, रस निधि सतसई, मतिराम सतसई, वृन्द सतसई, (रामधर सतसई, राम सतसई और विक्रम सतसई ।

(3) <u>आधुनिक कालीन सतसइयाँ (1900 से निरन्तर)</u>

हरि औध सतसई, वीर सतसई, (वियोगी हरि विरचित), किसान सतसई, ओज सतसई, व्रज सतसई, दयाराम कृत सतसैया, और पंकिल सतसई

---

(1) आर्या सप्तशती, पं० विश्वेश्वर - 669

प्रत्येक साहित्यकार की कृति देश, काल और परिस्थिति से प्रभावित होती है । भक्तिकाल जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि भक्ति का प्राधान्य होने से इस काल में रचित तुलसी सतसई में भक्ति तथा रहीम सतसई में नीति विषयक दोहे हैं । रीतिकाल का एक नाम शृंगार काल भी है । इस काल में शृंगार की प्रधानता रही है । रीति कालीन [illegible] सतसईकार राजाश्रित कवि थे । उन्होंने राज दरबार के अनुकूल शृंगारिक सतसइयों का प्रणयन किया, जिसकी विस्तृत चर्चा आगे की गयी है । आधुनिक काल में विविध विषयों पर साहित्यकारों ने लेखनी उठाई है । अतः इस काल में विरचित सतसइयों में भी विषय वैविध्य दृष्टिगोचर होता है ।

## भक्ति कालीन सतसइयाँ

### (1) तुलसी सतसई-

हिन्दी सतसई परम्परा का श्री गणेश 'तुलसी सतसई' से होता है । संवत 1642 वि0 में [1] प्रणीत सतसई में 747 दोहे संकलित हैं । हिन्दी में तुलसीदास जी ने ही सतसई परम्परा का सूत्रपात किया ।

यह सतसई सात सर्गों में विभाजित है । प्रथम सर्ग में भक्ति का प्रतिपादन है । तुलसी राम भक्त हैं अतः वे राम लक्ष्मण जानकी का ध्यान कल्याणमय एवं कल्पवृक्ष मानते हैं —

> राम बाम दिसि जानकी, लखन दाहिनी ओर ।
> ध्यान सकल कल्यानमय, तुलसी सुरतरु तोर ।।[2]

तुलसीदास जी का रामचन्द्र जी के प्रति अनन्य प्रेम है । जिस प्रकार चातक स्वाति बूँद से अन्यथा जल ग्रहण नहीं करता उसी प्रकार तुलसीदास जी के लिए श्री राम जी का ही अवलम्बन है उन्हीं का बल है, उन्हीं से आशा है और उन्हीं का विश्वास है —

> एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास ।
> स्वाति सलिल रघुनाथ घर, चातक तुलसीदास ।।[3]

---

(1) अहि रसना थन-धेनु-रस, गनपति द्विज गुरुवार ।
माधव सित सिय जनम तिथि, सतसइया अवतार ।। (तुलसी सतसई-दो02)

(2) तुलसी सतसई दो0-2 (3) तुलसी सतसई दो0-107

तुलसी सतसई का द्वितीय सर्ग उपासना एवं भक्ति से सम्बन्धित है। उन्होंने राम भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना है।[1] भक्ति हेतु गुरु महात्म्य अपरिहार्य है।[2] अन्तःकरण के विकारों का उन्मूलन से दया धर्म आदि सद्भावों का प्रकटीकरण होता है।[3]

तृतीय सर्ग में 'राम-भजन' से सम्बन्धित है। उनके मतानुसार भव सागर से तरण हेतु राम भजन अनिवार्य है।[4]

चतुर्थ सर्ग में आत्मबोध का विवेचन है। उनके अनुसार वासना के विनष्ट होने पर ही भक्ति सम्भव है।[5] जिसके लिए भगवत ध्यान एवं तप की आवश्यकता है।[6]

पंचम सर्ग में कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन है। छठे सर्ग में ज्ञान सिद्धान्त को निरूपित किया गया है, जिसमें वेदों का ज्ञान परमावश्यक बताया गया है।

सप्तम सर्ग राजनीति से सम्बन्धित है, जिसमें नीति एवं सदाचार का प्राधान्य है। तथा सत संगति के महात्म्य का प्रतिपादन है।[8]

इस प्रकार 'तुलसी सतसई' एक आध्यात्मिक सतसई है। संस्कृत सप्तशती की विषय सापेक्ष परम्परा से यह बहुत पृथक है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ।1। | तुलसी | सतसई - | 'तुलसी | सप्तक- | दो0सं0- | 149 |
| ।2। | " | " | " | " | " | - 196 |
| ।3। | " | " | " | " | " | - 212 |
| ।4। | " | " | " | " | " | = 235 |
| ।5। | " | " | " | " | " | - 389 |
| ।6। | " | " | " | " | " | - 316 |
| ।7। | " | " | " | " | " | - 611 |
| ।8। | " | " | " | " | " | - 639 |

**(2) रहीम सतसई-**

तुलसी की भाँति रहीम ने भी उपदेश प्रधान दोहों की सतसई लिखी थी, परन्तु उसके सम्पूर्ण दोहे उपलब्ध नहीं हैं ।

पं० माया शंकर याज्ञिक ने रहीम-सतसई की भूमिका में 'दोहा सार संग्रह' एवं 'गुण गंज नामा' नामक दो ग्रन्थों की ओर संकेत किया है । इनमें दोहा सार संग्रह तो सं० 1720 (लगभग) रचा गया था और 'गुण गंज नामा' के विषय में कुछ ज्ञात नहीं हो सका । इन संग्रह ग्रन्थों में भी कुछ ऐसे दोहे हैं जिनमें या तो रहीमका नाम ही नहीं है या किसी अन्य कवि का नाम दे दिया गया है ।[1] 'रहीम रत्नावली' में लेखक ने रहीम से सम्बन्धित दोहों को लिया है । यदि कुछ अन्य दोहे भी लिए हैं, तो संदिग्ध दोहों पर टिप्पणी दी है । इस प्रकार 'रहीम रत्नावली' में दोहों की संख्या लगभग 277 है ।[2]

'रहीम सतसई' में मानव जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित नीति परक दोहों का संग्रह किया गया है । इसके दोहे अनुभूति जन्य, मार्मिक एवं व्यवहारिक ज्ञान से युक्त हैं ।

---

(1) रहीम सतसई की भूमिका- ले० पं० मायाशंकर याज्ञिक पृ०- 3।
(2) रहीम रत्नावली- ले० पं० माया शंकर याज्ञिक पृ०- 24

## रीति कालीन सतसइयाँ

### बिहारी सतसई -

'बिहारी-सतसई' हिन्दी सतसई साहित्य का सर्वश्रेष्ठ रत्न है, जिसके अक्षय प्रकाश से अन्य सतसइयाँ, उसी प्रकार हतप्रभ हो जाती हैं, जिस प्रकार चन्द्रमा के समक्ष नक्षत्र मण्डल ।

#### रचना-काल-

नव परिणीता रानी के मोह पाश से, आमेर नरेश महाराज जय सिंह को निवृत्त करने हेतु बिहारी का प्रसिद्ध दोहा 'नहि परागु' से बिहारी सतसई की रचना का प्रारम्भ सं० 1692 (लगभग) माना जा सकता है ।[1] महाराज के पुत्र रामसिंह के 7-8 वर्ष का होने पर शिक्षक नियुक्त होने पर, और उसके लिए बिहारी द्वारा 500 दोहों का संग्रह तैयार करना, तथा कुछ वर्षों बाद ही सतसई की रचना समाप्त करके उसे महाराज जयसिंह को समर्पित करने में 18 वीं शती का प्रारम्भ होना स्वाभाविक है ।[2] डा० गणपति चन्द्र गुप्त के मतानुसार बिहारी ने इससे पूर्व (सं० 1692) बहुत से दोहे लिखे होंगे, किन्तु उन्हें बाद में सतसई में ही मिला दिया होगा ।[3]

इस प्रकार बिहारी सतसई का रचना काल सं० 1692 से 18 वीं शती का प्रारम्भ सिद्ध होता है ।

इस सतसई में 713 दोहे हैं । "बिहारी के काव्य पर चाहे ध्वनि काव्य की दृष्टि से विचार करें, चाहे रस-परिपाक की दृष्टि से, चाहे अलंकार योजना को लें, चाहे नायिका भेद या नख शिख पर दृष्टिपात करें अथवा अन्योक्ति और सूक्ति का अवगाहन करें, बिहारी का काव्य सभी दृष्टियों से अनुपम प्रतीत होता है । उनके काव्य में शक्ति और निपुणता का चरम विकास संभव हुआ है ।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) बिहारी की वाग्विभूति- विश्वनाथ प्रसाद- पृ० सं०4

(2) बिहारी वैभव- डा० भगीरथ मिश्र- पृ० सं० 9-10

(3) हिन्दी काव्य में श्रृंगार परम्परा और महा कवि बिहारी डा० गणपति चन्द्र गुप्त- (खण्ड-4) पृ०-9

(4) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग-6, सं० डा० नगेन्द्र पृ०-402

'श्रृंगार रस के ग्रन्थों में जितनी ख्याति और जितना मान बिहारी सतसई का हुआ उतना और किसी का नहीं । इसका एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य में एक-एक रत्न माना जाता है । इसकी पचासों टीकाएँ रची गईं । ---- बिहारी का सबसे उत्तम और प्रामाणिक संस्करण बड़ी मार्मिक टीका के साथ, प्रसिद्ध साहित्य मर्मज्ञ और ब्रजभाषा के प्रधान आधुनिक कवि बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ने निकाला । जितने श्रम और जितनी सावधानी से यह संपादित हुआ है, आज तक हिन्दी का और कोई ग्रंथ नहीं हुआ ।[1]

यह सतसई प्राकृत और संस्कृत की सतसई परम्परा के अधिक निकट है । तुलसी ने जो विषय प्रतिपादन की दृष्टि से भक्ति और नीति परकता का मोड़ दिखाया था वह अब नहीं चला और श्रृंगार की प्राचीन परम्परा पुनः उभर कर सामने आयी ।

---

<u>रस-निधि सतसई-</u>

'रसनिधि सतसई के रचयिता का वास्तविक नाम पृथ्वी सिंह था । इन्होंने बिहारी सतसई के अनुकरण पर 'रतन हजारा' नामक दोहों का एक ग्रंथ बनाया ।[2] जिसके उत्कृष्ट दोहों का अध्ययन करके 'रसनिधि' सतसई की रचना की गई । इसका रचना काल संवत 1660 से 1717 के मध्य माना जाता है ।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल- पृ0 238
[2] " " " " " " - पृ0 326
[3] " साहित्य कोष भाग-2 पृ0 448

शृंगार वर्णन ही इनका मुख्य विषय था। इन्होंने रीतिबद्ध लक्षण ग्रंथ न लिखकर फारसी शायरी की शैली पर इश्क की विविध भावनाओं और चेष्टाओं का विस्तार किया।[1] फारसी की आशिकी कविता के शब्द भी इन्होंने इस परिमाण में कहीं-कहीं रखे कि सुरुचि और साहित्यिक शिष्टता को आघात पहुँचता है।[2]

जिस प्रकार बिहारी ने भाव सामग्री के लिए अपने पूर्ववर्ती कवियों को आधार बनाया है, उसी प्रकार परवर्ती कवियों ने भी बिहारी के भावों को अपनी कविता में अपनाया है। रसनिधि ने तो प्रायः बिहारी के ही अनुकरण पर अपने दोहों की रचना की है। कहीं-कहीं तो उन्होंने बिहारी के कतिपय दोहों के भावों और पदावली को भी ज्यों का त्यों ले लिया है।[3]

—

## मतिराम सतसई -

'मतिराम ने बिहारी सतसई के ढंग पर मतिराम सतसई की रचना की थी।[4] इस सतसई का रचना काल सं0 1738 विक्रमी के आस-पास माना जाता है।[5] इसमें संग्रहीत दोहों की संख्या 703 है।

इस सतसई में भी शृंगार का प्राधान्य है। शृंगार के दोनों भेदों-संयोग एवं विप्रलम्भ- का विस्तृत वर्णन किया गया है। संयोग शृंगार वर्णना में कतिपय स्थानों पर अश्लीलता दृष्टिगत होती है, किन्तु विप्रलम्भ वर्णन में कवि मर्यादित है। यत्र तत्र भक्ति[6], नीति[7] एवं प्रकृति चित्रण से सम्बन्धित दोहे भी देखे जा सकते हैं।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग-6 डा0 नगेन्द्र पृ0-404
(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ0-327
(3) रीति कालीन शृंगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन, डा0 पुष्पलता पृ0-40
(0) बिहारी रत्नाकर दो0 सं0-633 एवं रसनिधि सतसई दो0-410।
(4) हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल, पृ0-243
(5) मतिराम कवि और आचार्य- डा0 महेन्द्र कुमार पृ0 54
(6) मतिराम सतसई दो0सं0 2, 4 इत्यादि।
(7) मतिराम सतसई दो0सं0 433, 656 इत्यादि।

मतिराम सतसई भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों ही दृष्टियों से एक प्रौढ़ कृति है ।

---

**वृन्द सतसई -**

वृन्द कवि विरचित 'वृन्द सतसई' का प्रणयन सं० 1761 वि० में हुआ ।[1] इसमें नीति के सात सौ दोहे हैं ।[2]

वृन्द-सतसई उपदेश प्रधान है । इसमें कवि ने जीवन से सम्बन्धित अनुभवों को काव्य में संगुम्फित किया है । इसमें सतसईकार ने यथार्थ के धरातल पर, व्यावहारिक ज्ञान एवं आचरण की शिक्षा दी है ।

वाग्विदग्धता भी इसकी दूसरी विशेषता है । उसके सरल और सुबोध दृष्टान्तों से प्रतिपाद्य को रोचक एवं बोधगम्य बनाने में यह अपना प्रतिद्वन्दी नहीं रखती है । अतः इस सतसई की सूक्तियाँ जीवन्त बन पड़ी हैं । नीति प्रधान सतसइयों में 'वृन्द सतसई' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।

**राजधर सतसई -**

ओरछा नरेश महाराज उदोत सिंह[3] के दरबारी कवि राजधर मिश्र द्वारा प्रणीत 'राजधर-सतसई', अब तक प्राप्त सतसइयों में, अठारहवीं शती की अन्तिम सतसई है । अन्तः साक्ष्य के आधार पर इसका रचना काल संवत 1764[4] से 1766 है ।[5] महाराज उदोत सिंह जी के अनुरोध पर राजधर ने प्रस्तुत सतसई की रचना की थी ।[6]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) संवत ससि रस बारु ससि, कातिक सुदि ससि वार ।
साति ढाका सहर में, उपज्यौ इहै विचार ।। - वृन्द सतसई दो०-706

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ०-312

(3) राजधर सतसई दो०सं०-3, 4

(4) राजधर सतसई दो० सं०- 12

(5) 'संवत 1766 माह बदी 9 मुकाम ओड़छौ' अंत की पुष्पिका ।

(6) दोहा संख्या-(राजधर सतसई)- 11

राजधर सतसई के प्रारम्भ में ही 700 दोहा रचने का संकेत प्राप्त होता है।[1] किन्तु राजधर ने 655 वें दोहे के पश्चात् ही इति भी कर दी। दोहों पर क्रमांक लिखते हुए राजधर ने, दो0सं0 6 के पश्चात् अगले दोहे पर पुनः संख्या 6 भूलवश लिख दी है। इस प्रकार रचना करते समय, राजधर सतसई में 656 दोहे थे। किन्तु वर्तमान प्रति में मध्य के कुछ पृष्ठ उपलब्ध नहीं हैं, जिसके कारण दोहा क्रमांक 577 से 591 तक के 15 दोहे अनुपलब्ध हैं। इस प्रकार वर्तमान में राजधर सतसई की मूलप्रति में 639 दोहे एवं 2 सोरठे उपलब्ध हैं।[2]

राजधर सतसई श्रृंगारिक सतसई परम्परा की एक कड़ी है। इसमें श्रृंगार के दोनों भेदों-(1) संयोग श्रृंगार एवं (2) विप्रलम्भ श्रृंगार- का विशद वर्णन है, किन्तु संयोग श्रृंगार को प्रमुखता प्राप्त है, जिसका संकेत प्रारम्भ में ही दे दिया गया है।[3]

इसके अतिरिक्त नृप प्रशस्ति, नीति कथन, भक्ति-उक्तियाँ,[4] नायक नायिका भेद,[5] प्रकृति चित्रण,[6] से सम्बन्धित दोहे यत्र तत्र बिखरे हुए हैं। यह ब्रज भाषा में रचित,[7] अभिधा प्रधान सतसई है,[8] जोकि काव्य शास्त्रीय दृष्टि से एक श्रेष्ठ कृति है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दो0 सं0-1।
(2) राजधर सतसई सोरठा सं0-16 एवं 63।
(3) 'राजधर कवि गोविन्दसि, कीनी सुखद सिंगार। रा0स0 दो0-13
(4) विस्तृत विवरण के लिए देखिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्याय-3
(5) " " " " " " " " " " -4
(6) " " " " " " " " " " -5
(7) " " " " " " " " " " -7
(8) " " " " " " " " " " -7

## 19 वीं शती में रचित सतसइयाँ

इस काल में 'राम-सतसई' और 'विक्रम सतसई' का प्रणयन हुआ ।

### राम-सतसई-

राम सतसई के प्रणेता कविवर राम सहाय दास हैं । इनका रचना काल संवत् 1860 से 1880 के बीच ठहरता है ।[1] इस सतसई में 727 दोहे हैं ।

इस सतसई का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय शृंगार ही है । कतिपय नीति एवं भक्ति विषयक दोहे भी बिखरे हुए हैं । इनके उपास्य इष्ट देव श्री कृष्ण हैं ।[2] अतः इन्होंने कृष्ण को ही अपनी सतसई समर्पित कर दी ।[3] इन्होंने कृष्ण एवं मुरली के प्रति विशेष प्रेम प्रकट किया है ।[4]

सतसई की भाषा सरस एवं स्वाभाविक है । इसमें माधुर्य एवं प्रसाद गुण की प्रचुरता है । कवि ने सुरुचि का सर्वत्र ध्यान रखा है, यह नहीं कहा जा सकता, फिर भी इनकी कविता में रस का पूर्ण परिपाक दृष्टिगत होता है ।[5]

इस सतसई पर यत्किंचित बिहारी और मतिराम का प्रभाव परिलक्षित होता है ।[6] कुछ प्रसंग ऐसे भी हैं जिन पर पूर्ववर्ती सतसईकारों का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट है, किन्तु इनमें कुछ प्रसंग ऐसे भी हैं, जिनमें अन्य कवियों की अपेक्षा राम सहाय के परिष्कृत दृष्टिकोण का परिचय मिलता है ।[7]

---

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल- पृ० 368
(2) राम सतसई-सतसई सप्तक- दो० 1
(3) " " " " - दो० 5
(4) " " " " - दो० 727
(5) सतसई सप्तक - श्याम सुन्दर दास पृ०-37
(6) रीति कालीन शृंगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन-डा० पुष्प लता पृ० 46
(7) " " " " " " " " " " " 47

विक्रम-सतसई-

इस सतसई के रचयिता चरखारी नरेश विक्रमादित्य हैं । विक्रम कवि का रचना काल सं0 1855 से 1885 तक [1] होने के कारण विक्रम सतसई का रचना काल यही माना जा सकता है । इस सतसई में 742 दोहे हैं ।

यह सतसई श्रृंगार प्रधान है । इसमें श्रृंगार के भेद द्वय - संयोग एवं विप्रलम्भ - की रस प्लावित वर्णना है । अनुभावों की नियोजना में भी इन्हें साफल्य प्राप्त हुआ है । इसके अतिरिक्त भक्ति[2] तथा नीति परक उक्तियों को भी यत्र तत्र देखा जा सकता है । ऋतु वर्णन, प्रकृति चित्रण एवं सामाजिक रीति रिवाजों की वर्णना ने भी यत्र तत्र स्थान ग्रहण किया है ।

इसकी भाषा अत्यन्त मधुर एवं मर्म स्पर्शी है । बीच-बीच में उर्दू के शब्दों के प्रयोग से रस को और अधिक सम्प्रेषणीयता प्रदान की गई है । डा0 श्याम सुन्दर दास ने विक्रम सतसई की आलोचना करते हुये लिखा है, कि कला का वह उत्कर्ष इनकी कविता में नहीं पाया जाता है, जो बिहारी और मतिराम की कविता में पाया जाता है । इनमें कोई ऐसी विशेषता नहीं दिखाई देती, जो इनकी अपनी कही जाये, फिर भी इनकी कविता में रस की पर्याप्त व्यंजना है ।[3]

---

1. मिश्र बन्धु विनोद, मिश्र बन्धु- पृ0 896
2. विक्रम सतसई-सतसई सप्तक, श्याम सुन्दर दास- दो0-14
3. सतसई सप्तक- बाबू श्याम सुन्दर दास पृ0-37

## आधुनिक कालीन सतसइयाँ

### हरिऔध सतसई

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रणीत 'हरिऔध सतसई' में 700 दोहे हैं, जो 17 प्रसंगों में विभाजित हैं।

हरिऔध जी ने विविध प्रसंगों को अधिकारिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। इसमें ईश-गुणानुवाद,[1] एवं महत्ता प्रतिपादन[2] करने वाले दोहे पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं। कतिपय दोहों में मातृ भूमि का यशोगान किया गया है।[3]

आधुनिक काल में खड़ी बोली की लोकप्रियता को दृष्टिगत रखते हुए, इसे खड़ी बोली में ही रचा गया है।

भाषा, प्रसाद एवं माधुर्य गुणोपेत है।

आधुनिक युग में सतसई परम्परा के अन्तर्गत हरिऔध सतसई का महत्वपूर्ण स्थान है।

### वीर सतसई (वियोगी हरि प्रणीत)

वीर सतसई के प्रणेता आधुनिक युग के कवि श्री वियोगी हरि हैं। उन्होंने सन् 1927 (लगभग) में इस सतसई का प्रणयन किया।

यह सतसई सात शतकों में विभक्त है। प्रत्येक शतक के अन्तर्गत विभिन्न प्रसंगों का समावेश है।

यह सतसई वीर रस प्रधान है। इसमें समाज की कुरीतियों के परिणाम - विधवाओं की दुर्दशा,[4] हरिजनों का तिरस्कार[5] एवं

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) हरिऔध सतसई- दो० सं० 3
(2) " " दो० सं० 13
(3) " " दो० सं० 121-122
(4) वीर सतसई, वियोगी हरि- षष्ठम शतक- दो०सं० 87,88,89
(5) " " " " " " - दो०सं० 80,81,82

भारतीय संस्कृति के उद्धारक अनेक महापुरुषों एवं वीरांगनाओं का स्मरण किया गया है ।[1]

<u>किसान सतसई</u>

श्री जगन सिंह सेंगर प्रणीत 'किसान सतसई' अत्यन्त सामायिक कृति है । यह सात शतकों में विभक्त है । भारत कृषि प्रधान देश है, जिसमें 80 % जनसंख्या कृषक ही है । कृषकों की उन्नति एवं अवनति पर ही भारत का उत्थान-पतन निर्भर है, अतः कृषकों की ओर कवि का ध्यान जाना उसकी जागरूकता का परिचायक है ।

किसान सतसई का प्रतिपाद्य कृषकों की महत्ता एवं उनका आर्तनाद ही है । सेंगर जी की मान्यता है, कि देवगण कृषकों के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं ।[2] किसान ब्रह्मा और विष्णु से भी श्रेष्ठ है ।[3] किन्तु कृषकों की जमींदारी प्रथा के समय का यथार्थ वर्णन कवि दिखाता है कि 'जमींदार के दूत कृषक को यमदूतों से भी अधिक भयावह है ।[4] इससे जमींदारों द्वारा कृषक का शोषण ध्वनित होता है । किसान सतसई में ब्रजभाषा, संस्कृत एवं ग्रामीण शब्दों को प्रयुक्त किया गया है ।

किसान सतसई में यथार्थवाद एवं प्रगतिवाद का मंजुल समन्वय स्थापित किया गया है । यह परम्परागत विषयों से हटकर, अपने प्रकार की अनुपम कृति है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। वीर सतसई- वियोगी हरि, मंगलम शतक- दो०सं० 1
।2। किसान सतसई- जगन सिंह सेंगर- दो०सं० 13
।3। " " " " " - दो०सं० 3
।4। " " " " " - दो०सं० 6

## ज्ञान सतसई

इस सतसई के प्रणेता राजेन्द्र शर्मा हैं। यह एक आध्यात्मिक सतसई है। इसका प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म ज्ञान है। ब्रह्म ज्ञान का विवेचन कवि ने 52 शीर्षकों में सतसई को विभक्त करके किया है। इन समस्त शीर्षकों के अन्तर्गत शर्मा जी ने साधक, आत्मा, ब्रह्म व्यष्टि-समष्टि, संग-असंग, राग-वैराग्य, आनन्द और ध्यान आदि विषयों से सम्बन्धित दोहे लिखे हैं। कवि के मतानुसार प्राण की उत्पत्ति आत्मा से उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार मनुष्य के तन से छाया की। उसी प्रकार आत्मा में प्राण व्याप्त है।[1]

इसमें संस्कृत निष्ठ ब्रज भाषा का प्रयोग किया गया है, जिससे भाषा में गंभीरता आ गई है।

कवि ने अपने मत की पुष्टि पौराणिक गाथाओं से की है, अतः कवि के ज्ञान की प्रमाणिकता सिद्ध होती है।

## ब्रज सतसई

पं० रामचरित उपाध्याय विरचित 'ब्रज सतसई' में लगभग 700 दोहे हैं। यह सतसई तीन खण्डों में विभक्त है। जिसके प्रथम खण्ड में शृंगार परक दोहे हैं,[2] द्वितीय में नीति[3] तथा तृतीय में भक्ति और वैराग्य से सम्बन्धित दोहे हैं।[4] इसके प्रत्येक खण्ड में दोहों की पूर्ण शतकात्मक संख्या नहीं है। संभवतः सतसई को शृंगार, नीति एवं वैराग्य तीन खण्डों में विभाजित करने की प्रेरणा उन्हें भर्तृहरि के शतकत्रय (शृंगार शतक, नीति शतक एवं वैराग्य शतक) से मिली होगी।

---

(1) ज्ञान सतसई, परमात्मा प्रसंग- दो०सं० 1
(2) ब्रज सतसई- शृंगार सुषमा- दो०सं० 36-37
(3) " " नीति निचय- दो०सं० 14-15
(4) " " भक्ति वैराग्य-दो०सं० 6-7

<u>दयाराम कृत सतसैया</u>

गुजराती कवि दयाराम ने 'सतसैया' की रचना सं० 1872 में नर्मदा तट पर स्थित चांदोद नामक ग्राम में की थी। ग्रन्थ की समाप्ति पर इन्होंने इसका उल्लेख भी किया है।[1] इसमें कुल 713 दोहे हैं। दयाराम कृष्ण भक्तकवि थे। इन्होंने अपने इष्ट देव श्रीकृष्ण को रिझाने के लिए इस ग्रंथ का प्रणयन किया था। किसी राजा को रिझाने हेतु नहीं।[2] अतः सतसैया का प्रमुख विषय श्री कृष्ण की महिमा का गुणगान करना है। इन्होंने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

इसके अतिरिक्त 'सतसैया' में भक्ति, नीति, वैराग्य, श्रृंगार नायिका भेद, अलंकार, छन्द, योजना तथा काव्य नैपुण्य की चमत्कृति द्रष्टव्य है।

एक अहिन्दी भाषी कवि द्वारा हिन्दी में 'सतसैया' लेखन श्लाघनीय है।

<u>पंकिल सतसई</u>

अब तक उपलब्ध सतसइयों में श्रीराम रज शर्मा 'पंकिल' विरचित 'पंकिल सतसई' अर्वाचीनतम् है। इसमें 701 दोहे हैं। इसमें जीवन के उच्च एवं शाश्वत मूल्यों की पुनर्स्थापना का मंगल विधान आस्थावान कवि के द्वारा बड़ी सावधानी से किया गया है।[3]
यह सतसई नीति प्रधान सतसई परम्परा के अन्तर्गत आती है। नीति के साथ-साथ इसमें भक्ति का भी समन्वय है।

---

(1) दयाराम कृत सतसैया, दो०सं० 722, 723, 726, 727
(2) " " " दो० सं० 728
(3) पंकिल सतसई (आशीर्वाद) डा० हरवंश लाल शर्मा पृ०6

नाम मात्र के रखने से कोई बड़ा नहीं होता उसके लिए गुणों की आवश्यकता होती है। सोनाक (अमलतास) का एक पर्यायवाची स्वर्ण है, किन्तु क्या मात्र नाम धारण करने से, वह स्वर्ण नहीं हो सकता।[1] नीच व्यक्ति अपनी अधमता नहीं छोड़ता है।[2] सुन्दर काव्य, संगीत एवं कामिनियों के हास विलास से या तो योगी-यती द्रवित नहीं होते या पशु।[3] व्यंग्य यह है, कि यदि योगी यती से अन्यथा-काव्य-संगीत एवं स्त्री विलास- से अप्रभावित मनुष्य- पशु है। कवि ने राम-नाम को सागर पार करने के लिए जहाज कहा है।[4] कवि भक्त है, अतः वह भगवान से कहता है कि मुझे (अपने तरने की चिन्ता नहीं है बल्कि) तुम्हारी बान की चिन्ता है, कि मुझे यदि मुझे नहीं तारा तो आपकी जग-हँसाई होगी।[5] 'इसी प्रकार कहीं मिथ्याभास है, कहीं कातरता, कहीं उपालंभ, कहीं विनय है। भक्ति का क्षेत्र दोहों से जगमगा रहा है।[6]

इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं कवि ने समाज में व्याप्त बुराइयों पर व्यंग्य किए हैं। जैसे- 'शिष्य की बुराइयाँ दूर न कर सकने वाले गुरु से कुम्भकार अच्छा है'।[7] शिक्षा की दुकानों पर व्यंग्य द्रष्टव्य है-

> सिच्छक हैं स्वाध्याय तजि, बनि बैठे विद्वान।
> धरि हरदी की गाँठि इक, बैठे खोलि दुकान।।[8]

---

(1) पंकिल सतसई- दो०सं० 697
(2) " " - दो०सं० 142
(3) " " - दो०सं० 54
(4) " " - दो०सं० 241
(5) " " - दो०सं० 208
(6) " " - (अभिमत) आ० मुंशीराम शर्मा 'सोम' पृ-8
(7) " " - दो०सं० 42
(8) " " - दो० सं० 108

'पंकिल सतसई' की रचना के लिए कवि ने मध्यकालीन ब्रज भाषा को अपनाया है। पंकिल जी का ब्रज भाषा पर अधिकार भी दर्शनीय है। कवि ने बड़ी सरल सरस भाषा में उदात्त एवं उदार भावाभिव्यंजना की है तथा अभिव्यंजना की शैली भी श्रीराम स्वरूपों के व्यक्तित्व के अनुरूप समृद्ध एवं सम्पन्न है। सतसई के अनेक दोहे 'बिहारी सतसई' के समकक्ष तथा तुलनीय है। हिन्दी की मुक्तक परम्परा में यह अभिनव तथा अभिनन्दनीय योगदान है।[1]

## हिन्दी सतसइयों का रूप विधान

(1) हिन्दी की समस्त सतसइयाँ कोष के अनुक्रम रचित भेद के अन्तर्गत आती हैं।

(2) इनके नामकरण कवियों के नाम एवं पद संख्या पर आधृत हैं अर्थात् इनके पुरोभाग के आगे रचना की पद संख्या (सतसई) जोड़कर रखे गये हैं। आधुनिक युग में वीर सतसई, ग्राम सतसई एवं किसान सतसई इसके अपवाद हैं जिनके नाम उनके प्रतिपाद्य विषय एवं संख्या पर आधृत हैं।

(3) इन समस्त सतसइयों की पद संख्या ठीक सात सौ हो, ऐसी बात नहीं। प्रायः पद सप्ताधिक ही हैं- जैसे बिहारी सतसई में 713 दोहे हैं, तो मतिराम सतसई में 703, राम सतसई में 727, विक्रम सतसई में 742, रहीम सतसई में 277 इत्यादि।

(4) ये सतसइयाँ कवियों की स्वरचित रचनाओं के संग्रह हैं, संकलित रचनाओं के संग्रह नहीं।

(5) इन समस्त सतसइयों में एक मात्र दोहा छन्द ही प्रयुक्त हुआ है। कतिपय सोरठे भी मिलते हैं, किन्तु दोहा और सोरठा में कोई तात्विक अन्तर नहीं है। दोहा के ही पादों के परिवर्तन में व्यत्यय होने पर सोरठा बन जाता है।

---

(1) पंकिल सतसई (आशीर्वाद)- डा० हरवंश लाल शर्मा पृ० 6

161 विषय की दृष्टि से हिन्दी में दो प्रकार की सतसइयाँ उपलब्ध हैं- श्रृंगारिक एवं नीति विषयक ।

यद्यपि, श्रृंगारिक सतसइयों में यत्र तत्र कतिपय नीति, खल निन्दा, सत्पुरुष प्रशंसा, राज प्रशस्ति, देव स्तुति विषयक उक्तियाँ भी बिखरी हुई प्राप्त होती हैं, तथापि, 'प्रधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' के अनुसार उनको श्रृंगारिक सतसइयाँ ही कहेंगे ।

171 हिन्दी की समस्त प्राय श्रृंगारिक सतसइयों का आरम्भ राधा कृष्ण की वंदना ।मंगला-चरण। से हुआ है और इनके श्रृंगार परक छन्दों में 'राधा-कृष्ण' को ही नायिका-नायक के रूप में लिया गया है ।

निष्कर्ष:-
=======

प्राकृत काल की हालकृत गाथा सप्तशती से लेकर अद्यतन सतसई परम्परा प्रवहमान है । विभिन्न काल क्रमों में उनके रूप विधान में जो परिवर्तन हुए वे यथा स्थान निर्दिष्ट किए जा चुके हैं ।

साहित्यकार युग को प्रभावित करता है, साथ ही युगीन चेतना से प्रभावित भी होता है, अतः विभिन्न काल क्रमों में सतसइयों के प्रतिपाद्य विषय में भी परिवर्तन हुए । प्राकृत काल एवं संस्कृत काल में श्रृंगार प्रधान सतसइयाँ लिखी गई । इसके पश्चात् हिन्दी की सतसई परम्परा का प्रारम्भ हुआ।भक्ति काल में रचित दोनों सतसइयाँ- तुलसी सतसई एवं रहीम सतसई- नीति प्रधान है । इनमें श्रृंगार परक दोहों का अभाव है । दोनों सतसइयाँ उपेक्षात्मक हैं । तुलसी सतसई भक्ति प्रधान किन्तु रहीम सतसई में नीति का प्राधान्य है । रीतिकाल का एक नाम श्रृंगार काल भी है, अतः रीतिकालीन सतसइयों में श्रृंगार की प्रधानता है । आधुनिक काल में सतसइयों के प्रतिपाद्य का विस्तार हुआ । इस काल में प्रतिपाद्य विषय श्रृंगार व नीति से पृथक वीर रस प्रधान, वीर सतसई तथा किसानों की महत्ता एवं आर्तनाद से सम्बन्धित किसान सतसई की रचना, हुई । अतः प्रतिपाद्य विषय के सापेक्ष सतसई परम्परा आधुनिक काल में विकासोन्मुख है ।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है, कि सतसई लेखन की परम्परा आधुनिक युग में भी लुप्त नहीं हो सकी, एवं लोकप्रिय बनी है। किसी साहित्यिक परम्परा का स्थायित्व इस तथ्य पर भी निर्भर करता है, कि उसकी काल सीमा कितनी विस्तृत है। इस प्रकार 5वीं शती से 20वीं शती तक की विस्तृत काल सीमा इस विधा का महत्व ही सिद्ध करती है।

---

अध्याय - 2

# सतसई साहित्य की सामाजिक पृष्ठभूमि

## सतसई साहित्य की सामाजिक पृष्ठ भूमि

### सामाजिक व्यवस्था -

गाथा सप्तशती काल से रीतिकाल तक <u>राजनीतिक दृष्टि से</u> राज तान्त्रिक अथवा सामन्त शाही शासन प्रणाली रही है। शासक राजा- शासित प्रजा। अतः, समाज के प्रमुख रूप से दो वर्ग थे- एक शासक वर्ग और दूसरा शासित वर्ग। एक अभिजात वर्ग और दूसरा जन साधारण (जनता-वर्ग)। शासक वर्ग- अभिजात वर्ग-के अन्तर्गत सम्राट एवं उसका परिवार, राजकीय कर्मचारी तथा नौकर चाकर एवं दास दासियाँ आदि थे।

शासित वर्ग — जन वर्ग-के अन्तर्गत कृषक समुदाय एवं श्रम जीवी थे, जो शासन एवं युद्ध के मामलों से सर्वथा पृथक रहकर अपने खेती और व्यापार के कार्यों में लगे रहते थे, सरकार को कर देते थे और बदले में आन्तरिक एवं बाह्य उपद्रवों से त्राण पाते थे।

<u>आर्थिक व्यवस्था</u> की दृष्टि से विचार करें, तो हम देखते हैं कि शासित वर्ग, उत्पादक वर्ग था और शासक वर्ग उपभोक्ता वर्ग। शासक वर्ग राज्य की शक्ति था अतएव उत्पादक वर्ग पर उसका पूर्ण प्रभुत्व था और सामाजिक स्थिति भी स्वभावतः उसकी श्रेष्ठतर थी, अतः शासक और शासित में शोषक और शोषित का सम्बन्ध था।

<u>सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से</u> हम देखते हैं, कि शासक वर्ग,-अभिजात वर्ग नगरों में निवास करता था तथा शासित वर्ग- जनवर्ग-ग्रामों में। अतएव, शासक वर्ग का सम्बन्ध नगर-सभ्यता व संस्कृति से एवं शासित जन वर्ग का ग्राम सभ्यता संस्कृति से रहा है।

इसके अतिरिक्त सभ्यता-संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण घटक है- धर्म। प्रत्येक धर्म का अपना एक दर्शन होता है। उसी के अनुरूप समाज में आस्था-विश्वास रीति रिवाज (आचार) एवं प्रथायें प्रचलित रहतीं हैं।

## साहित्य और समाज -

'साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है, क्योंकि 'कवि या लेखक' अपने समय का प्रतिनिधि होता है । उसको जैसा मानसिक खाद्य मिल जाता है, वैसी ही उसकी कृति होती है । जिस प्रकार बेतार के तार का ग्राहक यंत्र आकाश मण्डल में विचरती हुई विद्युत तरंगों को पकड़ कर उनको भाषित शब्द का आकार देता है, ठीक उसी प्रकार कवि या लेखक अपने समय के वायु मण्डल में घूमते हुए, विचारों को पकड़ कर मुखरित कर देता है'।[1]

अतः, सतसई साहित्य में तत्तद् युगीन सभ्यता संस्कृति, शासन व्यवस्था एवं धार्मिक आस्था और विश्वास आचार-विचार तथा प्रथाओं इत्यादि के समुच्चय का प्रतिबिम्ब स्पष्टतः देखना शक्य है ।

इसके साथ ही, यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है, कि साहित्यकार की व्यक्तिगत-परिस्थिति से भी उसकी कृति प्रभावित होती है । जन कवियों और राजाश्रित कवियों की रचनाओं के अन्तर को देखकर इस बात को भली भाँति समझा जा सकता है । जन कवि को लोक रुचि एवं लोक-मंगल अभीष्ट होता है जबकि राजाश्रित कवि के लिए आश्रयदाता की अभिरुचि व अनुरंजन (कभी-कभी उसका हित भी) सर्वोपरि होता है । अतः गाथा सप्तशती काल से रीतिकाल तक सतसईकार कवियों की जनाश्रयिता अथवा राजाश्रयिता के परिणाम स्वरूप सतसई साहित्य में सामाजिक पृष्ठ भूमि प्रतिबिम्बित हुई है।

प्राकृत के गाथा सप्तशतीकार जन कवि थे, जिनका सम्बन्ध जन जीवन से था । यतः जन-सामान्य कृषक वर्ग था, जो ग्रामों में निवास करता था, अतः गाथासप्तशती में ग्राम्य-समाज का प्रतिबिम्ब प्रमुख रूप से परिलक्षित होता है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) काव्य के रूप, बाबू गुलाब राय, पृष्ठ- 5

आर्या सप्तशतीकार (संस्कृत) एवं हिन्दी के रीतिकालीन सतसईकार राजाश्रित दरबारी कवि थे। दरबारी-संस्कृति अभिजात संस्कृति थी। अभिजात वर्ग-शासक वर्ग- नगरों में निवास करता था। अतः, दरबारी कवियों की कृतियों में नागर सभ्यता का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होना स्वाभाविक ही था।

संस्कृत की आर्या सप्तशती, प्राकृत की गाथा सप्तशती से प्रभावित है, अतः इसमें ग्राम्य जीवन का प्रतिबिम्ब तो दिखाई देता ही है, साथ ही इसका प्रणयन महाराज लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि गोवर्धनाचार्य द्वारा हुआ, अतः नागर भावनाओं का स्पर्श भी समान रूप से परिलक्षित होता है। यह प्राकृत की गाथा सप्तशती एवं रीतिकालीन सतसइयों के बीच में सेतु है।

तत्पश्चात्, रीतिकालीन हिन्दी सतसइयों में प्रमुख रूप से नागर सभ्यता का स्वर ऊँचा है।

इस प्रकार सतसई काव्य धारा ग्रामीण समाज से नगर समाज की ओर प्रवाहित हुई है।

सतसई साहित्य की सामाजिक पृष्ठ भूमि को स्पष्ट करने के लिए हम सर्व प्रथम कालक्रमानुसार तत्तद् युगीन ग्रामीण जीवन का प्रतिबिम्ब का अध्ययन करेंगे। तत्पश्चात् यह देखेंगे कि किन सतसइयों में नगर संस्कृति का प्रतिबिम्बन किस अनुपात में और क्यों हुआ है। अन्ततोगत्वा तत्तद् युगीन शासन प्रणाली एवं समाज में प्रचलित धार्मिक आस्था-विश्वास, आचार-विचार एवं प्रथाओं का अध्ययन करेंगे।

अतः, हम सुविधानुसार प्रस्तुत अध्याय में निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे -

**सतसई साहित्य में -**

(1) ग्रामीण जीवन का प्रतिबिम्ब

(2) नागर भावनाओं का स्पर्श

(3) शासन व्यवस्था

(4) पौराणिक, देवी देवताओं व अन्य धार्मिक आस्था-विश्वास आचार-विचार प्रथाओं का प्रतिबिम्ब ।

इन शीर्षकों पर सतसई परम्परा को दृष्टिगत रखते हुए क्रमशः प्राकृत काल (गाथा सप्तशती), संस्कृत काल (आर्या सप्तशती) एवं रीतिकाल (श्रृंगारिक सप्तशतियाँ) के अनुसार विवेचन किया जायेगा । तत्पश्चात् राजधर सतसई का पृथकतः अध्ययन प्रस्तुत करेंगे ।

(1)

(क) सतसई साहित्य में - (क)

**ग्रामीण जीवन का प्रतिबिम्ब**

**गाथा सप्तशती**

सतसई परम्परा का श्री गणेश प्राकृत गाथा सप्तशती से होता है । प्राकृत की गाथा सप्तशती जन कवियों द्वारा रचित मुक्तकों का 'कोष' है । जैसा कि हम पूर्वतः निवेदन कर चुके हैं, कि जन-कवि के लिए लोक रुचि, लोक मंगल व लोकरंजन ही अभीष्ट होता है, अतः, जन कवियों की कविता के प्रेरणा-स्रोत एवं कविता के श्रोता जन साधारण ही रहते हैं, अतः उनकी कविता में जन साधारण का चित्रण होना स्वाभाविक ही है । तत्कालीन समाज में जन साधारण के अन्तर्गत अधिसंख्य-कृषक समाज ही था, जो ग्रामों में निवास करता था, अतः गाथा

सप्तशती में ग्रामीण जीवन का प्रतिबिम्ब— खेतों का सौन्दर्य, कृषि करते हुए किसान, अल्हड़ ग्राम्या नायिकाओं का नैसर्गिक सौन्दर्य एवं खेतों में ही सम्पादित केलि-क्रीडाओं इत्यादि का वर्णन-सर्वत्र बिखरा हुआ देखा जा सकता है ।

गाथा सप्तशती के वर्णनों से सिद्ध होता है, कि तत्कालीन ग्रामों में समृद्धि एवं सम्पन्नता विराजमान थी । ग्राम-वासियों का जीवको-पार्जन कृषि से होता था ।[1]

कृषि कर्म हेतु बैल प्रमुख साधन थे,[2] कहीं-कहीं भैंसा भी प्रयुक्त होता था ।[3] मशीनों का प्रयोग प्रचलित नहीं था । गुड़ बनाने हेतु ईख से रस निकालने के लिए मात्र कोल्हू का प्रयोग होता था, जिसे 'यन्त्र' कहा जाता था[4] सिंचन के लिए 'रहट' (रहट) को काम में लाया जाता था[5] सींचने के लिए खेत के छोटे-छोटे भागों में विभक्त कर दिया जाता था, जो 'केआर' कहलाते थे ।[6] उस समय प्रमुखतया धान की खेती होती थी ।[7] गुड़ बनाने हेतु ईख की खेती होती थी ।[8] इसके अतिरिक्त जौ,[9] कपास,[10] तिल,[11] सन,[12] ककड़ी,[13] तुवरी[14] (अरहर) खीरा[15] आदि की फसलें होती थीं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) गाथा सप्तशती, हाल, गाथा - 7/89
(2) - वही - 7/92
(3) - वही - 2/92
(4) - वही -7/92
(5) - वही -7/91
(6) - वही -7/90
(7) - वही 7/91, 4/30
(8) - वही -7/92
(9) - वही -5/2
(10)- वही 4/59, 6/89
(11)- वही -7/92
(12)- वही -1/9
(13)- वही -1/10
(14)- वही -4/58
(15)- वही -6/34

ग्राम के चारों तरफ बगीचे एवं तालाब पाये जाते थे । बगीचों में आम,[1] जामुन,[2] बेर,[3] बिल्व,[4] कैथ,[5] आदि के वृक्ष लगे रहते थे । इसके अतिरिक्त केसर,[6] कदम्ब,[7] शिरीष,[8] वृक्ष पाये जाते थे बकुल,[9] मालती,[10] चमेली,[11] नवमालिका,[12] कुन्द,[13] पाटल,[14] महुआ,[15] पुष्प के वृक्ष पाये जाते थे । नीम,[16] वट,[17] मधूक,[18] करंज,[19] पलाश,[20] आदि वृक्ष भी पाये जाते थे । ग्राम के किनारे-किनारे राहगीरों की विश्रान्ति हेतु वट वृक्ष लगे रहते थे ।[21]

गाथा सप्तशती में अभिव्यंजित श्रृंगार के आश्रय आलम्बन एवं उनकी क्रीडा भूमि का क्षेत्र ग्राम्य-पर्यावरण ही है । खेती के दैनिक कार्यों के साथ ही परिस्थितिवश उद्बुद्ध हुए श्रृंगारिक भावों का निर्वाह हो जाता था । नव युवक किसान भोजन के समय भात लाने वाली नायिका को देखकर प्रणय अभिभूत होकर बोने के स्थान पर नाथ ही जोत देता है ।[22] 'कीचड़' में धंसे हुए हल के अग्रभाग (फाली) को बार-बार खींचने के कारण थके हुए, पति के सो जाने पर सुरत सुख से वंचित युवक की वधू वर्षा ऋतु को कोस रही है ।[23] प्रिय के भावी समागम के विचार मात्र से ही भावुक कामिनियों के सात्विक भाव व्यक्त हो जाते हैं । यह प्रकट करता हुआ कोई रसिक अपने साथी से कहता है "कपास के खेत में बुवाई करने के अवसर पर हल पर स्वस्तिक चिन्ह बनाती हुई, मनोरथ गुर्विणी (पौधों के बड़े हो जाने पर उस खेत में ही अपने प्रच्छन्न प्रेमी के साथ अभिसार की कामना मन ही मन करने वाली) कुलटा के हाथ (कम्प सात्विक भाव के कारण) थर थराते हैं ।[24] इस प्रकार अनेक गाथाओं में ग्रामीण जीवन का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (1) | गाथा० | - 1/62, 4/31 | (9) | गाथा० | 1/63 | (17) | गाथा | 1/92 |
| (2) | " | - 2/80 | (10) | " | 1/92 | (18) | " | 2/3 |
| (3) | " | - 2/100 | (11) | " | 4/22 | (19) | " | 2/11 |
| (4) | " | - 6/19 | (12) | " | 5/12 | (20) | " | 4/8 |
| (5) | " | - 7/41 | (13) | " | 5/26 | (21) | " | 3/63 |
| (6) | " | - 1/37 | (14) | " | 5/69 | (22) | " | 7/93 |
| (7) | " | - 2/17 | (15) | " | 7/47 | (23) | " | 4/24 |
| (8) | " | - 1/55 | (16) | " | 1/30 | (24) | " | 2/65 |

आर्यासप्तशती -
==============

आर्यासप्तशतीकार गोवर्धनाचार्य राजा लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि थे । प्रायः, दरबारी कवियों की रचनाओं में ग्रामीण जीवन का प्रतिबिम्ब अत्यल्प देखने को मिलता है, परन्तु आर्यासप्तशती में गाथासप्तशती की अपेक्षा तो अल्प, किन्तु पर्याप्त मात्रा में ग्राम्य जीवन का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है । सम्भवतः, इसका कारण गाथा सप्तशती का आर्यासप्तशती पर प्रभाव ही है ।

आर्यासप्तशती में भी हरे-भरे खेत,[1] धान्य मर्दन करते हुए कृषक पुरुषाकार तृणों का पुतला[2] (पशु-पक्षियों को भयभीत करने हेतु) कूपों के चारों ओर थाले[3] इत्यादि का वर्णन है ।

ग्रामों में पाये जाने वाले वृक्ष नीम और आम[4], एरण्ड[5], शाल वृक्ष,[6] अशोक वृक्ष,[7] शेवाल,[8] स्वर्ण केतकी[9] इत्यादि का भी उल्लेख किया है ।

आर्यासप्तशती का प्रमुख प्रतिपाद्य शृंगार ही है । अधिकांश केलि-क्रीडाओं की वर्णना खेतों के पर्यावरण में सम्पन्न हुई है । '(खेत में हलीण आदि से टूटकर) गिरी हुई मुँगा और तुष अर्थात् भुँसाहार से सुन्दर खेत, मानो अपनी रसिका के विनय विलाप से उत्पन्न दुःख के कारण विदीर्ण हृदय सा शोभित हो रहा है ।[10]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) आर्या सप्तशती, गोवर्धनाचार्य (हि०व्या०) रमाकांत त्रिपाठी पृष्ठ-192
(2) - वही -58
(3) - वही -192
(4) - वही -349
(5) - वही -149
(6) - वही -207
(7) - वही -256
(8) - वही -267
(9) - वही -123
(10) - वही -58

कहीं, नायक से मिलन हेतु सखी द्वारा नायिका को संकेत स्थल-ईख का खेत- का संकेत दिया जा रहा है ।[1] कोई हालिक (कामाहत किसान) की पत्नी के संगम की प्रशंसा कर रहा है, 'एरण्ड के पत्तों की खिलकी सेंधुआ है ।' (सुरतातिशय से नायक के) पसीना पैदा करती है । विस्तृत जघन वाली हालिक वधू अंगों से लगकर धूलि की पोटरी की भाँति काम-ज्वर को हरती है ।[2] किसी हरे-भरे खेत में पुरुषाकार तृणों का पुतला खड़ा है । उपपति ने उसको प्रातिवेश्य खेत का रक्षक पुरुष समझ लिया है, अतः वह नायिका (जो उसी खेत में स्थित है) से मिलने के लिए जाने में डर रहा है । किन्तु दूती उसे शिलष्ट शब्दों में उसका भ्रम निवारण कर गमनार्थ प्रेरित कर रही है ।[3] कहीं नायक ग्रीष्म काल में नायिका से सेवियन में चलने के लिए कह रहा है ।[4] कहीं दूती नायक को बहुबुद्धि हलवाहे की पत्नी (नायिका) से मिलने के लिए प्रेरित कर रही है ।[5]

इस प्रकार, आर्या सप्तशती की सामाजिक-शृंगारिक पृष्ठ भूमि में ग्रामीण जीवन का प्रतिबिम्ब यत्र-तत्र देखा जा सकता है

## रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयाँ :-

रीतिकालीन सतसइयों में नागर सभ्यता का प्राधान्य होने से विशुद्ध ग्राम्य जीवन का वर्णन अत्यल्प मात्रा में उपलब्ध होता है, क्योंकि रीतिकालीन सतसइयों की रचना दरबारी वातावरण में हुई। एक तो, विलास-पूर्ण पर्यावरण में निमग्न इन कवियों को ग्राम्य जीवन का निरीक्षण करने का अवसर ही कम मिलता था, दूसरे, दरबार में ग्राम्य जीवन के वर्णन को हेय दृष्टि से देखा जाता था । कहीं-कहीं, फिर भी इन सतसइयों में ग्राम्य जीवन का प्रतिबिम्ब यत्र तत्र देखने को मिल जाता है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) आर्या०- प्रथा- 161
(2) " " 149
(3) " " 192
(4) " " 200
(5) " " 130

ग्राम्या नायिकाओं के अल्हड़ एवं अकृत्रिम सौन्दर्य में एक विशेष आकर्षण होता है, जिससे रीतिकालीन सतसईकार भी प्रभावित हुए बिना न रह सके ।

बिहारी सतसई की गदराए हुए तन वाली गोरी-गँवारी जिसके ललाट पर 'ऐपन' का आड़ा तिलक लगा हुआ है, 'हूठा' देकर इठलाकर दृगों से नायक पर अचूक वार कर रही है -

गदराने तन गोरटी ऐपन आड़ लिलार ।
हूठ्यौ दै इठलाइ, दृग, करै गँवारि सुवार ।।[1]

मतिराम को तो नागरी नायिका के कटाक्षों की अपेक्षा ग्राम्या नायिका के कटाक्ष अधिक पीर प्रद अनुभूत होते हैं -

नागरि नैन कमान सर, करत न ऐसी पीर ।
जैसे करत गँवारि के, दृग अनुखी के तीर ।।[2]

ग्राम्याओं के आभूषण सहज सुलभ प्राकृतिक उपकरणों - गुंजा,[3] पहुला लर,[4] मयूर[5] आदि- से विनिर्मित होते हैं, फिर भी वे अत्यन्त मधुर लगती हैं, जिस प्रकार से 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की नायिका शकुन्तला वल्कल धारण किए हुए भी रमणीय दिखती है[6]। इस प्रकार इन ग्राम्या-नायिकाओं में 'माधुर्य' शोभितालंकार[7] देखा जा सकता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। बिहारी रत्नाकर- दोहा - 93
।2। मतिराम सतसई - दोहा - 5
।3। विक्रम सतसई - दोहा - 500
।4। बिहारी रत्नाकर- दोहा - 249
।5। मतिराम सतसई - दोहा - 123
।6। अभिज्ञान शाकुन्तलम्- 1/17
।7। साहित्य दर्पण- 3/97

इन प्रकृति-पुत्रियाँ- ग्राम्या नायिकाओं की छवि प्राकृतिक पर्यावरण में अत्यन्त मनोहरी लगती है ।[1] रीतिकालीन सतसइयों में कहीं-कहीं केलि क्रीड़ा का वर्णन खेतों ।ग्राम्य वातावरण। की पृष्ठ भूमि में किया गया है । एक नायिका अपनी सखी से अथवा नायक से मुस्कराकर पूछती है, कि यह 'संभ्रम धान का खेत' उसे ।नायिका को। प्रिय क्यों है ?

खेत निहारति धान को, यों बूझति मुसिक्याई ।
यहो हमारो प्रिय कहो, सघन ज्वारि दरसाई।।[2]

व्यंग्यार्थ यह है, कि धान का खेत उसका ।नायिका का। सहेट स्थल होने से उसे प्रिय है ।

बिहारी सतसई की अनुशयाना नायिका को उसकी सखी धैर्य बंधाती है कि ।यद्यपि। सन सूख गया । कपास ।का दिन। भी बीत गया, ।और। ऊख भी उखाड़ ली गई ।अर्थात इन खेतों के संकेत स्थल विनष्ट हो गए हैं, ।तथापि। अरहर अब भी हरी भरी है।अतः। हे नारी, हृदय में धैर्य धर ।चिंता मत कर। क्योंकि तेरे लिए उस खेत में सहेट बना हुआ है -

सनु सूक्यौ, बीत्यौ बनौ, ऊखौ लई उखारि ।
हरी-हरी अरहरि अजौं, धरि धरहरि जिय नारि ।।[3]

इसी प्रकार मतिराम सतसई में पटेल की पुत्री सूखे सनों को देखकर सूखी-सूखी फिर रही थी, क्योंकि यह खेत उसका सहेट स्थल विनष्ट होने जा रहा था । किन्तु अब 'फूली-फूली' अरहर को देख कर फूली फूली फिर रही है, क्योंकि उसको उपयुक्त सहेट स्थल प्राप्त हो गया है -

सूखी सुता पटेल की, सूखी सनहि पेखि ।
अब फूली-फूली फिरै, फूली अरहर देखि ।।[4]

---

।1। मतिराम सतसई दोहा सं0- 9 एवं बिहारी रत्नाकर दोहा- 708
।2। मतिराम सतसई दोहा सं0- 327
।3। बिहारी रत्नाकर दोहा सं0- 135
।4। मतिराम सतसई दोहा सं0- 67

## राजधर सतसई -

जैसा, कि हम पूर्वतः निवेदन कर चुके हैं, कि रीतिकालीन सतसइयों में ग्राम्य जीवन का वर्णन अत्यल्प मात्रा में उपलब्ध है, राजधर सतसई भी उसका अपवाद नहीं है । कतिपय दोहे ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित देखे जा सकते हैं ।

ग्राम-वधुएँ सुन्दर रंगों की चुनरियाँ चुन-चुन कर पहिने हुए चलीं जा रहीं हैं, जो लहलहे पुष्पों की पंक्ति के समान दिखाई दे रही हैं -

चुनि चुनि पहिरी चूनरी, बधुनि सुरंग सुहाई ।
मनौ लहलहे सुमनि की, चलै पाँति दिखाई ।।[1]

किसी नायिका ने 'लहरिया' धारण कर रखा है -

रुचि कर पहिर्यो लहरिया, राजतु गोरे अंग ।[2]

एवं किसी नायिका को नायक लहरिया पहना रहा है -

पहिराए पिय लहरिया, राजत गोरे अंग ।[3]

कहीं नायिका 'पीक' बनी हुई चुनरी धारण करती है ।[4]

उपर्युक्त, 'चूनरी' एवं 'लहरिया' धारण करने वाली नायिकाएँ ग्राम्याएँ ही हैं। इस प्रकार कतिपय दोहों में ही विशुद्ध ग्राम्य जीवन की झलक दिखाई पड़ती है ।

---

।1। राजधर सतसई दोहा संख्या - 396
।2। - वही - 459
।3। - वही - 460
।4। - वही - 455

राजधर सतसई के उन दोहों, जिनमें राधा-कृष्ण की ब्रजभूमि (ग्राम) में सम्पादित लीलाओं का वर्णन है[1], में भी ग्राम्य-जीवन का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है । उदाहरणार्थ- 'बरसाने की नायिकायें (गोपियाँ) मल्हार' गाती हुई, 'हिंडोल' पर झूल रही हैं[2]। कहीं नायिका दधि को 'मथौटे' में रखती है[3]। मुरली की धुन सुनकर नायिका, अपनी सखियों को छोड़कर, और साथ लाई हुई गागर को कुएँ के 'पार' पर ही रखी छोड़कर (नायक श्री कृष्ण से मिलने) चल दी[4]; श्री 'यदुवीर' को देखकर, (यमुना से) जल भरती हुयीं नायिकायें यथास्थिता (स्तम्भित) रह गयीं[5]। कहीं गोदोहन करती हुई नायिका अचानक मिले हुए श्रीकृष्ण को बछड़ा और दोहनी छोड़कर निरख रही है[6]। कहीं-कहीं ब्रज भूमि में इन्द्र वधूटियाँ शोभायमान हैं[7]। कहीं नायक श्रीकृष्ण गोचारण करते हुए देखे जा सकते हैं ।[8] इस प्रकार कृष्ण लीलाओं की पृष्ठ भूमि के रूप में ग्राम्य जीवन का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) विस्तृत विवरण के लिए देखिए- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का शीर्षक- "राजधर की भक्ति-भावना" ।

(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 66

(3) - वही - 76

(4) - वही - 175

(5) - वही - 272

(6) - वही - 279

(7) - वही - 355 और 356

(8) - वही - 103 और 300

निष्कर्ष -
ooooooo

(1) प्राकृत की गाथा सप्तशती जन-कवियों द्वारा रचित एक मुक्तकों का कोष है । अतः, उसमें ग्राम्य-जीवन प्रतिबिम्बित है ।

(2) आर्या सप्तशती पर गाथा सप्तशती का प्रभाव होने से उसमें भी ग्राम्य जीवन का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है, किन्तु अपेक्षाकृत अल्प ।

(3) रीतिकालीन सतसईकार दरबारी राजाश्रित कवि हैं, अतः ग्राम्य जीवन का वर्णन अत्यल्प है ।

(4) राजस्थ सतसई तद्युगानुरूप ही है ।

xxx

सतसई साहित्य में ग्राम्य-जीवन का प्रतिबिम्ब कहाँ-कहाँ और क्यों दिखाई देता है, यह स्पष्ट हो जाने के पश्चात् उसमें नागर जीवन कहाँ-कहाँ प्रतिबिम्बित हुआ है, यह जिज्ञासा स्वाभाविक ही है ।

## सतसई साहित्य में नगर भावनाओं का स्पर्श

### नागर सभ्यता -

सतसई साहित्य में प्रतिबिम्बित नागर-सभ्यता एवं नागर भावनाओं के स्वरूप को स्पष्ट करने से पूर्व कामसूत्र में वर्णित 'नागरक वृत्ति' पर विचार करना आवश्यक है ।

### नागरक वृत्ति -

वात्स्यायन कृत कामसूत्र में प्रख्यात चौंसठ कलाओं को काम शास्त्र की अंग विद्याओं के रूप में पहले ही उपार्जन योग्य बताया है[1] और नागर वृत्त प्रकरण में कहा गया है, कि उक्त विद्याओं को ग्रहण करने के पश्चात् गृहस्थ धर्म स्वीकार कर नागरक वृत्त का अनुसरण करना चाहिए ।[2] नागरक वृत्त का अर्थ है - नगर में रहने वाले अथवा सभ्य कहे जाने वाले व्यक्ति की जीवन-यापन पद्धति । तत्कालीन नागरिक सम्पन्न ऐश्वर्यशाली एवं कामशास्त्रीय दृष्टि से संस्कारित होते होंगे, इस कारण उनकी एक विशिष्ट जीवन यापन की पद्धति भी रही होगी । अतएव, कामसूत्र में नागरक के लिए विशिष्ट निवास स्थान, शयन कक्ष, गृहोद्यान, क्रीडा-विलास, उद्यान, रुचि-अरुचि इत्यादि का विधान है ।

### नागर सभ्यता और नागर भावनाएँ :-

जैसा कि हम पूर्वतः निवेदन कर चुके हैं, कि अभिजात वर्ग का संबंध नगरों से रहा है । इस वर्ग के अन्तर्गत सम्राट के परिवार और दरबारों से लेकर उनके नौकर-चाकर और दास आते हैं । अतः, नागर-सभ्यता और आभिजात्य सभ्यता पर्यायवाची ही हैं । साथ ही, जैसे हम आगे स्पष्ट करेंगे कि आभिजात्य वर्ग की सभ्यता सदैव प्राकृत काल से रीतिकाल तक- कामशास्त्र में वर्णित 'नागरक-वृत्ति' के अनुरूप रही है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। कामसूत्र, वात्स्यायन- 1/3/16

।2। - वही - 1/4/1

इस प्रकार, नागर सभ्यता, अभिजात्य सभ्यता और कामसूत्र में वर्णित 'नागरक वृत्ति' का स्वरूप एक ही है। इस तथ्य को इस प्रकार भी अभिव्यक्त किया जा सकता है, कि काव्य में वर्णित नागर भावनाएँ, आभिजात्य भावनाएँ और कामशास्त्रीय भावनाएँ पर्यायवाची हैं।

**काम शास्त्र का काव्य-शास्त्र पर प्रभाव -**

कामशास्त्र का प्रभाव काव्य शास्त्र पर पड़ा है। भरत मुनि ने नाट्यकला में काम कला का योग महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार नाट्य या काव्य में काम शास्त्रीय पद्धति पर उपचार विधि होनी चाहिए। अतएव, शृंगार रस की वर्णना में काव्य शास्त्रीय दृष्टि से काम शास्त्रीय आधार महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

**सतसई साहित्य में नागर भावनाएँ-**

यतः, सतसई-साहित्य शृंगार प्रधान है, अतः इसमें कामशास्त्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति सर्वत्र प्राय देखना शक्य है। जिन सतसइयों में नगर-सभ्यता-आभिजात्य सभ्यता- का वर्णन प्रधान रूप से है, उनमें तो नागर भावनाएँ- कामशास्त्रीय भावनाएँ- पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर हैं ही, किन्तु जिन सतसइयों में ग्राम्य-सभ्यता के चित्रण का प्राधान्य है, वे भी नागर-भावनाओं-कामशास्त्रीय भावनाओं से प्रभावित हैं।

अब प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत हमारा विवेच्य यह है, कि सतसई-साहित्य में कब-क्यों और कहाँ किस मात्रा में नागर भावनाओं- आभिजात्य वर्ग की भावनाओं अथवा कामशास्त्रीय भावनाओं- का स्पर्श रहा है।

किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन की दो शैलियाँ हैं- ॥1॥ पक्ष का मंडन अथवा महात्म्य सम्पादन ॥2॥ विपक्ष का खण्डन अथवा उपेक्षा, तिरस्कार आदि।

## गाथा सप्तशती -

सर्व प्रथम हम गाथा सप्तशती में नागर-सभ्यता के माहात्म्य का प्रतिपादन अथवा समर्थन पर विचार करेंगे।

गाथा सप्तशती में नागर भावनाओं के समर्थन के लिए नागर-नायक-कामसूत्र में 'नागरक वृत्ति'[1] प्रकरण के अन्तर्गत वर्णित वैशिष्ट्य से युक्त- का माहात्म्य प्रतिपादन करने हेतु ही उसे दुर्लभ बताया गया है। गाथा सप्तशती की नायिका ऐसे नायक को दुर्लभ कहती है, जो अपने दर्शन से नयनों को और करों से स्पर्श करता हुआ समस्त शरीर को आनंदित करे, चन्द्रमा के समान अभ्यर्थना करते ही प्राप्त नहीं हो जाता है।[2]

यहाँ नागर नायक का महत्व प्रतिपादित करके नागर-सभ्यता का ही समर्थन किया गया है। किसी सिद्धान्त के विरुद्ध का खण्डन अथवा तिरस्कार अन्ततोगत्वा उसका समर्थन ही सिद्ध होता है। एक गाथा में कोई बंक चितवन वाली नागरी ग्राम के प्रति आक्रोश प्रकट करती हुई कहती है -

'इस टूटे ग्राम में, जहाँ अधिकतर किसान (गँवार) लोग ही हैं, तिरछी दृष्टि से किसे देखा जाये ? दुख-दुख की बात किससे कही जाये ? और किसके साथ हँसा बोला जाये ?' अर्थात् गँवारू गाँव में सारी विदग्धता व्यर्थ है।[3]

यहाँ नागरी नायिका के द्वारा ग्रामीण लोगों की निन्दा के ब्याज से, ग्रामीण सभ्यता को हेय दृष्टि से देखकर, व्यंग्य रूप से नागर सभ्यता का ही महत्व प्रतिपादन किया गया है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) कामसूत्र- 1/4/1
(2) गाथा सप्तशती 5/21
(3) गाथा सप्तशती 2/64

कामशास्त्रीय प्रभाव भी नागर भावनाओं के प्रतिबिम्बन का ही परिणाम है तथा गाथा सप्तशती के कवियों को कामशास्त्र का पूरा-पूरा ज्ञान था, अतएव गाथा सप्तशती में नागर-भावनाओं का स्पर्श देखा जा सकता है। गाथा सप्तशती में 'रति गृह'[1] और उसमें 'शुक सारिकादि'[2] की स्थिति का उल्लेख, कामसूत्र में वर्णित नागरक के विशिष्ट निवास स्थान[3] में केलिगृह के आदर्श के अनुसार ही है, जिसमें, बाहर की ओर शुक-सारिकादि पक्षियों के पिंजरे टाँगने का उल्लेख है[4]। इसके अतिरिक्त प्रणयक्रीड़ाओं के अंतर्गत, आलिंगन भेदों में- 'स्पृष्टक'[5] 'विद्धक'[6] 'लता वेष्टितक'[7] 'वृक्षाधिरूढक'[8]; चुम्बन भेदों में- 'रागदीपन',[9] वदन ग्रह,[10] नखच्छेद भेद-- अर्द्ध चन्द्रक,[11] शशप्लुतक,[12] उत्पल पत्रक,[13] दन्त क्षत भेद[14] 'उच्छूनक',[15] बिन्दुमाला,[16] प्रवाल मणि,[17] का वर्णन किया गया है। विपरीतरत अथवा पुरुषायित तो[18] शृंगार के क्षेत्र में अत्यधिक प्रिय रहा है। गाथा सप्तशती में अनेक स्थलों पर इसका चित्रण है।[19]

सारांशतः, गाथा सप्तशती में कामशास्त्रीय भावनाओं- नागर भावनाओं - का सूक्ष्म चित्रण है।

---

(1) गाथा०- 6/52
(2) गाथा०- 6/89
(3) कामसूत्र- 1/4/4
(4) कामसूत्र- 1/4/13
(5) " - 2/2/9, गाथा० 2/93
(6) " - 2/2/10, " 2/93
(7) " - 2/2/16, " 4/4
(8) " - 2/2/17, " 6/84
(9) " - 2/2/16, " 1/20
(10) " - 2/3/24, " 6/50
(11) " - 2/4/14, " 6/70
(12) " - 2/4/20, " 2/45
(13) " - 2/4/21, " 2/50
(14) " - 2/5/15 - -
(15) " - 2/5/07 गाथा० 7/34
(16) " - 2/5/13 " 6/07
(17) " - 2/5/10 " 7/05
(18) " - 2/8/1 - -
(19) " - गाथा० 1/52, 2/51, 5/13, 46

इन सभी नागर चेष्टाओं का प्रतिफलन मुक्तक काव्यों में, सतसइयों में देखा जा सकता है । यही वे स्रोत हैं जहाँ से रीतिकालीन कवियों को अपने विषय के लिए सामग्री उपलब्ध हुई है ।

## आर्या सप्तशती -

आर्या सप्तशती में नागर की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख है, 'जिसमें करुणा आदि आर्द्रभाव, शृंगार आदि रस नहीं है, जो पापयुक्त है, ऐश्वर्यशाली होते हुए भी ऐसे पुरुष के लिए 'नागर' (नगर जन्य) शब्द का प्रयोग विडम्बना मात्र है, जैसे- सूखी, तिक्त आदि रस रहित नकेली सौंठ के टुकड़े को 'नागर' (सौंठ का दूसरा नाम) कहना उपयुक्त नहीं होता है ।[1] इस आर्या से स्पष्ट है, कि नागर होने के लिए मात्र नगर का रहने वाला अथवा ऐश्वर्यशाली होना ही पर्याप्त नहीं है, नागरक को नागर भावनाओं से भी युक्त होना चाहिए ।

'तुम्हारे कर स्पर्श से ही अधीर नायिका तुम्हारे लिए आतुर है'- ऐसा नायक से नायिका की सखी कह रही है । "(अपने अनुरूप नायक का अभाव होने से) उत्तम वनिताओं के केवल तुम ही गति रूप हो । चोटों का संस्पर्श करने वाले (अपने) हाथ से ही स्पर्श कर तुमने सखी का धैर्य हर लिया (आगे न जाने क्या-क्या करोगे) जैसे वनिता की भाँति मंद गति (अपनी) जाँघों का स्पर्श कर, हाथी सूंड से सल्ली के वक्ष को स्पर्श करता रहता है ।[2] इस आर्या में कामसूत्र में वर्णित नागरक के समान चतुर नायक की वर्णना है ।[3]

आर्या सप्तशती में नागर भावनाओं से युक्त नायिका का महत्व प्रतिपादन करता हुआ कवि कहता है- 'चतुर अंगना की संगति त्याग कर मूर्ख अंगना की संगति की इच्छा लाघवकारिणी होती है ।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) आर्या सप्तशती गोवर्धनाचार्य आर्या- 27।
(2) - वही - 138
(3) कामसूत्र - 1/4/1
(4) आर्या सप्तशती गोवर्धनाचार्य आर्या- 416

आर्या सप्तशती की एक नायिका ग्राम्या है, किन्तु नागर भावनाओं से युक्त होने के कारण ही नागर के लिए उपयुक्त कही गई है ।[1]

कोई स्त्री ।सखी। नायिका को शिक्षा देती हुई कहती है, सीधे मार्ग से चलो, नागर रीति को छोड़ो । इस अहीरों की बस्ती का मालिक कटाक्ष विक्षेप से भी डाकिनी कहकर दण्ड देता है ।[2]

इस प्रकार ग्राम्य अथवा ग्रामीणों पर व्यंग करके, अप्रत्यक्ष रूपेण नागर भावनाओं का ही समर्थन किया गया है ।

कामसूत्र में नागरक के गृहोद्यान का उल्लेख है ।[3] आर्या सप्तशती की नायिका रात्रि में केदार की क्यारी में पर-पुरुषों के साथ घूमकर निर्भय सुरत क्रीड़ा किया करती है ।[4] कामसूत्र में नागरक के शयन कक्ष का वर्णन किया गया है ।[5] आर्या सप्तशती में केलि मन्दिर के रूप में देखा जा सकता है । कहीं सखियाँ नवोढ़ा को केलिगृह में बल पूर्वक पहुँचा रही हैं[6], कहीं नायिका सखी की भाँति नवोढ़ा सपत्नी को केलिगृह में पहुँचा कर अन्य नायक के पास जा रही है[7], कहीं नायक केलि सदन में नायिका का कुचमान प्रणति द्वारा भंग कर रहा है[8], इत्यादि ।

आर्या सप्तशती में ।रतिगृह में। शुक सारिकादि[9] की स्थिति का उल्लेख है, जो कामसूत्र में वर्णित नागरक के विशिष्ट निवास स्थान में केलिगृह के आवासानुरूप है, जिसमें बाहर की ओर शुकसारिकादि पक्षियों के पिंजरे टाँगने का विधान है ।[10]

---

।1। आर्या०-323
।2। आर्या०-140
।3। कामसूत्र-1/4/4
।4। आर्या०-16
।5। कामसूत्र-1/4/5-12
।6। आर्या०-246
।7। आर्या०-150
।8। आर्या०-512
।9। आर्या०-154, 211, 573
।10।कामसूत्र-1/4/13

इसके अतिरिक्त आर्या सप्तशती में प्रणयक्रीडाओं का भी वर्णन है। आलिंगन के अन्तर्गत 'विद्ध'[1] का वर्णन है। नायक द्वारा नायिका के नेत्र,[2] अधर[3] का चुम्बन शास्त्रानुमोदित उपयुक्त स्थानों पर है। नायक द्वारा नायिका का स्तन[5] और जघन[6] पर नखक्षतों का उल्लेख शास्त्रसम्मत है।[7] प्रवास पर जाते समय स्मृति स्वरूप नखक्षत का विधान है।[8] आर्या सप्तशती में उसका संकेत है।[9] इसमें दन्तक्षत का नामोल्लेख मात्र है।[10]

अनेक आर्याओं में केलि का वर्णन है।[11] आर्या सप्तशतीकार ने विशिष्ट रुचि के साथ विपरीत रति का वर्णन किया है।[12]

इसके अतिरिक्त कामसूत्र में उल्लिखित विविध विहारों में जल-क्रीड़ा[13] का वर्णन आर्या सप्तशती में देखा जा सकता है।[14]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

| | | | |
|---|---|---|---|
| (1) | कामसूत्र- | 2/2/10, | आर्या० 218 |
| (2) | × | × | आर्या० 2 |
| (3) | × | × | आर्या० 230, 232 |
| (4) | कामसूत्र | 2/3/67 | × |
| (5) | × | × | आर्या० 324 |
| (6) | × | × | आर्या० 509 |
| (7) | कामसूत्र | 2/4/5 | × |
| (8) | कामसूत्र | 2/4/22 | × |
| (9) | × | × | आर्या० 636 |
| (10) | × | × | आर्या० 613 |
| (11) | × | × | आर्या० 22, 72, 125, 361, 508 |
| (12) | × | × | आर्या०- 12, 85, 121, 158, 363, 364, 561 इत्यादि |
| (13) | कामसूत्र | 1/4/41 | × |
| (14) | × | × | आर्या०- 633, 679 |

## रीतिकालीन सतसइयाँ -

रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयाँ राजाश्रित कवियों द्वारा रचित हैं, अतः, ये आश्रयदाता राजा अथवा दरबारी पर्यावरण में अभिजात-वर्ग की अभिरुचि के अनुरूप हैं। अभिजात वर्ग का संबंध नगर से था, अतः इन सतसइयों में नागर भावनाओं की अभिव्यक्ति भी अधिक मुखरित हुई है।

भक्तिकाल में ही काव्य धारा राम और कृष्ण से प्रभावित हो गई थी। गाथा और आर्या सप्तशतियों के रचना काल में ऐसी कोई पृथक भाव धारा नहीं थी, जिससे यह काव्य प्रभावित होता, आर्या में एक आध ही आर्या राधा कृष्ण की प्रेमा भक्ति से अनुप्राणित दृष्टिगत होता है, गाथाओं में तो इतना संकेत भी नहीं है।

अब रीतिकाल में 'हरिस्मरण' मन की सरसता और काव्य कला का अपूर्व कौतुक' प्राप्त होने लगा। भक्ति की भावतरंगिणी जो प्रभावित हुई उसमें रीतिकालीन कवि डुबकी लगाने लगे। अतः प्राकृत और संस्कृत की सप्तशतियों से इन सतसइयों का स्वर कुछ भिन्न है। इस विषय में कुछ भेदक तत्व इस प्रकार हैं-

1. कवियों की उपेक्षा में भक्ति का स्थान।
2. कृष्ण के ग्राम्य वातावरणीय चरित्र में भी नागर भावना का समावेश।
3. राजाश्रय के कारण नायक-नायिकाओं के चरित्र चित्रण में उदात्तता का अभाव।
4. ग्रामों की निसर्ग रुचिर आभा की निन्दा।

रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयों में 'नागर'-'नागरी' शब्द का प्रयोग चातुर्य युक्त नायक-नायिका के लिए हुआ है। यहाँ 'चातुर्य' से तात्पर्य-'कामशास्त्रीय चातुर्य' से ही है। यही नागरी-नायिका एवं नागर-नायक रीतिकालीन सतसईकारों के लिए शृंगार-रस के आदर्श हैं।

अतः, कविवर बिहारी के शृंगार रस के आदर्श नायिका-नायक एवं इष्ट आराध्य-युगल राधा-कृष्ण, नागरी एवं नागर ही हैं-

(1) मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित दुति होइ ॥[1]

(2) तौ, बलियै, भलियै बनी, नागर नंद किसोर ।
जौ तुम नीकै कै लख्यौ, मो करनी की ओर ॥[2]

बिहारी की (नागरी) नायिका 'नागर-नरनु' को ही अपने कटाक्षों का शिकार बनाती है ।[3] 'नागर' के प्रेम ही में उलझी हुई है[4] और उसका नागर प्रेम छुपाये नहीं छुपता है ।[5]

विलास सामग्री से अनभिज्ञ ग्रामवासियों के प्रति परोक्षरूपेण अपनी अरुचि का ही परिचय रीतिकालीन साहित्यकारों ने दिया है[6]। यदि नागरी नायिका ग्राम वासियों में पहुँच जाती है तो 'गाँव के गँवार', नागरता के नाम पर उसकी हँसी उड़ाते हैं, जिससे उसका (नागरता का) गर्व चूर हो जाता है ।[7] यहाँ तक कि गँवारों में बस कर, नागरी को उन्हीं सा गँवारपन न अपनाने पर हास्यास्पद होना पड़ता है ।[8] इस प्रकार से ग्राम-वासियों के प्रति अरुचि एवं उपेक्षा प्रदर्शित कर परोक्षरूपेण नागरता का ही समर्थन किया गया है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) बिहारी रत्नाकर दोहा संख्या-1
(2) - वही -621
(3) - वही -45
(4) - वही -194
(5) - वही -397
(6) - वही - 624, 438
(7) - वही - 276
(8) - वही - 506

रीतिकालीन सतसईकारों ने कामशास्त्रीय तत्वों का उपयोग अपनी सतसइयों में किया तो है, किन्तु वह किसी भी प्रकार के शास्त्रीय विवेचन एवं शास्त्रीय तत्वों से अधिक प्रभावित नहीं है। क्योंकि रीतिकालीन कवियों की दृष्टि न तो शास्त्रीय विवेचन और न शास्त्रीय तत्वों को ग्रहण कर सकी, जितनी कि उनके आदर्शभूत संस्कृत अथवा प्राकृत के प्राचीन कवियों और आचार्यों की, अतः हिंदी के रीतिकालीन सतसईकारों में कामशास्त्र के सिद्धान्तों का उपस्थापन ही दृष्टिगोचर होता है।

वात्स्यायन कृत कामसूत्र में 'काम' के ऊपर धर्म का नियंत्रण है। परंतु संस्कृत की काव्यधारा के समान कामशास्त्रीय धारा की दिशा परिवर्तित हुई। 'रति रहस्य' तक आते आते वात्स्यायन के लोक मंगल के स्थान पर ऐकान्तिक विलास ही कामशास्त्र का लक्ष्य रह गया था। अनंग-रंग में भोग को ही परमानंद के समान कहा गया है। तदन्तर कामशास्त्रीय सिद्धांतों के व्याख्याता, काश्मीरी पण्डित कोक के नाम पर कामशास्त्र, 'कोक शास्त्र' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

रीतिकालीन सतसईकारों पर इसका भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। रामसहाय की राम सतसई में नायिका कोक-कला-प्रवीणा है -

सब विधि अति रति कोविदा, कोक कला की नाह।
कनक बेलि सी केलि में लिय, पिय हिय लपटाह ॥[1]

कामसूत्र में वर्णित नागरक वृत्त प्रकरण के अन्तर्गत शयन कक्ष[2] का जैसा वर्णन है रीतिकालीन सतसइयों में 'केलि भवन' के रूप में देखा जा सकता है। मतिराम सतसई में सखियाँ नवोढा को 'केलि भवन' में पहुँचा रही हैं।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राम सतसई दोहा संख्या- 142

(2) कामसूत्र- 1/4/5-12

(3) मतिराम सतसई दोहा सं०- 560

इसके अतिरिक्त, कामसूत्र में वर्णित प्राक्.. रीतिकालीन सतसइयों में देखा जा सकता है ।

रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसइयों में आलिंगन भेदों में 'स्पृष्टक,'[1] 'क्षीरजलक'[2] लतावेष्टितक,[3] ; चुम्बन भेदों में 'रागदीपन'[4], नखक्षत- उत्पलपत्रक,[5] अर्द्धचन्द्रक[6] प्रवास गमन के समय स्मृति चिन्ह स्वरूप नखक्षत[7] का उदाहरण बिहारी रत्नाकर में देखा जा सकता है ।[8] दन्तक्षत के अन्तर्गत प्रवालमणि[9] के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं ।[10]

सतसइयों में रति क्रीड़ा के चित्रण भी खूब देखने को मिलते हैं । बिहारी ने तो रतिक्रीड़ा का विवरण देते हुए स्पष्ट ही कहा है -

चमक, तमक, हाँसी, ससक, मसक, झपट लपटानि ।
ये जिहिं रति सो रति मुकुति, और मुकुति अति हानि ।।[11]

रति क्रीड़ा में सुरतारम्भ,[12] सुरत क्रिया[13] और सुरतान्त[14] की वर्णना के उदाहरण सतसइयों में भरे हैं । विपरीतरत[15] के वर्णन में भी उत्साह दिखाई देता है ।[16]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। कामसूत्र- 2/2/9, राम सतसई दो0-142, बिहारी रत्नाकर दो0 386, विक्रम सतसई दो0-444
।2। काम0-2/2/20, बि0र0-494, विक्रम स0-222, मतिराम-636
।3। काम0-2/2/16, विक्रम सत0-399, मतिराम सत0- 636
।4। काम0-2/2/16, बि0र0642,
।5। काम0-2/4/21, मतिराम सत-481
।6। काम0-2/4/14, बि0- 297, राम0सत0- 108, विक्रम सत0- 68
।7। काम0-2/4/22
।8। बिहारी रत्नाकर- 298
।9। कामसूत्र- 2/5/10
।10। बिहारी रत्नाकर- 82, मतिराम सतसई- 183
।11। बिहारी रत्नाकर- दो0 76
।12। बिहारी रत्नाकर- - 465, 683, मतिराम सतसई- 493
।13। बिहारी रत्नाकर- 76, 644 मतिराम सतसई- 301, 597, 606, 577
।14। बिहारी रत्नाकर- 653, 655 मतिराम सतसई- 131, 647
।15। कामसूत्र- 2/8/1
।16। बिहारी रत्नाकर- 129, 130, 155, 319, मतिराम सतसई 157 158, 494, 495, 498, 500, 539 इत्यादि

वात्स्यायन कृत कामसूत्र में नागरकों की विलास क्रीडाओं के वर्णन में काम क्रीड़ा के अनेक रूप मिलते हैं ।[1] हिन्दी सतसईकारों ने भी काम के मनोहारी चित्र अंकित किए हैं ।[2] वात्स्यायन ने नागरक वृत्त प्रकरण में उपवन विहार के ही अन्तर्गत जलक्रीड़ा का वर्णन किया है ।[3] हिन्दी सतसईकारों ने इसका भी अनुकरण किया है ।[4] इसके अतिरिक्त रीतिकालीन सतसइयों में पतंग उड़ाना,[5] हिंडोल झूलना[6] आदि को भी विलासों के अन्तर्गत माना जायेगा ।

## रामधर सतसई

यतः रामधर सतसई रीतिकाल में ओरछा महाराज उदोत सिंह के राजाश्रित कवि रामधर द्वारा प्रणीत है, अतः इसमें भी रीतिकालीन राजाश्रित कवियों द्वारा रचित शृंगारिक सतसइयों के पूर्वोल्लिखित समस्त रूप से सामान्य और वैशिष्ट्य का समावेश होना स्वाभाविक ही है । नागर भावनाओं के सम्बन्ध में भी यह तथ्य अपवाद नहीं है ।

---

॥1॥ कामसूत्र- 1/4/42

॥2॥ बिहारी रत्नाकर- दोहा 350, 352, 353, 503
मतिराम सतसई - 447, 448, 449

॥3॥ कामसूत्र- 1/4/41

॥4॥ बिहारी रत्नाकर- 152, 153

॥5॥ बिहारी रत्नाकर- 373

॥6॥ बिहारी रत्नाकर- 99, 686

नागरक के शयन कक्ष का जैसा वर्णन वात्स्यायन ने किया है ।[1] उसे पढ़ने के बाद यदि रीतिकाव्य के साक्ष्य पर रीतिकाल की नायिकाओं के 'श्रृंगार मन्दिर' की कल्पना की जाये तो बहुत कुछ साम्य मिल सकता है ।[2] राजधर सतसई का 'रमन-भवन' संभवतः इसी का पर्याय प्रतीत होता है -

रमन भवन मैं आवति ही, मन विचार तिय केलि ।
लखत रमन कौं फिर चली, पैसति पाउ पठेलि ।।[3]

एक नवोढा नायिका[4] लज्जा एवं भय के कारण, केलि का विचार मन में आते ही, नायक को देख कर 'रमन-भवन' से वापिस लौट चली।

आलिंगन-
=======

ललित लता लपटी लसनि, लसनि- तरुन त्यनि अंग ।
सूचन कलिका तन भनौ, पुलकित ध्याग अनंग ।।[5]

वाच्य-वैशिष्ट्य से व्यंग यह है, कि नायक नायिका को (अथवा नायिका नायक से) 'लता वेष्टितक' आलिंगन[6] के हेतु प्रेरित कर रही है ।

'ललाटिका'[8] आलिंगन[7] के कारण ही अन्य नायिका की टिकुली नायक के मस्तक पर (खण्डिता के समक्ष तक) लगी चली आई है -

भली भाँति भूषित भई, टिकुली मौ दुख देन ।
अबी काम इस्ये नहीं, लाल्यु भर निमैन ।।[8]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) कामसूत्र- 1/4/5-10
(2) रीतिकाव्य-के स्रोत- डा० रामजी मिश्र- पृष्ठ - 43
(3) राजधर सतसई दोहा सं०- 528
(4) 'लज्जाभय पराधीना' रतिभीरुढा' (रस मंजरी) पृष्ठ- 8
(5) राजधर सतसई दोहा सं०- 552
(6) कामसूत्र- 2/2/16
(7) कामसूत्र- 2/2/27
(8) राजधर सतसई दोहा संख्या- 201

कतिपय अन्य दोहों में भी आलिंगन का वर्णन आया है, जिसका काम शास्त्रीय से नहीं अपितु काव्य की दृष्टि से ही महत्व है । जैसे- आलिंगन करते समय नायिका के शरीर पर रोमांच हो आया है,[1] अथवा नायिका भय-भीत है ।[2] कहीं नायिका दोहरी में प्रिय का आलिंगन कर तपन दूर कर रही है[3] कहीं हेमंत ऋतु ने तुषार के कारण आलिंगन-जन्य आनन्द समाप्तप्राय हो गया है ।[4]

चुम्बन -

खण्डिता नायिका, परस्त्री द्वारा नायक के नेत्र चुम्बन की ओर व्यंग्य पूर्वक संकेत कर रही है -

कीनी चुम्बन चतुर तिय, पीक पलक युत देन ।
कौन भाँति छोटे भये, छली चकोरे नैन ।।[5]

इस दोहे में कामशास्त्रीय दृष्टि से मात्र इतना संकेत मिलता है, कि नायिका ने नायक के नेत्र का चुम्बन किया है ।

दन्तक्षत -

कामसूत्र के अनुसार 'उत्तर-ओष्ठ' अन्तर्मुख और नयन को छोड़कर शेष चुम्बन-स्थलों पर दंतक्षत का विधान है ।[6] राजधर सतसई में दंतक्षत का उदाहरण देखिए -

अधरा रद नख कुच चुमन, लखे सुघर रति हेतु ।
जैसे छत छत्रीन को, दूनी शोभा देत ।।[7]

इस दोहे में नायक द्वारा नायिका के अधर पर दन्तक्षत का संकेत निहित है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। राजधर सतसई दो०- 230
।2। - वही - 122, 123
।3। - वही - 336
।4। - वही - 636, 641
।5। - वही - 225
।6। कामसूत्र- 2/5/1
।7। राजधर सतसई दो०- 424

## केलि -

केलि समय नायिका का नूपुर नायक के कानों के समीप जाकर कोलाहल कर रहा है -

कोलाहलु नूपुर करै, सुरत श्रवन ढिंग जाइ ।[1]

रतिक्रीड़ा का रूपक रण से देना भी प्राचीन काव्य परिपाटी थी ।[2] इसी परिपाटी का पालन ही राजधर सतसई में देखने को मिलता है-

(1) बिन भूषन भूषित भई, अँग अँग जोबन जोति ।
जुरी सुरति संग्राम निसि, सुरति न तन की होति ।।[3]

(2) और अँग सेना सबै, नारी होत समान ।
सुरत सुरत संग्राम मैं, कुच भट भिरत अमान ।।[4]

(3) सुरत समर जुरि पलक मैं, धन जय पाइ प्रवीन ।[5]

## विपरीत रति -

कामसूत्र में विपरीत रति का विधान है ।[6] राजधर सतसई में भी इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं -

(1) अब चकाति विपरीत रत, अधर संग चपि भीर ।[7]

(2) कुच उलटे विपरीत मैं, राज वेही भेस ।
काम नीति की कामना, जगु स्यु स्वयु महेस ।।[8]

(3) अबलौ रति विपरीत की, छुटत न मन मैं आस ।[9]

---

(1) राजधर सतसई दोहा- 45
(2) रीतिकाव्य के स्रोत- डॉ० रामजी मिश्र, पृ०- 194
(3) राजधर सतसई दोहा- 168
(4) - वही - 62
(5) - वही - 52
(6) -कामसूत्र- 2/8/1
(7) -राजधर सतसई दो०- 48
(8) -राजधर सतसई दो०- 166
(9) -राजधर सतसई दो०- 357

प्रथम दोहे में प्रौढा नायिका विपरीत रति में अग्रसर रही है । द्वितीय में विपरीत रति के समय नायिका के कुचों के सौन्दर्य का वर्णन है । तृतीय में नायिका एवं नायक की विपरीत रति की इच्छा का संकेत दिया गया है ।

विविध विहार -

वात्स्यायन कृत कामसूत्र में नागरकों की विलास क्रीड़ाओं के वर्णन में फाग क्रीड़ा के अनेक रूप मिलते हैं ।[1] रीतिकालीन सत-सतसईकारों में बिहारी एवं मतिराम ने फाग क्रीड़ा का चित्रण अच्छा किया है । राजधर सतसई में भी फाग के कतिपय चित्र देखे जा सकते हैं-

(1) काहू मूठि गुलाल की, काहू को पिचकारि ।
सहीं सौं रस रास करि, खेलत फाग मुरारि ।।[2]

(2) लपक धार इक पलक में, जानी नैंक परैन ।
अपने नैनि बचाइ कै, भरति और के नैन ।।[3]

(3) इत उत ह्वै अति लपकहीं, छल सौं आपु छपाइ ।
दीठि लाल की लाल कै, मूठि चालि ही जाइ ।।[4]

प्रथम दोहे में दक्षिण नायक कृष्ण किसी गोपी पर गुलाल की मूठ चलाते हैं तथा किसी पर पिचकारी चलाकर रस रास कर रहे हैं द्वितीय एवं तृतीय दोहे में गोपी अपने को बचाती हुई, नायक पर गुलाल की मूठ चलाती है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) कामसूत्र- 1/4/42
(2) राजधर सतसई दो०सं०- 254
(3) - वही - 255
(4) - वही - 256

राजधर सतसई के होली के चित्र अत्यन्त साधारण हैं, न इनमें चित्रण की सूक्ष्मता है, न चित्र विशेष भाव मय ही हो पाए हैं ।

**दोला क्रीड़ा -**

नागरक वृत्त प्रकरण में वात्स्यायन ने उनकी वाटिका में सघन छाया में 'प्रेङ्खा दोला' का होना आवश्यक माना है । उन्होंने 'चक्र दोला' का भी उल्लेख किया है[1]। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, 'प्रेङ्खा दोला की प्रथा वर्षा ऋतु में अधिक थी सुभाषितों में वर्षा ऋतु के वर्णनों के अवसर पर ही प्रेङ्खा दोलाओं का वर्णन पाया जाता है ।[2]

भक्तिकाल एवं रीतिकाल में श्री कृष्ण एवं राधा के झूला झूलने का मनोहर वर्णन मिलता है ।

राजधर सतसई में राधा-कृष्ण हिंडोला का वर्णन है -

नील पीत पट छवि छटा, गौर स्याम द्युति अंग ।
झूलति होति हिंडोरना, सुरतरु सारंग रंग ।।[3]

कहीं नायिकाएं 'मल्हार' गाती हुई हिंडोला झूल रही हैं-

गावति सबै मलार मिलि, झूलति सबै हिंडोर ।
बरसतु सुधा मनोज धनु, सरसाने की ओर ।।[4]

---

(1) कामसूत्र- 1/4/15
(2) प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ- 41
(3) राजधर सतसई दोहा संख्या- 30
(4) राजधर सतसई दोहा संख्या- 66

**निष्कर्ष :-**

§1§ नागर-सभ्यता का सम्बन्ध आभिजात्य की सभ्यता से है। आभिजात्य वर्ग का जीवन दर्शन वात्स्यायन कृत कामसूत्र में वर्णित 'नागरक वृत्त' प्रकरण के अनुरूप है। साथ ही, काव्यशास्त्र, कामशास्त्र से प्रभावित हुआ है, अतः आभिजात्य वर्गीय भावनायें अथवा कामशास्त्रीय भावनायें ही नागर-भावनायें हैं।

§2§ प्राकृत की गाथा सप्तशती जन कवियों द्वारा रचित गाथाओं का कोष है, उसमें ग्राम्य सभ्यता का प्राधान्य होते हुए भी नागर भावनाओं का सम्यक् स्पर्श है। गाथाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है, कि इनके कवियों को कामशास्त्र का विशद-ज्ञान था, अतः गाथा सप्तशती में कामसूत्रीय सूक्ष्मतायें द्रष्टव्य हैं।

§3§ संस्कृत की आर्या सप्तशती पर गाथा सप्तशती का प्रभाव है, साथ ही महाराज लक्ष्मण सेन के राजाश्रित कवि गोवर्धनाचार्य द्वारा प्रणीत है। दरबारी कवि के लिए राजा अथवा आभिजात्य वर्ग की रुचि के अनुरूप लिखना स्वाभाविक ही होता है, अतः आर्या सप्तशती में नागर भावनाओं का समावेश गाथा सप्तशती की अपेक्षा अधिक है, किन्तु इसमें कामशास्त्रीय सूक्ष्मता उतनी नहीं है।

§4§ रीतिकालीन हिंदी की शृंगारिक सतसइयाँ राजाश्रित कवियों द्वारा आश्रयदाता राजा अथवा आभिजात्य वर्ग की अभिरुचि के अनुरूप ही है। सर्वत्र प्रायः कामशास्त्रीय भावनाओं का प्रतिबिम्ब देखना संभव है, किन्तु इनमें कामशास्त्रीय सूक्ष्मता की अपेक्षा उथलापन ही है।

§5§ रामधर सतसई तत्कालीन परम्परा के अनुरूप ही है।

सारांशतः कहा जा सकता है, कि गाथा सप्तशती आर्या सप्तशती और रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयों में नागर भावनाओं के स्पर्श का क्रमशः मात्रात्मक विकास हुआ है, किन्तु कामशास्त्रीय सूक्ष्मताओं का §अथवा गुणात्मक§ ह्रास ही हुआ है।

## :-- सतसई साहित्य में परिलक्षित --:
## :-- सामन्तवादी शासन व्यवस्था --:

गाथा सप्तशती काल से रीतिकाल तक राज-तांत्रिक अथवा सामन्तवादी शासन व्यवस्था रही है । सामन्तीय अभिजात-वर्ग के अन्तर्गत सम्राट, सम्राट के परिवार जन, राजकीय कर्मचारी, नौकर चाकर इत्यादि आते थे । राज-तांत्रिक शासन व्यवस्था में सम्राट को एकाधिकार प्राप्त होता था वही शासन का सर्वोच्च सत्ताधान व्यक्ति होता था, अतः 'यथा राजा, तथा प्रजा' वाली उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती थी । यदि शासक चरित्र निष्ठ एवं धीर है तो राज्य में सुख-शान्ति-समृद्धि और व्यवस्था विराजमान रहती थी और यदि शासक दुश्चरित्र एवं विलासी हुआ, तो राज्य में दुःख अशान्ति, निर्धनता और अव्यवस्था अराजकता छायी रहती थी ।

यह युग 'वीर भोग्या वसुन्धरा' वाला युग था, अतः प्रायः युद्ध हुआ करते थे, युद्ध में वे शत्रु की सुन्दर बहू बेटियों का भी अपहरण कर लिया करते थे । जिसके कारण बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी । सामन्तवर्ग अभिजात्य वर्ग का जीवन ऐश्वर्य पूर्ण भोग-विलास युक्त रहता था । यह वर्ग मनोरंजन व अपनी रसिक वृत्ति की परितृप्ति हेतु कवियों को आश्रय दिया करता था, अतः राजाश्रित कवियों की कृतियाँ अथवा सतसइयाँ - दरबारी पर्यावरण, आश्रय दाता की अभिरुचि के ही अनुकूल होती थीं । प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत हम गाथा सप्तशती काल, आर्या सप्तशती काल एवं रीतिकाल में शासन व्यवस्था का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे ।

### गाथा सप्तशती -

गाथा सप्तशती काल राजा के दैवी अधिकारों का युग था । 'महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति' की मान्यता थी । अतः राजा का प्रजा पर पूर्णरूपेण आतंक था । लोगों का विश्वास था कि राजा

के विरुद्ध बात कहना विपरीतात्मक होता था ।[1] किन्तु शासन की दृष्टि से गाँव एक इकाई था । यह आत्म निर्भर होता था तथा उसके शासन तथा रक्षा का उत्तरदायित्व ग्राम्य के मुखिया पर होता था[2] उसको 'कर' वसूल करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था ।[3] इस प्रकार से वह ग्राम का सर्वमान्य व्यक्ति होता था । वस्तुतः उसकी स्थिति ग्राम में वैसी ही होती थी, जैसी देश में राजा की ।[4]

तत्कालीन समाज में चोरी और व्यभिचार होते थे ।[5] इन अपराधों को रोकने के लिए ग्रामाधिपति के सिपाही नियुक्त होते थे, जो उन्हें पकड़ कर ले जाते थे ।[6] अपराधियों के लिए कठोर दंड व्यवस्था थी । चोरी के अपराध में चोर को श्मशान वृक्ष पर लटका कर फाँसी दी जाती थी ।[7] प्राण दण्ड हेतु अपराधी को वध स्थल पर ले जाते समय ढोल पीटकर घोषणा की जाती थी ।[8]

सामन्तवादी व्यवस्था में युद्धों में स्त्रियों को जीतने तथा भोग-वादी प्रवृत्ति के कारण सामन्तों में बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी । बहु विवाह की प्रथा के परिणाम स्वरूप सपत्नियों की उपस्थिति भी पाई जाती थी । सौतिया डाह प्रसिद्ध ही है । इस सौतिया डाह ने गाथाकार कवियों को भी प्रभावित किया, अतः गाथा सप्तशती में सपत्नी विषयक अनेक गाथाएँ प्राप्त होती हैं ।[9]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) गाथा सप्तशती- 5/96
(2) - वही - 7/28
(3) - वही - 7/31
(4) - वही -, डा० परमानंद शास्त्री पृष्ठ- 48
(5) - वही - 7/98
(6) - वही - 6/56
(7) - वही - 6/63
(8) - वही - 1/29
(9) - वही - 6/97, 6/57, 5/52, 3/60 इत्यादि ।

## आर्या सप्तशती -

आर्या सप्तशती की रचना महाराज लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि गोवर्धनाचार्य द्वारा हुई। यतः यह श्रृंगार प्रधान रचना है, अतः सर्वत्र श्रृंगार सम्बन्धी आर्याएँ ही देखने को प्राप्त होती हैं। समग्र आर्या सप्तशती का आद्योपान्त अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि अन्तःसाक्ष्य के आधार पर, इसमें सामन्तवादी व्यवस्था का रंग पर्याप्त मात्रा में लक्षित होता है।

यह युग 'वीर भोग्या वसुन्धरा' वाला युग था।[1] इसीलिए कहा गया है कि 'मणियाँ और वीर पुरुष तेज दिखाने के लिये होते हैं। यदि तृण के समान तुच्छ व्यक्ति अपना तेज दिखाते हैं, तो वे नष्ट हो जाते हैं।[2] उस समय प्रायः युद्ध होते रहते थे और सामन्त लोग युद्ध में कूटनीति से काम लेते थे। एक आर्या में कहा गया है, कि यदि सुजन दुष्ट को जीतना चाहता है तो निश्चय ही खल को आगे करके जीते। विष्णु ने ज्वर को आत्मीय बनाकर रण में बाणासुर को जीता था।[3] युद्ध में चक्रव्यूह बनाना भी प्रचलित था।[4] राज्य में उच्च पद प्राप्त करने के लिए पण्डित-विद्वान होना आवश्यक नहीं था। मूर्ख लोग भी अपनी उच्च चाल (धूर्तता) से अमात्य का उच्च पद प्राप्त कर लेते थे।[5] राजकीय कर चुकाने के लिए चौकी (चुंगी) होती थी, जहाँ यात्रियों को कर चुकाना पड़ता था।[6]

---

(1) आर्या सप्तशती गोवर्धनाचार्य- 418 (आर्या)
(2) - वही - आर्या- 303
(3) - वही - आर्या- 396
(4) - वही - आर्या- 348
(5) - वही - आर्या - 41
(6) - वही - आर्या - 459

सामन्त लोग बल पूर्वक सुन्दर कन्याओं का अपहरण कर लेते थे । तत्पश्चात् उनसे विवाह कर लेते थे[1] तत्कालीन समाज में राहजनी,[2] जुआ,[3] और व्यभिचार का बोल बाला था ।[4] यहाँ तक कि भिक्षु भी व्यभिचार निरत थे ।[5] गुणी लोगों का सम्मान नहीं था ।[6] ठग नकली सोना बनाकर लोगों को ठगते थे ।[7] अल्पसंख्यक राजदण्ड से पीड़ित रहा करते थे ।[8] ऐसा प्रतीत होता है कि अव्यवस्था एवं अराजकता का युग था ।

सामन्त शाही व्यवस्था में बहु विवाह की प्रथा थी । जिससे सपत्नी सम्बन्धी कई आर्याएँ, आर्या सप्तशती में मिलती हैं । कहीं सपत्नी नवोढ़ा को केलि गृह में पहुँचाकर स्वयं अन्य नायक के पास जा रही है ।[9] कहीं नायक सपत्नी के पास जाने के लिए प्रथम पत्नी के सोने की प्रतीक्षा कर रहा है ।[10] कहीं नायक के मुँह से धोखे से अन्य सपत्नी का नाम निकल जाने से गृह पत्नी मान कर रही है,[11] आदि ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। आर्या० 178

।2। आर्या० 27

।3। आर्या० 78, 622

।4। आर्या० 130, 221

।5। आर्या० 240

।6। आर्या० 269

।7। आर्या० 160

।8। आर्या० 371

।9। आर्या० 150

।10।आर्या० 152

।11।आर्या० 199

## रीतिकालीन सत्ताएँ :-

हिन्दी साहित्य में रीतिकाल का आरम्भ संवत् 1700 से माना जाता है। इस समय मध्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था का आधार था- व्यक्तिवादी निरंकुश राजतंत्र। इस प्रकार की व्यवस्था में शासक ही राष्ट्र के भाग्य का विधाता, युग चेतना का नियामक तथा कुछ सीमा तक एक विशिष्ट जीवन दर्शन का प्रतिपादक भी होता था। उसके सार्वभौम व्यक्तित्व में समस्त अधिकार केन्द्रित रहते थे। सम्राट के अधीन राजा और नवाब होते थे। जो उसके मनसबदार भी होते थे और उनकी ओर से युद्ध करते थे। राजे महाराजे और नवाब लोगों ने भी अपने राज्य को जागीरों और ठिकानों में विभक्त कर दिया था और उन्हें अपने अधीन सामन्तों को दे दिया था।[1]

'अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के समय की समृद्धि के कारण भारतीय वैभव की धाक विदेशों में जम गई थी। पानीपत के दूसरे युद्ध के बाद मुगल शक्ति से टक्कर लेने की क्षमता किसी में नहीं रह गयी थी। औरंगजेब के काल में शिवाजी के प्रबल आक्रमणों से मुगल साम्राज्य की नींव हिल उठी।[2] केन्द्रीय शासन के दुर्बल हो जाने से अनेक प्रदेशों के शासक जो पहले से ही सिर उठा रहे थे, स्वतंत्र हो गए।[3] उत्तर भारत के प्रदेशों का शासन छोटे जमींदारों के हाथ में आ गया। सभी महत्वाकांक्षी वर्ग मुगल सम्राट के विरुद्ध सिर उठाने लगे।[4] और, वे अपने-अपने क्षेत्रों में निरंकुश शासक थे। इस प्रकार दोहरा शासन स्थापित हो गया और जनता को इसका फल भोगना पड़ रहा था -

---

(1) हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास - भाग-6 सम्पादक डा0 नगेन्द्र पृष्ठ- 3

(2) हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास - भाग-6 पृष्ठ- 9

(3) - वही - 10

(4) - वही - 11

दुसह दुराज प्रजानि कौं, क्यों न बढ़ै दुख द्वंदु ।
अधिक अँधेरौ जग करै, मिलि मावस रवि चंदु ॥[1]

शासक वर्ग प्रजा का शोषण कर रहा था ।[2] उनके विरुद्ध आवाज उठाने का साहस किसी में भी न था ।[3] शासन में पक्ष-पात का बोलबाला था । शासक वर्ग अपने-अपने जनों को ही लाभान्वित करने में लगे थे ।[4] जो राजा मंत्रियों के वशीभूत थे, वे भी सुखी नहीं थे ।[5]

विलासिता-पूर्ण जीवन यापन -

रीतिकालीन सामन्तीय व्यवस्था में आभिजात्य वर्ग का जीवन विलासिता पूर्ण था । साहित्य, संगीत, सुन्दरी और सुरा उनके मनोरंजन के साधन थे, बिहारी सतसई के अनुसार-

तन्त्रीनाद कबित्त रस, सरस राग रति रंग ।
अनबूड़े-बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग ॥[6]

विलासमग्न राजे-महाराजे अपने को कामदेव का अवतार प्रदर्शित करने में अपने जीवन की सार्थकता समझते थे । बिहारी के आश्रयदाता अपने शीश महल में अनेक कामदेवों की शोभा धारण किए हुए हैं ।[7] मतिराम के भोगनाथ के नयनों के जादू से 'परभात' नामी 'महि' रही है ।[8]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) बिहारी रत्नाकर- दोहा सं0- 357
(2) - वही - 429
(3) - वही - 431
(4) - वही - 02
(5) मतिराम सतसई, दोहा सं0- 433
(6) बिहारी रत्नाकर - 94
(7) - वही - 167
(8) - मतिराम सतसई दोहा सं0- 695

राजधर के आश्रयदाता महाराज उदोत सिंह भी कामिनियों के लिए कामदेव के समान हैं -

(1) कामिनि काजे काम है, सुरतरू कामिनि जान ।[1]

(2) सुन्दरता को मैन है, औरो देखे मैन ।[2]

वे तो यहाँ तक कामी हैं, कि शत्रुओं की बालाओं को निर्वसन करके ही छोड़ते हैं -

राजधर हरिहर करत, नवल बधून भीर ।
छांड़त प्रजा बालकनि, चीरनि बिना शरीर ।।[3]

रीतिकालीन अभिजात वर्ग के विलासिता पूर्ण जीवन को सुविधानुसार दो वर्गों- (1) संयोगकालीन विलासिता के उपकरण (2) विप्रलम्भ कालीन विलासिता के उपकरण में विभक्त कर सकते हैं।

(1) संभोगकालीन विलास-उपकरण-

वात्स्यायन कृत कामसूत्र में निर्दिष्ट नागरक के शयन-कक्ष[4] के अनुरूप रीतिकालीन साहित्य में केलि-मन्दिर का वर्णन सतसइयों में पाया जाता है ।[5] राजधर सतसई में इसे ही 'रमन भवन' (रमण भवन) कहा गया है ।[6] इस प्रकार के 'केलि मंदिरों' में सभी प्रकार के संभोग-कालीन विलासिता के उपकरण उपस्थित किये जाते थे । विक्रम साहि के शब्दों में -

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 208
(2) - वही - 211
(3) - वही - 210
(4) कामसूत्र- 1/4/5-12
(5) मतिराम सतसई दोहा संख्या-170, 197, 266
(6) राजधर सतसई दोहा संख्या- 528

सेज सुपेती सजन सिय, सुरा सुराही प्रीति ।
देखि दीठि भयभीत ह्वै, भजत सिसिर की सीति ।।[1]

आभिजात्य वर्ग की नायिकाएँ सौन्दर्य वर्धन हेतु अपने शरीर पर अंगराग[2], केसर[3], चन्दन[4], कपूर[5] आदि का प्रयोग करती थीं । केशों[6] एवं वस्त्रों को सुगंधित[7] करती थीं ।

विप्रलम्भ कालीन विलास-सामग्री -

आभिजात्य प्रोषित भर्तृकाएँ भी कामाग्न्युपचार हेतु काम-शास्त्रानुमोदित उपकरणों को प्रयुक्त करती थीं । सखियाँ (अथवा दासियाँ) उन पर गुलाब जल छिड़कती थीं,[8] कपूर[9], चंदन[10] उसीर[11] (खस) आदि का ~~अभिषेक~~ अवलेपन करती थीं ।

गाथा सप्तशती एवं आर्या सप्तशती में 'सौतिया-डाह' वर्णन की परिपाटी से रीतिकालीन शृंगारिक सतसईकार भी प्रभावित हुए हैं । अतः इन सतसइयों में पर्याप्त मात्रा में सपत्नी विषयक साहित्य उपलब्ध होता है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) विक्रम सतसई- दोहा संख्या- 279

(2) बिहारी रत्नाकर- दो०सं०- 334

(3) - वही - 359

(4) - रामसतसई दो०सं०- 281, राजधर सत० - 451

(5) - रामसतसई दो०सं०- 281

(6) बिहारी रत्नाकर दो०सं०- 95

(7) राजधर सतसई दो०सं०- 230, 335

(8) बिहारी रत्नाकर दो०सं०- 308, 529, विक्रम सत० 245

(9) बिहारी रत्नाकर दो०सं०- 529, मतिराम सतसई- 08

(10) बिहारी रत्नाकर दो०सं०- 529, विक्रम सतसई- 246

(11) बिहारी रत्नाकर दो०सं०- 224, विक्रम सतसई- 245

जैसे एक प्रेम गर्विता नायिका सौतों (को नीचा) दिखाने के लिए नायक द्वारा प्रदत्त माला पहिने फिर रही है ।[1] ज्यौं-ज्यौं नवोढ़ा नायिका के उरोज ऊँचे हो रहे हैं, त्यौं-त्यौं सब सौतों के नयन नीचे हो रहे हैं ।[2] ज्यौं-ज्यौं नवल बाला का मुख चन्द खिल रहा है, त्यौं-त्यौं सौतों के मुख मुरझा रहे हैं ।[3] सौत के पाँव में सुन्दर महावर देखकर नायिका (पहले से ही) दुःखी है । (इतने में) प्रियतम की अँगुलियों में लाली देखकर उसके हृदय में आग लग गई ।[4] (मानो) नव वधू के मुँह दिखाई में सास ने घर, नायक ने मन और सौतों ने सौभाग्य ही दे दिया ।[5] नायक के मुँह से सौत का नाम सुनकर नायिका को अश्रुपात होने लगा और हँसी के समान उसका हास उड़कर चला गया ।[6] बिहारी ने सौत के सूक्ष्म भाव वर्णन में विशेष सफलता प्राप्त की है ।[7]

सम्राटों, राजाओं, सामन्तों और छोटे-छोटे जमींदारों के आश्रय में कवि लोग रहा करते थे । सतसईकार बिहारी शाहजहाँ और जयसिंह के दरबार में रहे । मतिराम बूँदी के राजकुमार भाव सिंह, कुमायूँ के ज्ञान चंद, गढ़वाल के फतेशाह और शिवाजी के पुत्र शंभाजी आदि अनेक राजाओं के आश्रय में रहे । राम सतसई के प्रणेता राम सहाय काशी नरेश महाराजा उदित नारायण सिंह के आश्रित थे । आलोच्य ग्रन्थ - "राजधर सतसई" के प्रणेता कवि राजधर भी ओरछा महाराज उदोत सिंह के राजाश्रित दरबारी कवि थे ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) बिहारी रत्नाकर दोहा- 122
(2) मतिराम सतसई दोहा सं०- 115
(3) - वही -136
(4) बिहारी रत्नाकर दोहा- 287
(5) - वही - 288
(6) -मतिराम सतसई दोहा - 347
(7) -बिहारी रत्नाकर दो०- 187

## राजधर सतसई -

राजधर सतसई के अवलोकन से स्पष्ट है, कि उस समय सामन्तवादी व्यवस्था थी । बेतवा नदी के किनारे ओरछा नगर है । यहाँ बुन्देला राजा[1], धीर सिंह के पौत्र उदोत सिंह का राज्य था ।[2] महाराज उदोत सिंह प्रतापी,[3] दानवीर[4] बलवान और बुद्धिमान राजा थे ।[5] उन्होंने अनेक राजाओं को विजित किया था एवं उनके गढ़ों को ध्वस्त किया था ।[6] वे पंडितों का सम्मान करते थे एवं दुष्टों को दण्डित करते थे ।[7] शत्रुओं को त्रस्त करते थे एवं (युद्ध में विजय प्राप्त करके शत्रुओं की) बालाओं को निर्वसन करके छोड़ दिया करते थे ।[8] इस प्रकार महाराज उदोत सिंह कामिनियों के लिए कामदेव, कवियों के लिए कल्पतरु एवं युद्ध में शूरवीर थे ।[9] उनके राज्य में दिन रात स्वर्ण की वर्षा होती थी[10] अर्थात् अत्यन्त समृद्धि थी ।

महलों में रत्न जटित खम्भे थे[11], एक नायिका (राज महल में) नायक का आलिंगन करती हुई सकुचा रही है, क्योंकि उसको (नायिका को) अपने ही अनेक प्रतिबिम्ब मणिमय महल में दिखाई देने से उसे अपनी अनेक सखियों की उपस्थिति का भ्रम हो रहा है ।[12]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या - 03
(2) - वही - 04
(3) - वही - 05
(4) - वही - 07
(5) - वही - 07
(6) - वही - 09
(7) - वही - 04
(8) - वही - 210
(9) - वही - 209
(10) - वही - 653
(11) - वही - 29
(12) - वही - 123

कभी नायिका नायक के वक्ष पर लटकते हुए हार के रत्न में अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर डर रही है। (कहीं ऐसा तो नहीं कि कोई अन्य स्त्री उसके मिलन को देख रही हो) ।[1]

भक्तिकाल की राधा जो ब्रज भूमि (ग्राम्य पर्यावरण में अथवा कुंजों में) रहती थी, वह भी राजधर सतसई में स्फटिक के महलों में निवास करती हुई दिखाई गयी है ।[2]

संयोगकाल में राजधर सतसई की नायिकाएँ विलास के उपकरण प्रयुक्त करतीं थीं। एक आगत पतिका 'वर विहार' हेतु (केलि) भवन को सुवासित करती है, सेज को सरस सुगंधयुक्त करती है, एवं सम्पूर्ण आभूषणों से मण्डित होकर प्रिय की प्रतीक्षा करती है :-

(1) करि सुवास वासित भवन, रवन भवन दुति अंग ।
    चाहति आगमु कंत कौ, वर विहार मिलि संग ।।[3]
(2) सरस सुगंधनि सेज सजि, भूषन सकल सिंगार ।
    पिय आगमु अवलोकही, डीठि पाँउड़े डारि ।।[4]

प्रिय से मिलते समय भी अभिजात नायिका सुगंधित-कंचुकी धारण करती है -

रुचि सुगंध की कंचुकी, वहु विधि कुचनि छ्याइ ।[5]

राजधर की नायिका अंगों को चंदन-चर्चित कर संभोग-लिप्त है -

वर विभूति मंडित भए, चंदन चरचे अंग ।
भए दिगंबर सुरत कुच, लपटे अलक भुजंग ।।[6]

---

(1) राजधर सतसई दोहा सं0- 122
(2) - वही - 245
(3) - वही - 335
(4) - वही - 345
(5) - वही - 230
(6) - वही - 451

राजधर सतसई की अभिजात प्रोषितभर्तृका नायिकायें स्वयं ही अथवा उनकी सखियाँ कामशमनोपचार हेतु सुगंधित जल, उशीर (खस) घनसार (कपूर) को प्रयुक्त करती हैं -

(1) तनु अति पीड़ित होतु है, लगि सुगंध की सौंई ।[1]
(2) धार धार पलकति रहति, उर, उसीर घनसार ।।[2]

ऐश्वर्य पूर्ण जीवन होने के कारण प्रवास काल में भी नायिकाओं द्वारा विलास पूर्ण सामग्री का उपभोग करना स्वाभाविक ही था ।

बहु विवाह के प्रचलन के परिणाम स्वरूप राजधर सतसई में भी सपत्नी विषयक दोहे मिलते हैं। राजधर सतसई में जितने भी दोहे हैं उनका सम्बन्ध सौतिया डाह से है । जैसे- ज्यों-ज्यों शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा के समान नायिका के मुख चंद्र की दीप्ति की वृद्धि होती है, त्यों-त्यों सपत्नियों के मुख मलिन पड़ते जाते हैं -

लखि लखि लोचन नलिन दल, सौतिन मलिन मुख होति ।
शुक्ल पक्ष के चंद लौं, बाढ़ति है मुख जाति ।।[3]

नायिका के सौन्दर्य के कारण सौतों का सब गर्व नष्ट हो गया ।[4] नायिका की सौतों को दुख होता है किन्तु उसकी सखियों को सुख होना स्वाभाविक ही है ।[5] एक दोहा और देखिए, नायक के द्वारा नख छत तो नायिका को लगे, किन्तु सपत्नियों के हिय में पीड़ा हो रही है -

भृगगति की गति यहै, मैं जानति हौं वीर ।
नख छत लागे तो हिय, सौतनि के हिय पीर ।।[6]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दो- 25
(2) - वही - 452
(3) - वही - 387
(4) - वही - 386
(5) - वही - 388
(6) - वही - 112

## निष्कर्ष :-

गाथा सप्तशती काल से रीतिकाल तक राज-तांत्रिक सामन्त शाही-शासन व्यवस्था रही है, जिसके फलस्वरूप तत्तद् युगीन शासन-व्यवस्था का प्रतिबिम्बन स्पष्टतः दिखाई देता है ।

गाथा सप्तशती काल में कठोर दंड व्यवस्था के कारण राज्य में व्यवस्था, सुख और समृद्धि विराजमान रही है । आर्या सप्तशती काल-महाराज लक्ष्मण सेन के काल में- अन्तःसाक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि आभिजात्य-वर्ग भले ही सुखी हो किन्तु राज्य में शासन सुचारु रूप से नहीं चल रहा था, जिस के फलस्वरूप समाज-विरोधी कार्य कुछ बढ़े हुए थे ।

रीतिकाल में केन्द्रीय शासन शिथिल हो जाने से दोहरी शासन व्यवस्था चल रही थी, जिसके कारण राज्यों में अराजकता व्याप्त थी । जन साधारण का पर्याप्त शोषण हो रहा था ।

राजधर सतसई काल में अन्तःसाक्ष्य के अनुसार तत्कालीन ओरछा में सुख सम्पन्नता प्रतिष्ठित थी ।

सतसई साहित्य में सामन्त कालीन व्यवस्था के सामान्य लक्षण- युद्ध, शत्रु की सुन्दर स्त्रियों का अपहरण, बहु विवाह के परिणाम स्वरूप सपत्नियों की 'सौतिया डाह' व नोक-झोंक, कवियों को राजाश्रय- आदि -- प्रतिबिम्बित हुए हैं । रीति-काल में सामन्तवर्ग का ऐश्वर्य एवं भोग-विलास देखा जा सकता है ।

## - सतसई साहित्य में -

## पौराणिक देवी-देवताओं, धार्मिक विश्वास एवं प्रथाओं आदि का प्रतिबिम्ब

प्रत्येक धर्म किसी न किसी दर्शन का प्रतिफलन है । दार्शनिक अथवा धार्मिक सिद्धान्तों के अनुरूप ही किसी समाज का स्वरूप-गठन होता है । अतः, किसी समाज की सामाजिक पृष्ठ-भूमि को समझने के लिए, उस समाज के दार्शनिक-धार्मिक-सिद्धान्त समझना आवश्यक हो जाता है । यतः ये दार्शनिक-धार्मिक-सिद्धांत शुष्क एवं अमूर्त होते हैं, अतः काव्य की परिधि में नहीं आ पाते हैं, क्योंकि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार 'रूप विधानों में ही भावों को इस रूप में जागरित करने की शक्ति होती है, कि वे रस कोटि में आ सकें'[1], अतः इनको काव्य की कोटि में लाने के लिए इनका मूर्त-विधान-रूप विधान- करना अनिवार्य है ।

काव्य में इसी मूर्त-विधान के लिए निराकार ब्रह्म को साकार रूप में प्रस्तुत किया जाता है । इसी के फलस्वरूप विभिन्न देवी-देवताओं की परिकल्पना की गई है और दार्शनिक-धार्मिक सिद्धांतों को बोधगम्य एवं सरल बनाने हेतु ही उनसे सम्बन्धित कथाओं का सृजन हुआ । यही हमारी पौराणिक-कथाओं का आधार है ।

प्राचीन काल से ही पौराणिक कथाएँ लोक रंजन के माध्यम से लोक शिक्षण का आधार रही हैं, यतः साहित्य समाज का दर्पण है, अतः साहित्य में इनका प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ेगा ही । भले ही, महाकाव्यों एवं खण्ड काव्यों में इन पौराणिक देवी-देवताओं की कथाओं का विस्तृत-वर्णन शक्य हो, किन्तु मुक्तक काव्य में तो इनका प्रतिबिम्ब ही संभव एवं स्वाभाविक है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. रस मीमांसा - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृष्ठ 212

प्रत्येक समाज में अपने प्रचलित धार्मिक विश्वास भी होते हैं। इनका भी काव्य में प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है।

अतः सतसई साहित्य की सामाजिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने हेतु हम प्राकृत, संस्कृत और रीतिकालीन हिन्दी सतसइयों में तत्पश्चात् राजधर सतसई में पौराणिक देवी देवताओं एवं धार्मिक विश्वासों का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

## गाथा सप्तशती -

पौराणिक देवी देवता एवं धार्मिक विश्वासों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में पौराणिक विचार धारा का प्रचलन ग्रामों में अधिक था। पौराणिकदेवी देवताओं की कथाओं को प्रतिबिम्ब रूप में गाथा सप्तशती में देखा जा सकता है। जैसे- असुर-मंथन[1], लक्ष्मी[2]-विष्णु, बलि वामन,[3] आदि के उपाख्यान हैं। राम कथा का भी प्रचलन था।[4] राधाकृष्ण[5] एवं गोपी कृष्ण की प्रेम कथायें प्रचलित थीं।[6] सूर्य[7] और पशुपति[8] की पूजा की जाती थी। एक स्थान पर श्मशान साधन करने वाले कापालिक का उल्लेख है।[9] बौद्ध भिक्षुओं के होने का भी संकेत मिलता है।[10]

गाथा सप्तशती कालीन समाज में शकुन अपशकुन तथा भूत-प्रेत आदि में विश्वास किया जाता था। प्रोषित भर्तृकायें नायक के सकुशल वापिस लौट आने की कामना से शकुन के रूप में कौओं को बलि देती थीं अर्थात् भात के लड्डू खिलाती थीं।[11]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। गाथा० - 2/17
।2। गाथा० - 2/51
।3। गाथा० - 5/06
।4। गाथा० - 1/35
।5। गाथा० - 1/89, 5/47
।6। गाथा० - 2/12, 2/14, 2/28
।7। गाथा- 4/32
।8। गाथा- 4/72, 5/83
।9। गाथा- 5/08
।10। गाथा- 4/08
।11। गाथा- 3/05

यात्रा पर प्रस्थान के समय भरे हुए घड़े का आना शुभ-शकुन माना जाता था ।[1] मंगलवार और 'भद्रा'-नक्षत्र' में यात्रा के लिए प्रस्थान नहीं किया जाता था ।[2] यात्रा के समय कृष्णसार मृग का दाहिनी ओर से बायीं ओर आना अपशकुन समझा जाता था ।[3] प्रिय व्यक्ति के आगमन पर मंगल-कलश रखे जाते थे और पाँवड़े बिछाये जाते थे ।[4] मंगल कार्यों में द्वार पर बन्दनवार बाँधे जाते थे ।[5] रजस्वला का दर्शन अमंगलकारी माना जाता था ।[6] पत्र का आरम्भ 'स्वस्ति' लिखकर किया जाता था ।[7] वे लोग भूत-प्रेत तथा ग्रह बाधा में भी विश्वास करते थे ।[8] कहीं-कहीं सती प्रथा का भी प्रचलन था ।[9]

## आर्या सप्तशती -

गाथा सप्तशती से प्रभावित आर्या सप्तशती में भी पौराणिक विचारधारा प्रवहमान है । ग्रन्थारम्भव्रज्या में तत्कालीन समस्त पौराणिक अवतारों एवं देवी देवताओं की शृंगारमय स्तुति की गई है, अतः इसे हम वस्तुनिर्देशात्मक तथा आशीर्वादात्मक मंगलाचरण कह सकते हैं ।

ग्रन्थारम्भव्रज्या एवं अन्यान्य आर्याओं में पौराणिक देवी-देवताओं से सम्बन्धित अन्तर्कथाओं का सन्निवेश है। जैसे-

---

(1) गाथा०- 2/43
(2) गाथा०- 3/61
(3) गाथा०- 1/25
(4) गाथा०- 2/40
(5) गाथा०- 3/62
(6) गाथा०- 5/80
(7) गाथा०- 3/44
(8) गाथा०- 4/86
(9) गाथा०- 5/47

'शिवजी का कामदेव को भस्म करना,[1] विषपान करना,[2] गंगा धारण करना,[3] पार्वती,[4] गणेश,[5] व कार्तिकेय[6] का वर्णन आदि ।

समुद्र मंथन से सम्बन्धित कथा पुराणों में अत्यन्त प्रसिद्ध है, उसका भी अनेक आर्याओं में संकेत मिलता है ।[7] मन्दराचल पर्वत को मथानी बना कर एवं शेषनाग को रज्जु बनाकर देवों व दानवों ने मिलकर अमृत की प्राप्ति की थी ।[8] दानवों को अमृत प्राप्ति न हो सके, अतः विष्णु ने मोहनी रूप धारण करके उन्हें छला था ।[9] लक्ष्मी विष्णु की स्तुति[10] के अतिरिक्त भृगु के द्वारा विष्णु के वक्ष पर पद प्रहार की कथा का भी संकेत मिलता है ।[11] रामचंद्र जी से सम्बन्धित कथाओं में राम की वानर सेना द्वारा लंका विजय के लिए सेतु निर्माण करना[12] कृष्ण से संबंधित कथाओं में रुक्मणी के लिए कृष्ण द्वारा पारिजात वृक्ष लाना[13] अरिष्टासुर वध[14] बाणासुर वध[15] (कृष्ण वेदपुराण पर आधृत), एवं 'रास'[16] का भी संकेत मिलता है । काव्य की देवी सरस्वती जी की भी वंदना की गयी है ।[17] कच्छप भगवान्, (कच्छप अवतार)[18], वामनावतार वामन[19] एवं वराह अवतार[20] की कथा का भी संकेत है । इसके अतिरिक्त उस समय पीपल पूजने का भी उल्लेख मिलता है ।[21]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) आर्या० 1, 3, 4
(2) आर्या० 2, 5, 196
(3) आर्या० 204
(4) आर्या० 20
(5) आर्या० 20, 27, 28
(6) आर्या० 20
(7) आर्या० 17, 60, 12
(8) आर्या० 129
(9) आर्या० 22, 23, 25
(10) आर्या० 10, 11, 13
(11) आर्या० 14
(12) आर्या० 195, 631
(13) आर्या० 104
(14) आर्या० 174
(15) आर्या० 396, 407
(16) आर्या० 510
(17) आर्या० 31
(18) आर्या० 113
(19) आर्या० 60
(20) आर्या० 16
(21) आर्या० 641

उस समय एक 'ललिता देवी' जो कि दुर्गा की ही एक रूप थी, की पूजा का प्रचलन भी था ।[1] 'बौद्धों' में तारा देवी का अतिमहत्व है । बौद्ध तंत्र सिद्धि में "ॐ मणिपद्मे हूँ" मंत्र अत्यन्त उपयोगी है । बौद्ध तंत्र की मूल भित्ति यही मंत्र है"।[2] आर्या सप्तशती में इन्हीं 'तारा देवी' की पूजा का भी संकेत मिलता है ।[3]

आर्या सप्तशती में भी तत्कालीन कतिपय धार्मिक क्रियाओं का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है । जैसे- वाम भुजा का फड़कना स्त्री के लिए शुभ फल दायी होती है ।[4] 'शकुन के रूप में कौओं को दही भात खिलाना भी उस समय प्रचलित था । इसी लिए प्रवास से लौटा नायक अपने घर पर कौओं को (दही भात खाने के कारण) देखकर अनुराग आचरणशीला (नायिका को) समझता है ।[5] उस समय स्वप्न में रोदन भी शुभ माना जाता था ।[6]

आर्या सप्तशती कालीन समाज में भाग्यवाद,[7] मंत्र एवं भूत-प्रेतों में विश्वास किया जाता था ।[8] इसी कारण एक व्यक्ति कहता है कि लक्ष्मी मात्र भाग्य से प्राप्त होती है, उद्यम से नहीं ।[9] काक की बोली से शकुन अपशकुन पर विचार किया जाता था ।[10] कुछ ग्रहों- जैसे-- शनीचर के लिए पूजादि की जाती थी ।[11] स्त्रियाँ पुरुषों को तंत्र-मंत्र से भी वशीकरण द्वारा प्राप्त करती थीं । जादू टोने का प्रचलन था ।[12]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) आर्या0- 494
(2) कादम्बिनी नवम्बर 84, ले0 आचार्य योगीश कुमार- पृष्ठ- 48
(3) आर्या- 21
(4) आर्या- 347
(5) आर्या- 531
(6) आर्या- 501
(7) आर्या- 272
(8) आर्या- 395
(9) आर्या- 219
(10) " - 504
(11) " - 447
(12) " - 421

नवरात्र में अष्टमी को बेल की टहनी लाकर उसे पूज कर रात्रि-पर्यन्त जागरण आदि करके, नवमी को विसर्जित कर देते थे ।[1] माघ स्नान करने की प्रथा थी, जो सूर्योदय से पूर्व ही समाप्त हो जाता था ।[2] लोगों का विश्वास था कि जिस स्थान पर गड़ा धन होता है, वहीं खंजन पक्षी मैथुन करते हैं ।[3] अशोक वृक्ष की कलिका का रसपान करने से शोक नष्ट होता है, ऐसा माना जाता है ।[4] ऐसा भी विश्वास किया जाता था कि तप्त तैल में डाली गई सुवर्णादि की गुटिका को सदोष व्यक्ति हाथ से नहीं छू सकता है, अतः अपराधी की परीक्षा हेतु ऐसा किया जाता है ।[5] कूपराज पर दानवों का निवास होता है ।[6] काकों के स्नान करने पर वृष्टि नहीं होती है ।[7] आदि विश्वास प्रचलित थे ।[8] दीपोत्सव के समय गायों को अलंकृत करके गान गाया जाता था ।[8] भीख माँगना बुरा समझा जाता था ।[9] प्रोषित भर्तृकाएँ वेश संस्कार नहीं करती थीं[10] बहु विवाह प्रचलित थे, किन्तु स्त्रियों की दृष्टि से दूसरा विवाह हेय समझा जाता था[11] मृतक की कपाल क्रिया का भी संकेत मिलता है ।[12] गोत्रादि की मान्यता थी[13] एवं उच्च कुलों में पर्दा प्रथा भी थी ।[14]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

|1| आर्या- 340
|2| ,, 29
|3| ,, 07
|4| ,, 256
|5| ,, 414
|6| ,, 674
|7| ,, 307
|8| ,, 141
|9| ,, 146
|10| ,, 39
|11| ,, 03
|12| ,, 274
|13| ,, 191, 199
|14| ,, 164

## रीतिकालीन सतसइयाँ -

रीतिकालीन सतसइयों के प्रणेता केवल कवि ही थे, इसलिए जब जैसाभाव उद्भूत हुआ उसे व्यक्त कर दिया करते थे । वे तो सामान्य व्यक्ति की तरह मतमतान्तर के झगड़े में न पड़कर सभी देवी देवताओं और अवतारों को मान्यता देते थे और उन्हें भगवान का स्वरूप समझते थे-[1]

अपने अपने मत लगे, बादि मचावत सोर ।
ज्यौं-ज्यौं सबको सेइबो, एकै नंद किसोर ।।[2]

वे राम और कृष्ण में भेद नहीं समझते थे --

मन मोहन मन मैं बसौ, हुलसित हिय आईं ।
कमल नैन नैनति बसौ, मुरलीधर मुख मांहि ।।[3]

सतसइयों में राम,[4] शिव,[5] गणेश,[6] और कृष्ण[7] की शक्ति राधा की स्तुतियां की गयीं हैं । पौराणिक अन्तर्कथाओं में वामनावतार की कथा का संकेत मिलता है ।[8] उन्होंने भगवान राम कथा से पर्याप्त आधार ग्रहण किया । राम-रावण युद्ध,[9] मेघनाद वध[10] गीध का तारना[11] आदि । कृष्ण कथा पर आधृत- गोवर्धन धारण करना,[12] चीर हरण,[13] रास लीला[14] इत्यादि । इसके अतिरिक्त कुम्भनिकुंभ की कथा का भी संकेत प्राप्त हो जाता है ।[15]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रीतिकालीन शृंगा० सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन, डा०पुष्पलता-149
(2) बिहारी रत्नाकर- दो०- 58।
(3) विक्रम सतसई- " 5
(4) " " 315, 316, 317, 318, 319, 320
(5) मतिराम सतसई- " 425, 426
(6) रामसतसई- " 1, मतिराम सतसई- 392
(7) बिहारी रत्नाकर " 1
(8) " 159, मतिराम सतसई - 664
(9) विक्रम सतसई, " 316, 320
(10) " 321
(11) बिहारी रत्नाकर " 31
(12) " " " 541
(13) " " " 224
(14) " " " 291, मतिराम सतसई 45
(15) मतिराम सतसई " 540

रीतिकालीन समाज में लोगों का पुराण श्रवण में विश्वास था ।[1] स्त्री के लिए वाम अंग का स्फुरण शुभ फलदायक माना जाता था ।[2] लोगों का ज्योतिष में विश्वास था ।[3] टोना टोटके प्रचलित थे ।[4] स्त्रियाँ टोने से वशीकरण करती थीं ।[5] खोटे ग्रहों की शान्ति के लिए उपाय किए जाते थे ।[6] पर्दा प्रथा का प्रचलन था ।[7] पितृ पक्ष में वायस बलि दी जाती थी ।[8] एक दोहे में मलंग फकीर का उल्लेख है ।[9] होली[10], तीज[11], और बधाइन[12] उत्सवों का प्रचलन था ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। बिहारी रत्नाकर- दोहा सं0- 264 मतिराम सत0 - दो0-7

।2। - वही - 572

।3। - वही - 5, 42, 73, 575

।4। - वही - 47

।5। - वही - 348

।6। - वही - 381

।7। - वही - 12

।8। - वही - 435

।9। - वही - 230

।10।- वही - 424

।11।- वही - 315

।12।-मतिराम सतसई - 152

## राजधर सतसई -

जैसी कि पौराणिक मान्यता है, कि गणेश बुद्धि के दाता एवं विघ्न विनाशक हैं, अतः प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में उनकी वंदना की जाती है, राजधर सतसई का भी गणेश वंदना (मंगलाचरण) से ही श्रीगणेश किया गया है।[1] तत्पश्चात् काव्य कला की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की स्तुति की गई है।[2]

शिवजी से सम्बन्धित उपाख्यान भी यत्र तत्र दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे- पार्वती जी का भाग्य वृद्धि को प्राप्त हो रहा है, क्यों कि उनके ससुर ब्रह्मा जी के चार मुख हैं, पति शिवजी (पंचानन) के पाँच मुख हुए तथा उनके पुत्र स्वामी कार्तिकेय (षडानन) के छः मुख हैं।[3] शिवजी का कण्ठ में विष धारण करना[4]। शिवजी के द्वारा कामदेव दहन[5] आदि।

कतिपय दोहे राम एवं कृष्ण के कथानक से सम्बन्धित हैं। लक्ष्मण के अचेत होने पर भी विभीषण की चिन्ता करना[6] शबरी और गीध का उद्धार करना[7] आदि राम कथानक से सम्बन्धित है। श्री कृष्ण की लीलाओं का गायन, उद्धव गोपी सम्वाद, राधा भक्ति इत्यादि का सम्बन्ध कृष्ण कथानक से है।[8] इसके अतिरिक्त बलि-वामन[9] समुद्र मंथन[10] आदि पौराणिक उपाख्यानों के प्रतिबिम्ब भी राजधर सतसई में देखे जा सकते हैं।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा सं0- 1 (8)
(2) - वही - 2
(3) - वही - 219
(4) - वही - 358
(5) - वही - 220
(6) - वही 464, 465
(7) - वही 32
(8) -विस्तृत विवरण प्रस्तुत शोध प्रबंध के शीर्षक-"कृष्ण भक्ति" में देखिए-
(9) -राजधर सतसई दोहा सं0-213
(10) - वही -308

धार्मिक विश्वास -

स्त्रियों के वाम अंगों का स्फुरण शुभ माना जाता है । राजधर सतसई की नायिका का बांया नैन पुनः पुनः वेग से स्फुरित हो रहा है, अतः उसे प्रिय का आगमन अवश्य संभाव्य लग रहा है ।[1] उस समय 'नजर' लगने में भी विश्वास किया जाता था । एक नायिका की नायक से दृष्टि मिलते ही वह 'दृष्टि' लगी (नजर लगी) सी रह गयी ।[2] इसके अतिरिक्त सावन तीज[3] एवं होली[4] त्योहारों का वर्णन भी राजधर सतसई में आया ।

निष्कर्ष -

सतसई साहित्य- गाथा सप्तशती, आर्या सप्तशती एवं रीतिकालीन सतसइयों- में पौराणिक विचार धारा सतत् प्रवहमान रही है, जिसके परिणाम स्वरूप इस साहित्य में पौराणिक देवी-देवताओं संबंधी कथाओं को प्रतिबिम्बित देखा जा सकता है । इसके साथ ही तत्सद् युगीन धार्मिक विश्वासों, प्रथाओं का भी प्रतिबिम्बन हुआ है । काल के सुदीर्घ अन्तराल होने के पश्चात् भी सतसई साहित्य में प्रतिबिम्बित इन पौराणिक देवी-देवताओं की कथाओं तथा आस्था-विश्वासों, प्रथाओं में पर्याप्त साम्य रहा है ।

राजधर सतसई भी सतसई साहित्य की इस परम्परा के अनुरूप है ।

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 444

(2) - वही - 205

(3) - वही - 355

(4) - वही - 254, 255, 256

## अध्याय - 3

# रामधर सतसई का वर्ण्य विषय

## राजधर सतसई का वर्ण्य विषय

राजधर सतसई श्रृंगार रस प्रधान कृति है, जिसका राजधर ने ग्रंथारम्भ में ही संकेत दे दिया है ।[1] श्रृंगार रस के अन्तर्गत परस्पर अनुरक्त[2] नायक-नायिका की रति का वर्णन होता है । अतः सर्व प्रथम, हम राजधर सतसई में किस प्रकार के नायक नायिका के प्रेम (स्थायी भाव रति) का निरूपण किया है अथवा किस प्रकार के नायक नायिका के प्रेम का आदर्श स्थापन किया गया है, इसका विवेचन करेंगे । वस्तुतः, श्रृंगार रस की प्रमुख आलम्बन है— नायिका, अतएव श्रृंगार वर्णन में नायिका के सौन्दर्य-निरूपण का अत्यधिक महत्व है । सौन्दर्य निरूपण के अन्तर्गत सतसईकारों ने नायिका के रूप वर्णन के अन्तर्गत नख-शिख एवं नायिकाओं के "यौवनालंकार" वर्णन को प्रमुखता दी है, अतः तत्पश्चात् राजधर सतसई में इन्हीं पर विचार करेंगे ।

तत्पश्चात् काव्य शास्त्रीय दृष्टि से श्रृंगार के भेद सं[illegible]-योग एवं विप्रलम्भ- का विवेचन करेंगे । इसके अतिरिक्त राजधर सतसई में गौण रूप से श्रृंगारेतर विषयों, अन्य रस, भक्ति, नीति कथन इत्यादि को स्थान प्राप्त है, इनका भी विवेचन प्रस्तुत करेंगे ।

अतः सुविधानुसार प्रस्तुत अध्याय को निम्नलिखित शीर्षकों में विभक्त करके विवेचन प्रस्तुत करेंगे —

<u>राजधर सतसई में-</u>

(अ) प्रेम का आदर्श, (ब) सौन्दर्य निरूपण, (स) श्रृंगार निरूपण
(द) अन्य रसों का स्थान (य) श्रृंगारेतर विषय-भक्ति नीति कथन आदि ।

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 13
(2) दश रूपक- 4/48

## रत्नाकर सतसई में प्रेम का आदर्श

व्युत्पत्तिः— 'प्रेमन्' भाववाचक संज्ञा शब्द है । यह शब्द संस्कृत में नपुंसक लिंग तथा हिन्दी में दोनों लिंगों में प्रयुक्त होता है । प्रसिद्ध वाचस्पत्य कोष में इसकी व्युत्पत्ति 'प्रिय' शब्द से की गई है : यथा, "प्रियस्य भावः इमनिच् प्रत्यय प्रादेशः ।"[1] प्रियस्य भावः= प्रेमा (पुल्लिंग) । प्रिय 'प्र' प्रकृति तथा भावार्थक 'इमन्' प्रत्यय से 'प्रेमा' शब्द निष्पन्न हुआ । इसलिए 'प्रेमन्' का अर्थ हुआ 'प्रियता', प्रिय का भाव या प्रिय होना ।

'प्रेमन' शब्द की व्युत्पत्ति 'प्री' (अर्थात् प्रसन्न करना, आनन्द लेना या आनन्दित होना) धातु से मनिन् (मन्) प्रत्यय जोड़ कर भी हो सकती है । इस शब्द का लिंग नपुंसक होगा ।

'प्रेम' शब्द की एक और व्युत्पत्ति व्याकरणानुसार हो सकती है । 'प्रीञ् प्रीतौ' धातु से उणादि सूत्र "सर्व धातुभ्यः" से मनिन् प्रत्यय करके 'प्रेम' शब्द निष्पन्न हुआ है ।

इस प्रकार व्युत्पत्तिलभ्य 'प्रेम' शब्द का अर्थ हुआ— जो प्रीति देता हो, अर्थात् अनन्त तृप्ति प्रदान करता हो ।

### प्रेम का स्वरूप -

प्रेम क्या है ? यह प्रश्न प्राचीन तथा शाश्वत होते हुए भी अनुत्तरित है । कोई इसे अलौकिक कहता है, तो कोई लौकिक । किसी ने इसकी विशेषताओं का उद्घाटन किया है, तो कुछ ने इसके दोषों की ओर संकेत किया है । यहाँ तक कि नारद जैसे प्रेम (भक्ति) के उत्कृष्ट व्याख्याकार को प्रेम के स्वरूप को अनिर्वचनीय कहना पड़ा-

'अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपं मूकास्वादनवत्'[2]

---

(1) वाचस्पत्य कोष, पृष्ठ- 4540 ।

(2) नारद भक्ति सूत्र- 51

वस्तुतः, प्रेम जैसी भावात्मक अनुभूति की सुनिश्चित अभिव्यक्ति असंभव है । बिहारी जैसे विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न शृंगारी कवि ने भी प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का दिग्दर्शन कराया, किन्तु प्रेम के स्वरूप के विषय में इतना ही कहा है -

'या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय' [1] जिस प्रकार ब्रह्म के लिए तत्व दर्शियों ने 'नेति-नेति' कहकर उसके परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के विषय में असमर्थता व्यक्त की है, उसी प्रकार रत्नाकर ने भी कहा है, "मैंने बहुत प्रकार से 'अवगाहन' करके, यह 'निर्धारण' किया है कि 'प्रेम-पयोधि' की 'इति' नहीं, उसे 'पैर' (तैर) कर पार करना असाध्य है ।[2] अतः अब यह अनुसंधान करना है कि रत्नाकर 'प्रेम पयोधि' में कितनी गहराई तक 'अवगाहन' कर सके तथा कितनी दूरी पार कर सके ।

## प्रेम के प्रमुख भेद -

प्रेम को विद्वानों ने अनेक श्रेणियों में विभाजित किया है, जिनमें से दो मुख्य रूप हैं- (1) लौकिक (2) पारलौकिक या आध्यात्मिक । लौकिक प्रेम के भी आकर्षण के आधार पर दो भेद किए जा सकते हैं- (1) दैहिक या शारीरिक (2) आत्मिक । दैहिक आकर्षण में ही प्रणय अथवा दाम्पत्य प्रेम निहित है, जिसमें काम की उपस्थिति अनिवार्य है ।[3] रत्नाकर द्वारा वर्णित प्रेम प्रमुख रूप से 'दैहिक प्रेम' की कोटि में आता है ।

## रीतिकालीन-प्रेम व्यंजना और रत्नाकर -

'रीतिकालीन कवियों का प्रेम वीरगाथा काल का शौर्य मूलक प्रेम नहीं है । अन्य कवियों के उस प्रेम से भी वह भिन्न है, जिसमें लौकिक प्रेम प्रतीकों के सहारे अलौकिक तथा अतीन्द्रिय प्रेम की व्यंजना की गई है । रोमांटिक कवियों के वायवी प्रेमिकों की सीमाओं से

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) बिहारी रत्नाकर दोहा संख्या- 6

(2) बहुत भाँति अवगाह मैं, कीनौ यह निरधार ।
पैरत प्रेम पयोधि के, पायौ थाहु न पार ।। रा०श०स०-3।।

(3) बिहारी-दर्शन, डा० भगीरथ मिश्र पृष्ठ- 30

इसका किंचित मात्र स्पर्श भी नहीं है । रीतिकालीन कवि भौतिक प्रेम व्यापारों से उतारकर केवल मानसिक दुनिया की बस्ती नहीं बसाते थे । इनका प्रेम धरती के स्त्री पुरुष का प्रेम है, जिसका आधार है - रूप और यौवन ।[1]

डा० नगेन्द्र के अनुसार -" रीतिकाल में शृंगार फिर शारीरिक धरातल पर उतर आया । ----- रीतिकाल के कवि रसिक ही थे प्रेमी नहीं । - - इस प्रकार रीतिकालीन शृंगार भावना में स्पष्ट रूप से शारीरिक रति - काम की स्वीकृति है । उसमें किसी प्रकार की अतीन्द्रियता या आध्यात्मिकता के लिये स्थान नहीं है, एकोन्मुख एवं एकाग्र न होने से उसमें उत्कटता एवं तीव्रता भी नहीं है और मूलतः गृहस्थ जीवन की परिधि में बँधा होने से रोमानी साहसिकता और शक्ति का अभाव है । वह तो शरीर सुख और उससे उत्पन्न मन का सुख है, नागरिक जीवन की रसिकता उसका प्राण है, विलास की श्री और समृद्धि उसका अलंकार है ।

राजधर सतसई में वर्णित प्रेम भी रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना के अनुरूप ही है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना - डा० बच्चन सिंह, पृष्ठ - 130

(2) रीति काव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र
पृष्ठ 89 - 90

## प्रेम का आदर्श -

आदर्श का सम्बन्ध धर्म-निष्ठा से है । सामाजिक, पारिवारिक एवं वैवाहिक कर्तव्य तथा मर्यादाएँ धर्म के ही अन्तर्गत आती हैं । इसी आधार पर - (1) स्वकीया (2) परकीया (3) सामान्या नायिकाओं का वर्गीकरण किया गया है । स्वकीया भी स्वधर्म पालन से 'पतिव्रता' एवं धर्माचरण विरुद्ध मार्ग पर चलने से 'कुलटा' की संज्ञा से अभिहित होती है । उपर्युक्त आधार पर ही नायकों के 4 भेद हैं -

(1) अनुकूल (2) दक्षिण (3) शठ (4) धृष्ट ।

'अनुकूल' नायक एक पत्नीव्रत का पालन करता है । वह अन्यत्र आसक्त नहीं होता है ।[1]

राजधर सतसई में, वैसे तो विविध प्रकार की नायिकाओं के प्रेम[2] को वर्ण्य विषय बनाया गया है, किन्तु अधिकांश दोहों में पत्नीव्रत धर्म एवं पतिव्रत धर्म का पूर्ण निष्ठा के साथ स्थापन किया गया है । इसके प्रतिपादन में राजधर ने 'चकोर' के चन्द्र के प्रति प्रेम का आदर्श स्थापित किया है[3]। चकोर का प्रेम स्वाकांक्षजन्य एक निष्ठ-प्रेम का प्रतीक है ।

## पत्नीव्रत धर्म का आदर्श -

राजधर सतसई में नायक कहीं भी लाम्पट्योन्मुख नहीं है । वह एक पत्नी-निष्ठ आदर्श पति है । उस पति का चित्त (अपनी) पत्नी के मुख-चन्द्र के लिए 'चकोर' की भाँति एक निष्ठ है[4]।[5] 'मायके' जाते

---

(1) विस्तृत विवरण के लिए देखिए- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्याय-4

(2) - वही -

(3) चाहै चढ़े चितवत रहत, चख चकोर की रीति । रा०स०दो०सं०-82
. . . . . . . . , पिय चकोर चित हेत ।। रा०स०दो०सं०-15

(4) अंबर माँझ उजागरे, मुख ससि सोभा देत ।
भ्रम दृग संजुत चख करन, पिय चकोर चित हेत ।। रा०स०दो०सं०-15

समय उसकी पत्नी उस पर पूर्ण विश्वास करती है । उसका विश्वास है कि उसके पति को ।उसकी अनुपस्थिति में भी। अन्य नारी अच्छी नहीं लग सकती है ।[1] यहाँ 'अनुकूल' नायक के प्रेम की स्थापना राजधर ने की है ।

पतिव्रत धर्म का आदर्श -

पतिव्रत धर्म भारतीय संस्कृति में पत्नी के उत्कृष्ट प्रेम का आदर्श है । राजधर सतसई की यह नायिका पतिव्रता ही है, जिसने अपने पति को अपने प्रेम से पूर्णतः वशीभूत कर रखा है । यह उसका आत्मविश्वास ही व्यक्त हो रहा है, कि वह 'मायके जाते समय कहती है, कि उसके पति को ।उसकी अनुपस्थिति में भी। अन्य नारी नहीं भा सकती है ।[2] कालिदास के समान राजधर 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' में विश्वास करते हैं तभी उसकी नायिका पति के लिए ही समस्त श्रृंगार करती है एवं उसके आगमन पर पलक पाँवड़े बिछाती है ।[3] यह नायिका एक पति निष्ठ ही है जो कहती है, कि 'अतन ताप' तब ही मिट सकता है, जब 'पिय' ही 'धन्वन्तरि' होकर आ जाय ।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। चतुर चलाए को चली, मन में यहै विचारि ।
रस बस कर राख्यो पिया और न भावै नारि ।। रा०स०दो०सं०-316

।2। - वही दोहा -

।3। सरस सुगंधित सेज सजि , भूषन सकल सिंगारि ।
पिय आगम अवलोक ही, डीठि पाँवड़े डारि ।। रा०स०दो०सं०-345

।4। तनु अति पीड़ित होतु है, लगि सुगंध की सोइ ।
अतन-ताप तब ही मिटै, पियु धन्वन्तरि होइ ।। रा०स०दो०सं०-25

और अब पति का आता है तो वह कामदेव को चुनौती देती हुई हर्षित होती है कि वह 'सनाह' हो गई है । कामदेव अब उसका क्या बिगाड़ सकता है ?[1]

वह अपने पति से स्वप्न में भी एक क्षण के लिए नहीं बिछुड़ना चाहती है, किन्तु पति को तो परदेश जाना ही पड़ता है । पति के चलने की बात सुनकर ही एक नायिका ने खाना-पीना छोड़ दिया है, उसकी नींद 'पाहुनी' हो गई है ।[2] यदि, जैसे तैसे नींद आ भी जाती है, तो स्वप्न में पुनः 'पिया' के परदेश चलने की बात सुनकर वह 'हिलकी' लेते हुए, प्रातःकाल रोती हुई उठ बैठती है[3]।

पतिव्रता के लिए पति ही परमेश्वर है । जिस प्रकार एक भक्त भगवान का भजन ।गुण-कीर्तन। सुनकर आनंद विभोर हो उठता है, उसी प्रकार पति के गुण स्वप्न में सुनकर, एक पति प्रेम में पगी, नायिका के अंग-प्रत्यंग प्रफुल्लित हो रहे हैं ।[4] इसे उत्कृष्ट दाम्पत्य प्रेम के आदर्श की ही अभिव्यक्ति कह सकते हैं । जिसमें राजपर की एक नायिका कबीर की भाँति । "नैननि की करि कोठरी....." । कहती है, कि उसके पति दिन-रात उसके हृदय में 'वास' करते हैं । उसका ध्यान करती हुई वह 'नैननि' के कपाट बंद कर लेती है ताकि उसके पति ।परमेश्वर। कहीं से बाहर न जा सकें ।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। सौतिन सर कैसे लगत, घालैं आठौं जाम ।
अब तो भई, सनाह मैं, कहा करैगो काम ।। रा०स०दो०सं०-40

।2। चली चिना छूटे सबै, भोजन अरुयय पान ।
नींद भई है पाहुनी, पिय पयान सुनि कान ।। रा०स०दो०-403

।3। सपने में पिय चलनु की, सुनु सखियन मुख बात ।
सिय-हिय की हिलकीं अर्पी, रोकै रुकनि न प्रात ।। " 406

।4। पति के गुन सुन सुपनि में, फूलत है सब गात ।
भगति हरि के भजन की, ज्यौं साधुन मन बात ।। " 549

।5। पिय हिय में बसि रैन दिनु अब पैठे जिह बाट ।
नैननि आर जानिकै, दीने पलक कपाट ।। " 423

नायक नायिका का प्रेम दोनों ओर से दिन-दिन वृद्धि को प्राप्त हो रहा है।[1] प्रेम की चरम परिणति अद्वैत में होती है ॥भवभूति- अद्वैतं सुखदुःखयोः॥ वैदिक विवाह के समय का प्रतिज्ञा वाक्य का मन्त्र 'समचित्तौं मधु चित्तमस्तु' इसी आदर्श की स्थापना के लिए देखिए राजधर ने कितनी मार्मिक अभिव्यक्ति की है, कि जब एक नायक नायिका से कहता है, कि हमारे तुम्हारे शरीर 'विधि' ने कहने के लिए ही अलग-अलग रचे हैं। अर्थात् हैं नहीं। तभी तो तेरा हृदय मेरे हृदय की बात कह देता है"। प्रेम की इस उच्च अवस्था में नायक-नायिका के हृदयों में पूर्ण तादात्म्य स्थापित हो चुका है।[2]

निष्कर्षतः, राजधर को, पति-पत्नी में आकर्षणजन्य प्रेम के आविर्भाव से लेकर दाम्पत्य-जीवन में प्रेम के उच्च-आदर्श स्थापन में पर्याप्त साफल्य प्राप्त हुआ है।

:-:-:-:-:-:-:-:-:-:-:

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

॥1॥ दिन दिन बाढ़तु जाति है, दुहु दिस प्रेम पयोधि। रा०स०दो०-300

॥2॥ कहिबे को विधि ने रचे, न्यारे न्यारे गात।
तेरो मन कहि देत है, मेरे मन की बात॥ रा०स०दो०- 33

::::::::::::::::::::::::::::::::::

## :: राजधर सतसई में सौन्दर्य निरूपण ::

::::::::::::::::::::::::::::::::::

राजधर सतसई शृंगारिक कृति है । शृंगार रस के आलम्बन विभाव परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका है ।[1] फिर भी शृंगार वर्णन में नायिका ही प्रधान रूप से आलम्बन ठहरती है । अतः, नायिका के सौन्दर्य-निरूपण का अत्यधिक महत्व है ।

रीतिकालीन सतसईकारों ने नायिका के अंग-प्रत्यंगों का अनेक दोहों में वर्णन किया है, जो क्रमबद्ध तो नहीं है फिर भी नख-शिख वर्णन के अन्तर्गत ही माना जा सकता है ।

शारीरिक सौन्दर्य उत्कर्ष हेतु अलंकारों का उपयोग सदा से होता रहा है । नायिका की यौवनावस्था में शारीरिक ही नहीं अपितु मानसिक स्थितियों में भी परिवर्तन होता है । ये शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन नायिकाओं को अत्यधिक मोहक और आकर्षक बना देते हैं । मुख्यतः ये परिवर्तन कामज होते हैं । संस्कृत के आचार्यों ने इन्हें नायिकाओं के यौवनालंकार की संज्ञा दी है ।[2] रीतिकालीन शृंगारिक सतसईकारों ने इन यौवनालंकारों को नायिका के सौन्दर्य-निरूपण हेतु यत्र-तत्र प्रयुक्त किया है ।

अतः हम राजधर सतसई में सौन्दर्य-निरूपण का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे -

(1) नख-शिख वर्णन (2) नायिकाओं के यौवनालंकार

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) दशरूपक- 4/48

(2) साहित्य दर्पण- 3/89-92

:- नख शिख वर्णन -:

भारतीय साहित्य में नायिका के नखशिख वर्णन की परम्परा के मूलांकुर वाल्मीकीय रामायण[1] और महाभारत[2] में मिल जाती है। किन्तु इसका पूर्ण विकास हमें कालिदास के "कुमार संभव" में मिलता है।[3] इसमें कवि ने पार्वती के अंग प्रत्यंगों का अलग-अलग विस्तृत वर्णन किया है।

कालिदास के अनन्तर इसका विकास संस्कृत के कवियों और नाटककारों में ही नहीं, दण्डी और बाण जैसे गद्य लेखकों में भी किया है। प्राकृत की नाटिकाओं (यथा कर्पूर मंजरी)[4] तथा अपभ्रंश के चरित काव्यों में भी नखशिख वर्णन की परम्परा का भी निर्वाह हुआ है। आगे चलकर हिन्दी के प्रबन्ध और मुक्तक [redacted] गीति काव्य में भी नखशिख वर्णन को यथोचित विस्तार मिला है। पद्मावत कार (जायसी) ने पूरे सर्ग में पद्मनी के नखशिख का वर्णन किया है तो दूसरी ओर विद्यापति और सूरदास ने राधा कृष्ण के नख-शिख सम्बन्धी अनेक पद लिखे हैं। हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में हम नखशिख वर्णन की परम्परा में एक नया मोड़ पाते हैं। पहले प्रबन्ध काव्यों के बीच-बीच में ही प्रसंगानुसार नख-शिख वर्णन किया जाता था, किन्तु इस युग में इसी विषय को लेकर स्वतंत्र ग्रन्थों की रचना होने लगी। बलभद्र मिश्र[6], कुमति[7], सूरति मिश्र[8] आदि कवियों ने नख शिख पर स्वतंत्र [redacted] ग्रन्थ लिखे हैं।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) वाल्मीकीय रामायण- बालकाण्ड- अध्याय- 32
(2) महाभारत - वन पर्व- 47/7-11
(3) कुमार संभव- प्रथम सर्ग- (पार्वती के यौवनागमन का वर्णन)
(4) कर्पूर मंजरी- 23/1
(5) पद्मावत नखशिख खण्ड।
(6) हि०सा० का इति०-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- 205
(7) - वही - 250
(8) - वही - 270

बिहारी आदि श्रृंगारिक सतसईकारों की भाँति राजधर भी अपने युग की इस प्रवृत्ति से पूरी तरह प्रभावित हैं । यद्यपि उन्होंने "नखशिख" वर्णन शीर्षक का प्रयोग नहीं किया तथा नायिका के अंगों का वर्णन भी क्रमशः नहीं किया, किन्तु उनके काव्य में नखशिख के सभी अवयव प्राप्त हो जाते हैं ।

**पदतल -**

पदतल की कोमलता एवं लालिमा के लिए कमल का उपमान प्रायः गृहीत होता है । राजधर ने भी परम्परा का पालन मात्र किया है -

नित दिन ध्यावहु रहहु मैं, श्री राधे पद पद्म ।
अति कोमल तल चिक्कन पै, सुख शोभा के सद्म ।।[1]

राधा जी के पदों का वर्णन करने में भक्ति भाव ही व्यंजित है ।

**जंघाएँ-**

जंघाओं के लिए "रंभा" और "खंभा" का उपमान प्रयुक्त होते हैं । राजधर की नायिका की जंघाएँ केहरि से युक्त स्फटिक के खंभा प्रतीत होती हैं-

प्यारी के युग जानु पै, बरनहु चाई प्रसंग ।
खंभ युगल जनु फटिक के, केहरि और तुरंग ।।[2]

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं ।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। राजधर सतसई दोहा संख्या- 496
।2। - वही - 500
।3। - वही - 359, 506

नाभि -

गहरी नाभि सौन्दर्य-युक्त होती है अतः इसके लिए रामसहाय ने "कूप" उपमान का प्रयोग किया है -

कुच गिरिवर की शिखर चढ़ि, उतर न चित्त सकाइ ।
नाभि कूप पाको भयो, कूदो न जाइ ॥[1]

कटि -

कटि के सौन्दर्य निरूपण के लिए रामसहाय ने विसर्ग (:) की रेख को उपमान बनाया है । कुच और नितम्ब विसर्ग के दो बिन्दुओं के सदृश हैं जिनके बीच में वस्तुतः कोई रेखा नहीं होती है । रिक्त स्थान रहता है —

कुच नितम्ब बिच कटि लसत, अति सूक्षम छवि देख ।
सुंदर सरस सुघर अति ज्यों विसर्ग की रेख ॥[2]

कहीं नायिका की कटि इतनी सूक्ष्म है कि दृष्टि ठहरती ही नहीं है ।[3] कहीं इतनी सूक्ष्म है की कमर ही न टूट जाये इसलिए विधि ने जंघाओं के रूप में दो थंभ दे दिए हैं ।[4] रामसहाय ने कटि वर्णन में ऊहात्मकता का प्रयोग किया है ।

त्रिवली -

त्रिवली पर भी एक सरसरी दृष्टि रामसहाय की पड़ गई -
रोमावलि आला भई कीनी यह उनमानि ।
कुच गिरिवर मनु कटि नदी करि त्रिवली सोपानि ॥[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 380
(2) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 243
(3) - वही - 382
(4) - वही - 306
(5) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 381

स्तन -

स्तन वेमुख्यतः दो रूपों में चित्रित किया जाता है - (1) कामोत्तेजक के रूप में (2) रति के अनुभावों की अभिव्यक्ति करने वाले अवयवों के रूप में।

पहले के सम्बन्ध में नायक पक्ष से विचार किया जाता है तो दूसरे के सम्बन्ध में नायिका पक्ष से। यहाँ प्रथम पक्ष का वर्णन ही अभिप्रेत है। क्योंकि यह शारीरिक आकर्षण की परिधि में आता है।

राजबर ने स्तनों के औन्नत्य के लिए परम्परागत "गिरि" सदृश उपमानों का प्रयोग किया है -

(1) निकट विकट कुच गिरिनि के, ......[1]

(2) कुच गिरिवर की शिखर चढ़ि, उतर न सिसत सकात ...[2]

विपरीत रति में कुच इस प्रकार दिखाई देते हैं मानो शिव जी कामदेव को जीतने का संकल्प लेकर तप कर रहे हों —

कुच उलटे विपरीत में राजत वेही भेष।
काम जीति की कामना, जनु तप तपत महेश ।।[3]

चिबुक का गड्ढा -

चिबुक का गड्ढा भी कवियों के लिए सौन्दर्य का केन्द्र रहा है। "नैन" रूपी "भ्रमर" यहीं पर आकर विश्राम करते हैं —

नैन भ्रमर इत उत भ्रमत, आनि बसैं मैन।
विधि सौ विधि सबरी रची, चिबुक गाड़ करि सैन ।।[4]

---

(1) राजबर सतसई दोहा संख्या- 144
(2) राजबर सतसई दोहा संख्या- 300
(3) राजबर सतसई दोहा संख्या- 166
(4) राजबर सतसई दोहा संख्या- 181

दन्त -

नायिका के दाँतों की द्युति अगणित मणियों के सदृश है-

राधा के मुख कमल मधि, दसन द्युति छवि होति ।

कढ़ी एक ही बेर जनु, अगनन मनिगन जोति ॥[1]

इसलिए तो दर्पण में नायिका की छवि नैनों में कौंध जाती है-

हँसत वदन में रदन द्युति, ऐसी परति लखाय ।

जैसे दर्पन माँह छवि, द्रगनि कौंधि सी जाय ॥[2]

अधर -

अधरों की लालिमा और सरसता का वर्णन ही प्रायः कवियों का लक्ष्य रहा है । राधर जी अधरों की ललिमा के समक्ष मूँगा की लाली को हीन ठहराते हैं -

अरुनाई तुव अधर की रंचक लही न बाल ।

याही से वन अजहुँ लौं, तातौं करत प्रवाल ॥[3]

नासिका -

नासिका के सौन्दर्य के लिए "तोते की नाक को उपमान के रूप में प्रयुक्त किया जाता है किन्तु रामधर ने पंचम प्रतीप के द्वारा यह दिखाया है कि राधा जी की नाक को देखकर तोते की नाक को विधि ने रचा है -

श्री राधे के अंग की, लखीं उपमा नाहि ।

विधि सौं विधि लखी रची, नाक देख सुक नाक ॥[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामधर सतसई दोहा संख्या - 000 244
(2) - वही - 000 471
(3) - वही - 545
(4) - वही - 170

नेत्र –

नेत्र वर्णन कवियों का अत्यन्त प्रिय विषय रहा है । राजधर ने नेत्र वर्णन में अत्यधिक रुचि प्रदर्शित की है । उन्होंने नेत्रों के लिए मृग[1] भ्रमर[2] चकोर[3] खंजन[4] कमल[5] तुरंग[6] नायक भट[7] मुसाहिब[8] प्रतिहार[9] सवारी[10] प्रतीकों का प्रयोग किया है ।

राजधर ने नेत्रों को रहस्यमय बतलाया है । उनका कहना है कि इनका भेद कोई नहीं जानता है । जिन पर दृष्टि पड़ जाती है वही इनके भेद को जान सकता है —

को है जानत भेद, लाल तिहारे दृगनि के ।
तिनहीं के मन भेद, छुवै जिनको चितवत सदा ।।[11]

नायिका के कटाक्ष विचित्र बरछी के समान है जिसके प्रहार से घाव दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु तीव्र वेदना भोगनी पड़ती है यहाँ नेत्रों के परम्परागत संहारक रूप के वर्णन में विरोधोक्ति एवं विभावना अलंकार स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हुए हैं आहत प्रेमी की कुछ ऐसी ही दशा होती है —

"बरछी सी तरछी चितै, चालति दृग की कोर ।
घाउ कहूँ दीसै नहीं, घाइल करत सरीर ।।[12]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

| | | | |
|---|---|---|---|
| (1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 15 | | (9) राजधर सतसई दो०- 296 | |
| (2) – | वही – 181 | (10) – | वही – 152 |
| (3) – | वही – 344 | (11) – | वही सो०- 16 |
| (4) – | वही – 198 | (12) – | वही दो०- 135 |
| (5) – | वही – 193, 488 | | |
| (6) – | वही – 65 | | |
| (7) – | वही – 443 | | |
| (8) – | वही – 64 | | |

भौंह -

भौंह के लिए भी परम्परित उपमान "धनुष" का प्रयोग किया गया है। एक नायिका "भौंह" धनुष को ताने हुए फिरती है और आते जाते हुए नायक के प्राणों को निशाना बनाती है—

भौंह धनुष ताने फिरत, लिया कटाछनि बान।
देखौं अरि देखत रहति, आयत घालन प्रान ।।[1]

पलक -

राजमार की अधखुली पलकों में विशेष आकर्षण दिखाई देता है। अधखुले नेत्र मादक सौन्दर्य की ओर संकेत करते हैं—

(1) "खुले अधखुले पलक की, फटति सौ खुली जोति"।[2]

(2) खुली अधखुली पलक छवि, पलक न बिसरत मोहि।[3]

मुख छवि -

मुख छवि के लिए राजमार ने परम्परागत उपमान "शशि" एवं जलज का प्रयोग किया है—

लखि, सोभा ससि बदन की, अधर सुधा सी सांधु।
अलग चकोरात सघन तम, परति लटोअनि बांधु ।।[4]

फूलत सर जल जलज दिन, निस निस उघरति बाल।
निस मुख दुति निस नखत मिस, फूलत कुमुद बाल ।।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजमार सतसई दोहा संख्या- 438
(2) - वही - 213
(3) - वही - 649
(4) - वही - 37
(5) - वही - 185

राजबर ने नखशिख वर्णन के अन्तर्गत नायिका के सौन्दर्य का उत्कर्ष दिखाने के लिए प्रायः परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया है। राजबर जी की दृष्टि नायिका की ग्रीवा और अंगुलियों पर नहीं पड़ी और आश्चर्य की बात है कि नखशिख वर्णन में राजबर जी ने "नख" का वर्णन नहीं किया।

**आभूषण –**

"रीति काव्यों में नायिकाओं के अलंकारों को कामोद्दीपक बनाने के लिए मुख्य रूप से तीन विधियाँ अपनाई गयीं हैं –

(1) अलंकारों द्वारा नायिका के अभिवृद्ध सौन्दर्य का वर्णन।

(2) नायिका के वे अलंकार जो रति क्रीड़ा के प्रसंगों में अनुकूल अवसर प्रदान करते हैं।

(3) अलंकारों द्वारा इस प्रकार के मादक वातावरण की सृष्टि करना जो कामभाव को अतिशय उद्दीप्त करने में अत्यन्त समर्थ होते हैं।

राजबर ने नायिका के कतिपय अलंकारों का वर्णन भी किया है यथा--

सीसफूल,[1] जराउ बीज,[2] मोतियों की लर,[3] नथ,[4] हथफूल,[5] छला,[6] आदि नायिका के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हैं। किंकिनी,[7] नूपुर,[8] घुंघरी,[9] दुरकी,[10] आदि शृंगारानुकूल अवसरों पर मादक वातावरण की सृष्टि करते हैं।

---

(1) राजबर सतसई दोहा संख्या - 53, 226
(2) - वही - 227
(3) - वही - 240, 379, 334
(4) - वही - 109
(5) - वही - 225
(6) - वही - 544
(7) - वही - 18, 92
(8) - वही - 45, 397
(9) - वही - 252,
(10) - वही - 93

**वेष भूषा -**

जिस प्रकार काव्य में अलंकार को काव्य शोभाकर धर्म माना गया है, उसी प्रकार वेष भूषा को भी शोभाकर धर्म माना गया है। रामसर सतसई में नायिका की वेष-भूषा के अन्तर्गत उस के वस्त्रों का भी वर्णन किया गया है। यथा— (1) कंचुकी,[1] ओढ़नी,[2] साड़ी,[3] चूनरी,[4] लहरिया,[5] का वर्णन है।

**अंगराग -**

नायिकायें अंगरागों को भी प्रयुक्त करती हैं इनका उद्देश्य शृंगारिक अवसरों पर अनपेक्षित गंध को दूर करना अथवा अनुकूल गंध को उत्पन्न करना। विलासोत्सुक नायिकायें जिस प्रकार वस्त्रालंकार से अपने को आकर्षक बनाती हैं उसी प्रकार से अंगराग से भी। रामसर सतसई की एक नायिका विभिन्न प्रकार के अंगरागों (मिरगी केसरि, अगर, आदि) से मंडित होने के कारण अलग ही (सुगंधि के द्वारा) पहिचान पड़ती है —

औरै परसि लगाई हैं, सब सुगंध की जोति।
मिरगी केसरि, अगर, गर, प्रकट वायु से होति।।[6]

इसी प्रकार सुरत निरत नायिका के भी "चंदन चर्चित" अंग हैं -

भर विभूति मंडित ललत, चंदन चरचे अंग।
भए दिगंबर सुरत हुँय, लपटे अलक भुजंग।।[7]

---

(1) रामसर सतसई दोहा संख्या- 230, 386
(2) - वही - 8 537
(3) - वही - 237
(4) - वही - 396
(5) - वही - 560
(6) - वही - 247
(7) - वही - 451

## :: नायिकाओं के यौवनालंकार ::

शारीरिक सौन्दर्य का उत्कर्ष करने में अलंकारों का सदा उपयोग होता आया है । यौवनावस्था में नायिकाओं के शारीरिक ही नहीं अपितु मानसिक स्थितियों में भी परिवर्तन होता है । ये शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन नायिकाओं को अत्यधिक मोहक और आकर्षक बना देते हैं । मुख्यतः ये परिवर्तन सात्त्विक होते हैं । संस्कृत के आचार्यों ने इन्हें यौवनालंकार की संज्ञा दी है ।

साहित्य दर्पण के अनुसार इनकी संख्या 28 होती है ।[1] धनंजय ने स्त्रियों में केवल 20 अलंकार ही माने हैं ।[2] उन्होंने शेष अलंकारों को नायक गत स्वीकार किया है ।

साहित्य दर्पणकार ने इन अलंकारों को पुनः तीन कोटियों में विभाजित किया है - अंगज, अयत्नज और स्वभावज । शरीर से सम्बन्ध रखने के कारण हाव, भाव और हेला अंगज अलंकार कहे जाते हैं । शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य , प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य ये सात अयत्नज अलंकारों में परिगणित होते हैं । ये यत्नसाध्य नहीं हैं ये स्वभाव से ही स्त्रियों में समाविष्ट होते हैं अतः इन्हें अयत्नज अलंकार कहा जाता है ।

लीला , विलास, विच्छित्ति, विब्बोक , किलकिंचित , विभ्रम, ललित, मद, विहृत, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप, मोट्टायित, कुट्टमित, कुतूहल, हसित, चकित, और केलि ये अठारह अलंकार स्वभावज कहे जाते हैं । ये स्वभाव सिद्ध होते हुए कृति साध्य होते हैं । अर्थात ये अर्जित विशेषतायें हैं जो कालान्तर में स्वभाव का अंग बन जाती हैं ।

---

1- साहित्य दर्पण - 3/38
2- दशरूपक - 2/30

## अंगज अलंकार

हाव - वह भाव ही वस्तुतः "हाव" है जो कि ।नायक-नायिका। के भ्रूकुटि, किंवा नयनों के विचित्र व्यापारों से संभोग-कामना प्रकाशित किया करता है और हृदयगत रति-विकार का किंचिन्मात्र परिलक्ष भी हुआ करता है।[1] राजधर सतसई में "हाव" के निम्नलिखित उदाहरण देखे जासकते हैं -

।1।   बरछी सी तरछौं चितै , घालत दृग की कोर ।
      घाउ कहूँ दीसै नहीं , घाइल मरत मरोर ।।[2]

।2।   आँखि मूँद इत उत चितै, सैननि बदि संकेतु ।
      पिय संग खेलत तिय सखनि, भले निबाहतु हेतु ।।[3]

हेला - हेला का अभिप्राय वस्तुतः वह "भाव" ही है जिसे ।नायक-नायिका के हृदय में रत्युद्बोध के अनन्तर । अंग प्रत्यंग का एक ऐसा विकार कहा करते हैं जो सब पर प्रकट हो जाय ।[4]

नायिका की प्रेम रस।बनावटी। रिस और सुरत की चाह से भरी अंखियों को परिलक्षित कर सखियों को सुख प्राप्त होता है । यहाँ नायिका का भाव सब सखियों पर प्रकट हो गया है -

प्रेम भरी रस रिस भरी , भरी सुरति की चाह ।
लखि सखियां अंखियान कों , रहति सबै सुखचाह ।।[5]

## अयत्नज अलंकार

शोभा - जिसे शोभा कहते हैं वह रूप , यौवन, सौकुमार्य, किंवा, सुखभोग से नायिका। और नायक के । शरीर का एक सौन्दर्य है ।[6]

---

1- साहित्य दर्पण - 3/94
2- राजधर सतसइ- दो0 135
3- राजधर सतसइ- दो0 86
4- साहित्य दर्पण- 3/94
5- राजधर सतसइ- दो0 297
6- साहित्य दर्पण- 3/95

राजधर ने नायिका के लिए " लता-लहलही" कह कर शोभा का ही निरूपण किया है -

> लखि लगवानौं भ्रुंवरु मनु, लख सुरूमा को मूलु ।
> ललित लता सी लह लही, सील फूल छवि फूलु ।।[1]

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी राजधर सतसई में देखे जा सकते हैं ।[2]

<u>कान्ति</u> - "शोभा ही कान्ति बन जाती है जबकि उसमें काम विलास की पुष्टि परिलक्षित होने लगती है ।[3]
नायिका सुरत-संग्राम में निरत है जिसकी वजह से बिना (बाह्य) आभूषणों के ही उसके अंग प्रत्यंग में एक नवीन आभा का उदय हो गया है , यही "कान्ति" है -

> बिन भूषन भूषित भई , अंग अंग जोबन जोति ।
> जुरी सुरति संग्राम निति, सुरति न तन की होति ।।[4]

<u>दीप्ति</u> - अति विस्तीर्ण कान्ति ही "दीप्ति" है ।[5]

> अधिक अँधेरे भौन में , परगट करति लखाई ।
> सहज उज्यारी ह्वै रही, जहाँ टुकै तिय जाइ ।।[6]

दीप्ति के अन्य उदाहरण भी राजधर सतसई में देखे जा सकते हैं ।[7]

अधिकांश दोहों में नायिका की "दीप्ति" का वर्णन रूढ़ एवं ऊहात्मक बन पड़ा है , जिसमें सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की भावना कम चमत्कार प्रदर्शन ही अधिक दिखाई पड़ता है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1- राजधर सतसई - दो0 - 53
2- राजधर सतसई- दो0- 110, 115, 242
3- साहित्य दर्पण- 3/95
4- राजधर सतसई- दो0- 168
5- साहित्य दर्पण- 3/96
6- राजधर सतसई- दो0- 373
7- राजधर सतसई- दो0- 372, 400, 408, 416, 510 इत्यादि ।

माधुर्य- (नायिका अथवा नायक की) एक ऐसी रमणीयता है, जो सभी प्रकार की अवस्थाओं में अक्षुण्ण रहा करती है।[1]
बिना ही आभूषणों के नायिका विभूषित सी जान पड़ती है -

अंग अंग छवि बढ़ि चली, चली तु सिसुता भाजि।
बिनु भूषन भूषित भई, दीपति दुगुन बिराजि।।[2]

औदार्य - औदार्य का अभिप्राय है कदापि क्रोध न करने अथवा सदा विनम्र रहने का।[3]
रसिक नायक पनघट पर नायिका को रोक लेता है, किन्तु नायिका सदा "आई गई" करती रहती है -

करति रहत आई गई, सकति न कोई टोकि।
रसिक लाल दृग लालची, रहे पनघटा रोकि।।[4]

विलास- प्रिय की उपस्थिति में नायिका द्वारा प्रदर्शित विशेष प्रकार की आंगिक या वाचिक चेष्टाएँ विलास "हाव" के अन्तर्गत आती हैं।[5]
एक नायिका (पनघट के समीप) अपने चरण ऊँचे करके (पंजों के बल) सिर पर गागर रखती हुई नायक की ओर मुस्कराती हुई बहुत प्रकार से अपनी भुजा उठाती है अर्थात वह अपनी निकली आदि नायक को दिखाने की चेष्टा कर रही है, जिससे उसका मन्तव्य स्पष्ट है -

भुज उठाइ बहु भाई सों, लालन तन मुसक्याइ।
गागरि पर गागरि धरत, नागरि चरन उचाइ।।[6]

इसी प्रकार नायिका का बार बार ओढ़नी ओढ़ने के बहाने अपना उर और उरोज दर्शाना भी नायक को मौन निमन्त्रण है -

फिर फिर ओढ़ी ओढ़नी, उर उरोज दरसाइ।[7]

---

1- साहित्य दर्पण - 3/96
2- रामधर सतसई - दो0 - 525
3- साहित्य दर्पण - 3/97
4- रामधर सतसई - दो0 - 271
5- दशरूपक - 2/38
6- रामधर सतसई - दो0 - 31
7- रामधर सतसई - दो0 - 537

कुट्टमित - काव्य कोविद जिस यौवनालंकार को "कुट्टमित" कहते हैं, उसका अभिप्राय नायक के द्वारा केश, अधर आदि ग्रहण करने में आनन्द लेने वाली भी नायिका का संभ्रमवश अपने सिर हाथ आदि का (निषेध सूचक) विधूनन अथवा कंपन है।[1]

जब नायिका का अंचल नायक ग्रहण करता है तो नायिका के दृग चंचल हो उठते हैं (इससे प्रतीत होता है वह आनन्द ले रही है। फिर भी बार बार (नहीं नहीं) करती रहती है -

दृग चंचल चंचल करनि, अंचल पकरति सोइ।
नाहीं की जब मुँह लगी, नाहीं लगि थिर होइ।।[2]

विहृत - विहृत का अभिप्राय बोलने के समय भी लज्जावश न बोल पाना है।[3]

नायिका स्वेद युक्त, शिथिल तन और तीव्र साँस युक्त है। प्रीतम को समीप देखकर भी उससे कुछ बोलते नहीं बनता -

स्वेद सलिल तन सिथलई, बरसाँसि न कहि सात।
अगन ताप उतरी मनौ, आवत प्रीतमु गात।।[4]

विच्छित्ति - सौन्दर्य की वृद्धि करने वाली थोड़ी सी वेष रचना विच्छित्ति कहलाती है -[5]

नायिका स्नान करके जूड़ा बाँध लेने पर ही पर्याप्त सुन्दर दिखाई पड़ती है -

सुन्दरि सहज अन्हाइ के, जूरो बाँध्यो सीस।
बिधु आनन बाढ़ै मनौ, कुंडल करि फनीस।।[6]

पान खाने से नायिका के अधरों की लाली अत्यधिक आकर्षक है -

पान खात तिय सहज मैं, अधरन लाली होति।
अंतर तै अनुराग जनु, बाहिर कीनी जोति।।[7]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1- साहित्य दर्पण - 3/103
2- राजधर सतसई - दो० सं० 139
3- साहित्य दर्पण - 3/106
4- राजधर सतसई - दो० सं० 206
5- साहित्य दर्पण - 3/99
6- राजधर सतसई - दो० सं० 456
7- राजधर सतसई - दो० सं० 231

**ललित** - अंग प्रत्यंग का सुकुमार विन्यास ही "ललित" है ।[1]

नायिका की " नूपुर रव से रंजित " चतुराई युक्त चाल ललित के अन्तर्गत ही आती है -

सीखति मंद मराल गति, पिय को अति सुखदाय ।
नूपुर रव रंजित पदनि, ललित चातुरी चाय ।।[2]

एक उदाहरण और देखिए -

आगे पाछत हंस नहि, तेरी ललनि बिलोकि ।
मदगति ढाढ़ी कुंजरनि, चढ नति सद गति देखि ।।[3]

**तपन** - तपन का अभिप्राय प्रियतम के वियोग में कामावेश सम्बन्धी चेष्टाओं का है ।[4]

नायिका के हृदय में विरहाग्नि है और हृदय में ही (वियोग काल में) प्रिय का वास है । प्रिय उसकी विरहाग्नि की आंच से दुख न पाये इसलिए वह अपने हृदय पर उसीर (खस) और कपूर चर्चित करती रहती है -

बार बार चरचति रहति, उर उसीर घनसार ।
पिय हिय दुख पावै नहीं, विरह अगिनिकी झार ।।[5]

**कुतूहल** - किसी सुन्दर वस्तु के दर्शन के लिए मन में कौतुक की जागृति का नाम कुतूहल है ।[6]

एक नायिका बाहर कोई कौतुक देखने को गई, लेकिन उसके अभिराम रूप को देखकर वहां लोग बागों की भीड़ एकत्रित हो गई और वह स्वयं ही कौतुक का केन्द्र बन गई -

कौतुक देखन को गई, दौर द्वार लगि बाम ।
कौतुक लाग्यो कौतुकी, निरखि रूप अभिराम ।।[7]

---

1- साहित्य दर्पण - 3/105
2- राजधर सतसई - दो०सं० 319
3- राजधर सतसई - दो०सं० 398
4- साहित्य दर्पण - 3/106
5- राजधर सतसई - दो०सं० 402
6- साहित्य दर्पण - 3/109
7- राजधर सतसई - दो०सं० 474

हसित -

यौवन के उद्रेक के कारण (प्रियतम के आगे) अकारण हंसने का नाम हसित है।[1] जैसे -

जानति तीछन नयन तिय, पिय अति कोमल गाति।
याते घूंघट ओट दै, चितवति मृदु मुसक्याति ॥[2]

चकित -

बिना किसी कारण के ही प्रियतम के आगे भयभीत होना चकित है।[3]

नायिका की सखियाँ उसको केलि भवन में साथ ला रही हैं, किन्तु वह नायक की परछाहीं देख कर भय से चकित हो रही है -

संग आवति है सखिन के, संकित सी उर माहिं।
चकित चितै मैं भवन मैं, निरखि नाह की छांहि ॥[4]

केलि -

प्रियतम के साथ प्रेम विहार में नायिका की क्रीड़ा का नाम "केलि" है।[5]

एक सुरत निरत नायिका की केलि का वर्णन देखिए। नायिका के अंग संचालन के कारण प्रतिकृति किंकिणी (वाद्य यंत्र की तरह) ध्वनित हो रही है। उसकी हंसी की खनखनाहट मृदंग की तरह (ताल युक्त) संगत दे रही है। उसकी दुरकी एवं मुरक थरहरा रहे हैं (जैसे नृत्य कर रहे हों) -

कटि तटि बाजति किंकिनी, मृदु हाँसनि मिरदंग।
थरहरात दुरकी मुरत, सुरत निरत रसरंग ॥[6]

"केलि" के अन्य उदाहरण भी राजधर सतसई में देखे जासकते हैं।[7]

---

1- साहित्य दर्पण - 3/109
2- राजधर सतसई - दो०सं० 95
3- साहित्य दर्पण - 3/109
4- राजधर सतसई - दो०सं० 485
5- साहित्य दर्पण - 3/110
6- राजधर सतसई - दो०सं० 93
7- राजधर सतसई - दो०सं० 62, 168 आदि

राजधर सतसई में समस्तप्राय नायिका के यौवनालंकारों को प्रयुक्त किया गया है। अयत्नज अलंकारों में शोभा और कान्ति का सहज वर्णन है, किन्तु दीप्ति के वर्णन में कवि ऊहात्मकता की ओर उन्मुख हो गया है। यत्नज अलंकारों में कवि ने नायिका की कोमल चेष्टाओं का सुन्दर चित्रण किया है।

## (ख) रायपुर लहरी में श्रृंगार निरूपण -

### श्रृंगार रस का स्वरूप -

श्रृंगार रस का स्वरूप 'श्रृंगार' शब्द की व्युत्पत्ति (श्रृंगं इयर्ति इति श्रृंगारः) से ही स्पष्ट हो जाता है। "श्रृंग" का अभिप्राय है (कामुक युगल के उत्पीड़क) कामाविर्भाव और श्रृंगार का अभिप्राय है, जो "इस प्रकार के कामोद्भेद से संभूत हो"।

इस रस के आलम्बन प्रायः उत्तम प्रकृति के ही प्रेमी जन हुआ करते हैं,[1] अर्थात् परकीया किंवा अनुराग शून्य वेश्या नायिका को छोड़ कर अन्य प्रकार की नायिकाएँ तथा दक्षिण आदि नायक ही इसके उपयुक्त 'आलम्बन' विभाव है।

इसके उद्दीपन विभाव हैं- कामभाव को उद्दीप्त करने वाली स्थिति विशेष जैसे- चंद्र-चंद्रिका, चन्दनानुलेप, भ्रमर झंकार आदि।[2]

इसके अनुभाव हैं- प्रेम पगे भ्रुकुटि-भंग, कटाक्ष आदि।[3] औग्र्य, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर सभी व्यभिचारी भाव इसके परिपोषक हुआ करते हैं।

'रति' इसका स्थायी भाव है। नाट्य शास्त्रों में इसका वर्ण श्याम और इसके अभिमानिदेव विष्णु भगवान कल्पित किए गए हैं।[4]

---

(1) साहित्य दर्पण- विश्वनाथ (हि०व्या०) डा० सत्यव्रत सिंह 3/183

(2) - वही 3/184

(3) - वही 3/185

(4)- वही 3/186

दशरूपक कार ने श्रृंगार रस का लक्षण निम्न प्रकार से निरूपित किया है --

'रम्य देश कलाकालवेषभोगादि सेवनैः ।

प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः

प्रहृष्यमाणाः श्रृंगारो मधुराङ्गविचेष्टितैः ॥'[1]

(रमणीय देश, कला, काल, वेष तथा भोग आदि के सेवन के द्वारा परस्पर अनुरक्त युवक युवति को जो प्रमोद होता है वह रति भाव कहलाता है, वही मधुर अंग चेष्टाओं से युक्त होकर श्रृंगार रस कहलाता है ॥

रम्य देश० - रमणीय देश आदि श्रृंगार के उद्दीपन विभाव हैं । युवक तथा युवति (नायक-नायिका) आलम्बन विभाव है । अन्योन्यरक्तयो परस्पर अनुरक्त युवक-युवति का अभिप्राय यह है कि जहाँ नायक नायिका एक दूसरे के प्रति अनुराग रखते हैं, वहाँ श्रृंगार रस हुआ करता है । मधुराङ्ग चेष्टायें इसके अनुभाव हैं ।[2]

<u>श्रृंगार रस के भेद -</u>

साधारणतया सभी काव्याचार्यों ने श्रृंगार रस के दो भेद माने हैं-

(1) संयोग या संभोग श्रृंगार ।

(2) वियोग अथवा विप्रलम्भ श्रृंगार ।

प्रायः संयोग से पूर्व ही प्रेम उत्पन्न हो जाता है- उसे हम पूर्वानुराग कहते हैं । इस प्रकार 'दश रूपक कार' के अनुसार श्रृंगार के तीन भेद ठहरते हैं -

(1) अयोग, (2) संयोग तथा (3) विप्रयोग (विप्रलम्भ)[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) दश रूपक (धनंजय) टि०व्या० डा० श्री निवास शास्त्री-4/48

(2) - वही टिप्पणी पृष्ठ-

(3) - वही /58

(4)

संयोग या सम्भोग शृंगार -

पारस्परिक प्रेम के वशीभूत होकर जब नायक-नायिका एक दूसरे के दर्शन मिलन, स्पर्श और आलाप आदि में संलग्न होते हैं, उस अवस्था को संयोग और उसके वर्णन को संयोग शृंगार कहते हैं ।[1]

आचार्य विश्वनाथ ने "संयोग शृंगार का लक्षण इस प्रकार दिया है --

"परस्पर प्रेम पगे नायक और नायिका के परस्पर दर्शन, परस्पर स्पर्श आदि-आदि की अनुभूति का प्रदाता जो रस है वह संभोग शृंगार है ।[2]

संभोग शृंगार के निम्नलिखित चार प्रकार भी प्रतिपादित किए गए हैं --

(1) पूर्व रागानन्तर संभोग ।

(2) मानानन्तर संभोग ।

(3) प्रवासानन्तर संभोग

(4) करुण विप्रलम्भानन्तर संभोग ।[3]

नायक नायिका के संभोग में पहल करने के अनुसार मम्मटाचार्य ने दो भेद माने हैं --

(1) नायिकारब्ध ।

(2) नायकारब्ध ।

साहित्य शास्त्र के अनुसार पहले नायिका के अनुराग का वर्णन ही उचित है ।[3][4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन, डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी-
(2) सा०द०- 3/210 | पृष्ठ- 22
(3) सा०द०- 3/213
(2) काव्य प्रकाश, मम्मटाचार्य - 4/44
(3)

## रीतिकालीन संयोग श्रृंगार वर्णन :

"स्थासक्ति और शरीर आकर्षण का परिणाम है- संयोग सुख। इसमें परम्परानुसार हावादिजन्य चेष्टायें सुरत, विहार, मधपान आदि का वर्णन होता है। रीतिकालीन काव्यों में इनका खूब चटकीला चित्रण हुआ है। रीति कवियों का यह प्रमुख मार्ग था और यहाँ पर उनकी रसिकता खुलकर खेलती दिखाई पड़ती है।

संयोग में बहिरिन्द्रियों का संनिकर्ष अनिवार्य है। हाव चेष्टा, सुरत आदि का मुख्य आधार बहिन्द्रिय संनिकर्ष ही तो है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि शारीरिक सुख की प्रमुखता में मानसिक सुख एवं आनंद उपेक्षित हो गया है। शरीर और मन का कुछ ऐसा सम्बन्ध है, कि एक का सुख दूसरे का सुख हो जाता है। आलिंगन परिरंभण जैसे मांसल वर्णनों में भी मानसिक उल्लास को प्रायः विस्मृत नहीं किया गया है।"[1]

## राजधर सतसई में श्रृंगार वर्णन -

राजधर सतसई श्रृंगारिक सतसई परम्परा की एक कड़ी है, जिसमें संयोग एवं विप्रलम्भ श्रृंगार का विस्तृत वर्णन किया गया है।

### संयोग श्रृंगार -

दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ।
यत्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगोऽयमुदाहृतः ॥[2]

---

(1) हिन्दी साहित्य का बृहत्त इति० भाग-6 सं० डा० नगेन्द्र- 147, 148

(2) साहित्य दर्पण- 3/210

यहाँ, "दर्शन स्पर्शनादीनि" में जो "आदि-आदि" शब्द प्रयुक्त है उसका अभिप्राय परस्पर अधरपान, परस्पर चुम्बन और आलिंगन आदि आदि सुखोपभोगों की कल्पना कौन कर सके ।

राजधर सतसई में संयोग श्रृंगार प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है-

सुकवि सुमति त्रैलोक में, सुकला गुन बहु चारु ।
राजधर कवि कोविदनि, कीनों सुखद सिंगार ।।[1]

दर्शनजन्य अनुभूति एवं प्रभाव,[2] कटाक्ष[3] मुस्कराना,[4] मिलन,[5] चुम्बन,[6] स्पर्श,[7] आलिंगन,[8] प्रेमवार्ता,[9] छेड़खानी,[10] मनुहार,[11] प्रथम मिलन से पूर्व धक-धकी,[12] विलास,[13] सुरतारम्भ,[14] रति क्रिया,[15] विपरीत[16] रति, नख क्षत,[17] दन्त क्षत,[18] सुरतान्त,[19] एवं विहार जैसे हिंडोला झूलना,[20] होली का रस-रंग[21] आँख मिचौनी,[22] इत्यादि की रमणीय वर्णना राजधर सतसई में की गई है । चूँकि यहाँ हमारा विवेच्य संयोग श्रृंगार का शास्त्रीय अनुशीलन है, अतः "विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद् रस निष्पत्तिः" के अनुसार क्रमशः विवेचन करेंगे ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। राजधर सतसई दो०-सं०- 13
।2। - वही - 19, 23
।3। - वही - 61, 429
।4। - वही - 31, 95, 261, 288
।5। - वही - 33, 50, 445
।6। - वही - 97
।7। - वही - 34
।8। - वही - 122, 123
।9। - वही - 120
।10।- वही - 155, 271
।11।- वही - 77
।12।- वही - 313
।13।- वही - 40, 86, 124, 135
।14।- वही - 34, 8 139
।15।- वही - 93, 168
।16।- वही - 48, 166, 394, 340
।17।- वही - 112, 164, 88 415
।18।- वही - 167, 425
।19।- वही - 503, 442, 423
।20।- वही - 30, 66
।21।- वही - 253-257, 385
।22।- वही - 372, 373

## विभाव -

भरत के अनुसार विभाव का अर्थ विशेष ज्ञान या स्पष्ट ज्ञान है। कारण, निमित्त और हेतु ये सभी विभाव के पर्याय हैं। विभाव के द्वारा वाचिक आंगिक और सात्विक अभिनय विभावित होते हैं। इस लिए इसे विभाव कहा जाता है।[1]

विभाव का लक्षण इस प्रकार निर्धारित किया है -

बहवोऽर्था विभाव्यन्ते वागङ्गाभिनयाश्रिताः

अनेन यस्मात्तेनायं विभाव इति संज्ञितः।[2]

विश्वनाथ आदिक अन्य आचार्यों ने भी "विभाव" के स्वरूप का निरूपण करते हुए निष्कर्ष रूप में यही निर्धारित किया है, कि लोक में रति आदिक भावों के उद्बोधक जो कारण हैं, वे ही "काव्य" और नाटकों में "विभाव" कहलाते हैं -

"रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः।[3]

विभाव के दो भेद होते हैं, (1) आलम्बन विभाव (2) उद्दीपन विभाव आलम्बनोद्दीपनाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।[4]

## आलम्बन-विभाव-

जिसका आलम्बन करके "स्थाई भाव" रति इत्यादि मनोविकार सहृदयों के मनों में अभिव्यक्त होते हैं।

आलम्बन विभाव का अभिप्राय तो काव्य-नाट्य-वर्णित नायकादि का है काव्यनाट्यवर्णित नायकादि को इसलिए "आलम्बन विभाव कहा है क्योंकि इन्हीं के सहारे, इन्हीं के साथ, साधारणीकरण होने के कारण सामाजिकों के हृदय में "रस" का संचार हुआ करता है।"[5]

---

(1) नाट्य शास्त्र भरत मुनि अध्याय-7 पृष्ठ- 72
(2) नाट्य शास्त्र भरत मुनि 7/1
(3) साहित्य दर्पण 3/29
(4) सा०द० 3/29
(5) सा०द० 3/29

"आलम्बनं नायकादि स्तमालम्ब्य रसोद्गमात् ।साहित्य दर्पण 3/29। यहाँ हम आलम्बन विभाव का विवेचन सुविधानुसार दशरूपक के अनुसार प्रस्तुत कर रहे हैं ।

**।1। युवति विभाव [1]**

युवति विभाव वहाँ होता है, जहाँ किसी युवति के यौवन का वर्णन रति भाव के निमित्त हुआ करता है ।—

नख सिख तैं ऐसी बनी, ऐसी देखी मैं न ।
साँची, साँचे मैनके, मानो ढारी मैन ।।[2]

यहाँ नायिका आलम्बन है । उसको कामदेव द्वारा साँचे में ढाली हुई कहा गया है, अतः उसका यौवन नायक के रति भाव के उद्भव का निमित्त दिखाया गया है ।

इसी प्रकार "नख-शिख वर्णन" शीर्षक के अन्तर्गत ।प्रस्तुत शोध प्रबंध में। नायिका के अंग प्रत्यंग, विशेष रूप से कुचों का उभार[3], क्षीण कटि[4], कदली वृक्ष सदृश पुष्ट जंघाएँ[5], पीन नितम्ब[6], के निमित्त से नायक के रति भाव का उद्भव दिखाया गया है ।

**।2। उभयो विभाव –[7]**

जहाँ युवक और युवति दोनों के यौवन को पारस्परिक रति भाव के निमित्त रूप में वर्णित किया जाता है, वहाँ दोनों ही विभाव होते हैं -

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। दश रूपक 3/300
।2। राजधर सतसई- दोहा- 338
।3। - वही - 144, 280
।4। - वही - 506,
।5। - वही - 359, 500
।6। - वही - 384
।7। दश रूपक 4/301

।1। एक भएँ भरतीं न इक, इकनि धरैं भरि तीर ।
जो जैसी सो त्यों रही, निरखत ही रघुबीर ।।[1]

।2। पलक पलक प्रति पलक सों, पलक लगत छवि देत ।
रूप सुधा प्रिय को मनों, स्वादि स्वादि दृग लेत ।।[2]

प्रथम दोहे में नायिकाएँ नायक के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध होकर स्तम्भित रह गयीं हैं तथा द्वितीय दोहे में नायिका, नायक के ~~[illegible]~~ रूपामृत का नेत्र द्वारा आस्वादन कर रही है । इन दोनों में नायक के निमित्त से नायिका के रति भाव का उद्भव हो रहा है ।

**पुरुष विभाव -**

जहाँ नायक के निमित्त से नायिका के रति भाव का उद्भव दिखाया जाये-

।1। दूरि भई तन की विथा, पाय सकल सुख धाम ।
देखत स्यामल रूप के, थके काम के काम ।। [3]

।2। निकसे कहूँ अचानकै, धेनु दुहावति नारि ।
पकरा तजि, तजि दोहनी, निरखत नैन मुरारि ।।[4]

।3। लखि मुसक्यानी सखन सिय, देखत हरि धनु भागु ।
मानो थाँ यौं हिय भरयौ, उमग्यौ परति सुहागु ।।[5]

प्रथम दोहे में नायक के "स्यामल रूप" को देखकर नायिका की समस्त कामनाएँ पूर्ण हो गयीं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। रामधर सतसई दोहा संख्या- 272
।2। - वही - 19
।3। - वही - 23
।4। - वही - 273
।5। - वही - 288

द्वितीय दोहे में चढ़ा और दोहनी छोड़कर नायिका अचानक निकले हुए नायक को "निरख" रही है । तृतीय दोहे में नायक को देखकर नायिका अपने को अत्यन्त सौभाग्यवती मान रही है । इन दोहों में नायक के निमित्त से नायिका के रति भाव का उद्भव दिखाया गया है ।[1]

अन्योन्यानुराग -[2]

जहाँ नायक नायिका का परस्पर अनुराग वर्णित होता है ।

1।। पाई चढ़े चितवत रहत, चख चकोर की रीति ।
 चंद बदन पिय चखत तुम, सुनि राधे करि प्रीति ।।[3]

---

1।। द्रष्टव्य-

दशरूपक में यद्यपि "युवक विभाव" का निरूपण नहीं किया गया है तदपि जब युवति विभाव है तो "युवक विभाव" भी स्वभाविक रूप से न्याय संगत है । कभी युवति का वर्णन युवक के रति भाव का उद्भावक होता है तो कभी "युवक ।नायक। का रूप सौन्दर्य युवति ।नायिका। के रति भाव के उद्भव का निमित्त निश्चित रूप से होता ही है जैसा कि उपर्युक्त दोहों से प्रमाणित है । दशरूपक में जो पुनोविभाव का उदाहरण दिया है।भूयो भूयः। मेरे मतानुसार यह वस्तुतः "युवक विभाव" पर ही अच्छी तरह घटित होता है जिसमें माधव का सौन्दर्य मालती के रति भाव का निमित्त है ।

।2। दशरूपक- 4/302

।3। रामधर सतसई दोहा संख्या- 82

(2) चितवत हँसत सुप्रेम सौं, रँगे एक ही रंग ।
प्यारी प्यारी जद लगति, प्यारी प्यौ इक संग ।।[1]

(3) सींचत गोकुल संग ही, संग रहत निसि सोइ ।
परदेसी की नारि कौं, लखि विसासु दुख होइ ।।[2]

(4) आँखी पाटि आँखिन लगी, आँखि दीठि सी आनि ।
भए एक ही पलक मैं, पलक और सुख पानि ।।[3]

प्रथम दोहे में नायक नायिका का परस्पर आँखें चार करना, द्वितीय में परस्पर प्रेम पूर्वक देखना, साथ-साथ हँसना प्यारी (रात्रि का भोजन) करना और एक ही रंग में रंगे होना, तृतीय में साथ-साथ कृषि कर्म करना (दिन में) और रात्रि में साथ-साथ सोना एवं चतुर्थ में परस्पर नैनों से वार्ता करना अन्योन्यानुराग के सुन्दर उदाहरण राजधर सतसई में मिलते हैं ।

## प्रमोदात्मा रति -[4]

रति भाव का स्वरूप बतलाते हुए उसे प्रमोदात्मा कहा गया है । प्रमोद= विशेष प्रकार का आनन्द ।

मनु पायौ सायुज्य पद, नैननि लहि निर्वान ।
तन की गति कहि कौन लखि, तो तनु रूपनि सुजान ।।[5]

सुरत काल में नायिका के मन को "सायुज्य-पद" प्राप्त हो गया है । (सुरतानंद मुकुलित) आँखें निर्वाण को प्राप्त हो गई है, तन की गति का कहना ही क्या । यहाँ नायिका के सुरतानंद जन्य प्रमोद का वर्णन है । यही प्रमोद रति भाव का स्वरूप है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 26
(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 204
(3) राजधर सतसई दोहा संख्या- 183
(4) दशरूपक - 4/48
(5) राजधर सतसई दोहा संख्या- 73

## उद्दीपन विभाव -

उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये
आलम्बनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा ।

(उद्दीपन विभाव उन्हें कहा करते हैं जो कि रस को उद्दीप्त करते हैं । नायक नायिका आदि की विविध आंगिक चेष्टायें, समुचित देश, उपयुक्त समय आदि ।[1]

दशरूपक के अनुसार रमणीय देश, कला-काल, वेष और भोग आदि उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते हैं ।[2]

## देश-विभाव -

देश विभाव वहाँ होता है, जहाँ किसी रमणीय स्थल नदी, तीर इत्यादि के निमित्त से रति भाव के उद्बोध का वर्णन किया जाता है ।[3]

ललित लता लपटी तरूनि, तरुनि तरुन जिमि अंग ।
नूतन लसिका लस मनौ, पुलकित व्यापि अनंग ।।[4]

नायक नायिका से कह रहा है (अथवा नायिका, नायक से कह रही है) "वृक्ष पर लिपटी लता, तरुणी सदृश्य किसी तरुण से लिपट रही (प्रतीत हो रही है) (आलिंगन से) पुलक एवं काम संचार की अभिव्यक्ति नूतन कलिका के रूप में आभासित हो रही है ।"

यहाँ नायक (अथवा नायिका) का रति भाव वृक्ष पर लिपटी हुई लतिका को देखकर उद्दीप्त हो रहा है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) साहित्य दर्पण - 3/131

(2) दशरूपक- 4/36

(3) दशरूपक- (डॉ०व्या०) श्रीनिवास शास्त्री- टिप्पणी पृष्ठ- 358

(4) राजधर सतसई दोहा संख्या- 552

काल-विभाव –

काल विभाव वहाँ होता है जहाँ काल विशेष आदि के निमित्त से रति भाव उद्भूत होने का वर्णन होता है ।[1]

उदित भयो ससि सरद निसि, जगतु होत अभिराम ।
छूटत माननि मान नहिं, व्यापि अंग सब काम ।। [2]

एक तो रात्रि, दूसरे शरद ऋतु और तीसरे उस पर चन्द्रोदय (का सम्बन्ध) इस पर भी (बेचारी) मानिनी नायिका मान नहीं छोड़ेगी तो क्या करेगी ? यहाँ रात्रि और शरद ऋतु (काल विशेष) के निमित्त से नायिका का रति भाव अत्यन्त उद्दीप्त हो उठा है ।

संयोगकालीन समस्त उपादान वियोग काल में दुखद हो जाते हैं वसन्त काल में विरहिणी (प्रोषित पतिका) नायिका को भ्रमर श्रेणी तो मानो "कामदेव करवाल लेकर मारने आ रहा" प्रतीत होती है ।[3] कवि समय अनुसार "काक" कोयल के अण्डे सेता है, अतः कोयल काक द्वारा पालित हुई इसलिए वसन्त काल में कूकती हुई कोयल नायिका को (काक सदृश्य) क्रूर प्रतीत हो रही है ।[4] कभी-कभी तो "कुहू-कुहू" करती हुई कोयल नायिका को उसके प्रीतम (नायक) को बुलाती हुई प्रतीत होती है ।[5] एवं "पीउ-पीउ" करता हुआ चातक नायक को बुलाता प्रतीत होता है ।[6] परागकण युक्त समीर तो नायिका को दावानी बना रहा है ।[7] कामोद्दीपन से उसके समस्त अंग विकल हो रहे हैं । पावस काल में मोर की "कूक" नायिका के हृदय में "हूक" उठाती है ।[8] रात्रि में जुगनू[9], दुखी सेज,[10] काल एवं देश विभाव के उदाहरण हैं इस प्रकार षट् ऋतुएँ एवं बारह मास नायिका के रति भाव को उद्दीप्त करते हैं ।[11]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) दासपद (शि०ग्र०) पृ०- 359
(2) रामसहाय सतसई दोहा सं०- 628
(3) – वही – 629
(4) – वही – 560
(5) – वही – 561
(6) – वही – 592
(7) रामसहाय सतसई दो०- 309
(8) – वही – 599
(9) – वही – 427
(10) – वही – 138
(11) –प्रकृति चित्रण (उद्दीपन रूप) शीर्षक के अन्तर्गत देखिए ।

कला विभाव -
===========

वहाँ होता है जहाँ नृत्य, संगीत आदि कला के निमित्त से रति भाव के उद्भव का वर्णन होता है । यथा-

मुरली की धुनि सुनि चली, छोड़ि संग की नारि ।
नागरि की गागर रही, धरी कुआ के पार ।।[1]

यहाँ नायिका की रति, नायक की मुरली की धुन (संगीत) के निमित्त से अत्यन्त उद्दीप्त हो उठी है । बाँसी की धुन से वह अपनी सुध-बुध खो बैठी । उसको यह भी ध्यान नहीं रहा कि उसके साथ सखियाँ भी हैं और वह जल भरने आयी है । गागर को कुआ के "पार" पर रखा छोड़कर तन्मय होकर नायक से अभिसार हेतु चल पड़ी ।

वेष विभाव -
===========

वेष विभाव वहाँ होता है, जहाँ रमणीय वेष विन्यास के निमित्त से रति भाव के उद्भव का वर्णन किया जाता है । राजधर सतसई में विकसित उरोजों के कारण फटती सी नायिका की कंचुकी[2], कुसुम रंग की साड़ी,[3] नायिका के गौरवर्ण सिंधु में वाडवाग्नि सदृश प्रतीत होता हुआ लहरिया,[4] कामोद्दीपक महावर,[5] कामाग्नि का साक्षात स्वरूप हथफूल[6] (नायक के) सुख दायक (नायिका) छला,[7] असीमित शोभा युक्त नथ[8] सस्वर कामशास्त्र का पाठ करते प्रतीत हो रहे (नायिका की) किंकणी के घुंघरू[9] अद्भुत गति से बजते हुए नूपुर[10] सुरत काल में बजती हुई किंकणी एवं थरथराती हुई दुरकी[11] इत्यादि[12] वस्त्रालंकार के निमित्त से नायक के रति भाव के उद्दीपन का वर्णन किया गया है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दो- 75
(2) - वही - 286
(3) - वही - 437
(4) - वही - 460
(5) - वही - 251
(6) - वही - 225
(7) राजधर सतसई दो- 544
(8) - वही - 109
(9) - वही - 18
(10) - वही - 252
(11) - वही - 93
(12) प्रस्तुत शोध प्रबंध में 'वस्त्रालंकार' शीर्षक में विस्तृत विवरण देखिए-

**उपभोग विभाव -**

उपभोग विभाव वहाँ होता है जहाँ नायक-नायिका के उपभोग चिन्हों द्वारा रति भाव लक्षित होता है । यथा --

भोर उठी सुभ सेज तें, हार परे तिति टूटि ।
मानो उर में माति नहि, राति करी सुख लूटि ।।[1]

प्रातःकाल "सुख-सेज" से (शयनोपरान्त) उठी नायिका के "हार" टूट कर पृथ्वी पर बिखरे हुए पड़े हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानो रात्रि में नायिका ने जो (सुरत) सुख लूटा है, वह उसके हृदय में नहीं समा रहा है इसलिए (टूटे हुए हारों के रूप में) पृथ्वी पर बिखर गया है ।

दोउ सोवत सेज पर, दैखे छवि यों देत ।
घायल रति संग्राम के, मानो परे अचेत ।।[2]

(सुखोपरान्त) सेज पर शयनावस्थित नायक-नायिका, मानो रति संग्राम के (नखक्षत, दन्तक्षत आदि के कारण) घायलों जैसे (श्रम के कारण) अचेत प्रतीत हो रहे हैं ।

अलसौहैं सौहैं दृगनि, उमगे भरि अनुराग ।
भोर उठे सुभ सेज तें, स्यामा स्याम सभाग ।।[3]

प्रातः सेज से उठने पर नायक एवं नायिका "अलसौहे दृग" एवं दोनों अनुराग उमंगित हैं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 423

(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 503

(3) राजधर सतसई दोहा संख्या- 422

प्रथम दोहे में उपभोग चिन्हों के द्वारा नायक का रति भाव दिखाया गया है । द्वितीय एवं तृतीय दोहे में ‡नायक एवं नायिका‡ दोनों के उपभोग चिन्हों के निमित्त से नायक एवं नायिका का पारस्परिक रति भाव लक्षित होता है ।

खंडिता नायिका की व्यंग्योक्तियों के अन्तर्गत नायक में पर-स्त्री उपभोग चिन्होंमें जैसे-- नायक के ‡रात्रि जागरण के कारण‡ "अनरौहे द्रग" एवं "पिछुरे पैचनि पाग"[1] पलकों के उपर ‡अन्य स्त्री‡ के चुम्बन लेने के कारण‡ पीक का निशान,[2] लटपटई चाल,[3] माथे पर उल्टी बेंदी की छाप,[4] एवं पिछुली,[5] आदि के निमित्त से नायक का पर स्त्री के प्रति रति भाव लक्षित हो रहा है ।

अनुभाव -
००००००००

अनुभाव शब्द भाव के साथ"अनु" उपसर्ग लगाने से बना है । "अनु" का अर्थ है पश्चात् । इस प्रकार अनुभाव वह है जो भाव के पश्चात् उत्पन्न हो ; अथवा कहा जा सकता है कि जिन बाह्य कार्य रूप लक्षणों से भाव का अनुमीयमान ज्ञान हो उन्हें अनुभाव कहते हैं ।

आचार्य भरतमुनि के अनुसार-
जिसके द्वारा वाचिक, आंगिक और सात्त्विक अभिनय की अनुभूति दी जाये, उसे अनुभाव कहते हैं ।[6]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

‡1‡ राजधर सतसई दोहा संख्या- 422
‡2‡ - वही - 224
‡3‡ - वही - 421
‡4‡ - वही - 148
‡5‡ - वही - 201
‡6‡ नाट्य शास्त्र भरत मुनि 7/5,6

आचार्य धनंजय ने अनुभाव की परिभाषा इस प्रकार दी है -

[illegible] अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः ।[1]

इस प्रकार अनुभाव आश्रय में भाव उत्पन्न हो जाने की सूचना भी देते हैं ।और रस की पुष्टि भी करते हैं । आचार्य विश्वनाथ अनुभाव की व्याख्या इस प्रकार करते हैं -

उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्

लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्य-नाट्योः ।[2]

।अपने अपने कारणों से हृदय में उद्बुद्ध रति आदि भावों को बाहर प्रकाशित करने वाले अंगादि व्यापारों का नाम अनुभाव है । लोक जीवन में ये अंगादि व्यापार ।रत्यादि भावों के। कार्य कहे जाते हैं, किन्तु काव्य-नाट्य के क्षेत्र में इन्हें "अनुभाव" की अलौकिक संज्ञा प्राप्त है।।

## अनुभावों के प्रकार -

भरत मुनि के अनुसार अनुभाव चार प्रकार के हैं -

आङ्गिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्त्विकस्तथा

चत्वारोऽभिनया ह्येते विज्ञेया नाट्य संश्रयाः ।[3]

## राजधर सतसई में अनुभाव विधान -

### ।1। आंगिक अनुभाव

भाव की परिसूचक शारीरिक चेष्टाओं को आंगिक अनुभाव कहा जाता है जैसे रति भाव के अन्तर्गत कटाक्ष, चुम्बन आलिंगन आदि आंगिक चेष्टाएँ आंगिक अनुभाव हैं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। दशरूपक 4/3

।2। साहित्य दर्पण 3/132

।3। नाट्य शास्त्र- 6/23

कटाक्ष-

बरछी सी तरछी चितै, घालत दृग की कोर ।
घाउ कहूँ दीसै नहीं, घाइल करत मरोर ।।[1]

नायिका कटाक्ष से बरछी की भाँति नायक के हृदय पर चोट करती है।

अंग प्रदर्शन -

फिरि फिर ओढ़ी- ओढ़िनी, उर उरोज दरसाइ ।
यह छबि टारी नहि टरत, नैननि रही समाइ ।।[2]

नायिका पुनः पुनः ओढ़नी ओढ़ने के ब्याज से नायक के समक्ष अपने उरोजों का प्रदर्शन कर रही है ।

इसी प्रकार भ्रूप्रोत्क्षेप मुस्कराहट व कृत्रिम गति में क्रिया विदग्धा नायिका के आंगिक अनुभाव सराहनीय हैं ।[3]

इसके अतिरिक्त कभी स्वच्छन्दता पूर्वक[4], कभी सखियों की ओट लेकर[5], कभी घूँघट से ही[6], कटाक्ष करना, कभी खेल-खेल में (आँख मिचौनी) में भी अँखियाँ बंद करना, इधर उधर देखकर कि कहीं कोई देख न ले चतुराई से नायक को (संकेट स्थल) संकेत आँखों ही आँखों में करना[7], आदि आदि आंगिक अनुभावों के सुन्दर उदाहरण राजधर सतसई में देखे जा सकते हैं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 135
(2) - वही - 537
(3) - वही - 3/124
(4) - वही - 40
(5) - वही - 257
(6) - वही - 258
(7) - वही - 86

**(2) वाचिक अनुभाव -**

वाचिक का अर्थ है- वाणी से किया हुआ । जिस कथोपकथन या स्वगत कथन, संलाप आदि शब्दों के माध्यम से भाव का ज्ञान होता है, वह वाचिक अनुभाव कहलाता है ।

दृग चंचल, चंचल करनि, अंचल पकरति सोई ।
नाहीं की जब मुँह लगी, नाही लगि फिर होई ।।[1]

यहाँ नायिका की "नाहीं" वाचिक अनुभाव से उसके रति भाव की सूचना मिल रही है ।

**(3) आहार्य अनुभाव -**

जब आरोपित की गई या स्वेच्छा से की गई वेष रचना द्वारा भाव की सूचना मिलती है तब आहार्य अनुभाव कहते हैं ।

नायिका का साभिप्राय शृंगार करना उसके हृदय के रति भाव का परिसूचक है । इसलिए यहाँ शृंगार करना आहार्य अनुभाव है -

चुनि चुनि पहरी चूनरी, चतुनि सुरंग सुब पाई ।[2]

यहाँ नायिकाओं द्वारा (साभिप्राय) चुन चुन कर, सुन्दर-सुन्दर रंगों की चुनरियाँ पहिनना उनके रति भाव की स्पष्ट सूचना दे रहा है ।

इसी प्रकार नायिका का रुच रुच कर लहरिया पहिनना[3] रुच-रुच कर माँग भरना[4], उसमें रुच रुच कर मोती भरना[5] आदि में[6] आहार्य अनुभाव द्रष्टव्य है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 139
(2) - वही - 396
(3) - वही - 459
(4) - वही - 172
(5) - वही - 379
(6) विस्तृत विवरण के लिए देखिए- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का शीर्षक "यमकालंकार" ।

4- **सात्विक अनुभाव -**

आत्मा में अन्तर्भूत रस को प्रकाशित करने वाला अन्तः करण का धर्म विशेष "सत्व" कहलाता है । इसी सत्व गुण से उत्पन्न शरीर के स्वाभाविक अंग विकार को सात्विक अनुभाव कहते हैं । इनकी संख्या आठ है [1] यथा --

(1) स्तम्भ, (2) स्वेद, (3) रोमांच, (4) स्वर भंग, (5) कम्प, (6) वैवर्ण्य (7) अश्रु (8) प्रलय ।

**(1) स्तम्भ -**

भय, हर्ष, रोग आदि के कारण मन किंवा शरीर के व्यापारों का रुक जाना "स्तम्भ" है ।[2]

रुक भौं, भरतीं न रुक, झुकनि धरैं भरि तीर ।
जो जैसी सो त्यों रहीं, निरखत श्री जदुवीर ॥[3]

यहाँ दर्शन जन्य स्तम्भ सात्विक अनुभाव है ।

**(2) स्वेद -**

रति प्रसंग, आतप (धूप), परिश्रम आदि के कारण शरीर से निकल पड़ने वाले जल को "स्वेद" कहते हैं ।[4] यथा —

टूटि गए उर हार तें, मोती मनिनि समेत ।
स्वेद बिन्दु उर पाँति मए, कैसी शोभा देत ॥[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) नाट्य शास्त्र, भरत मुनि - 7/93
(2) साहित्य दर्पण- 3/136
(3) राजधर सतसई दोहा संख्या- 272
(4) साहित्य दर्पण - 3/136
(5) राजधर सतसई दोहा संख्या-165

यहाँ रति प्रसंग जन्य "स्वेद" सात्विक अनुभाव है । इसी प्रकार राजधर सतसई में दर्शन जन्य स्वेद सात्विक अनुभाव के उदाहरण देखे जा सकते हैं —[1]

**(3) रोमांच -**

हर्ष, विस्मय, भय आदि के कारण रोंगटों के खड़े होने को रोमांच कहा जाता है ।[2]

रुचि सुगंध की कंचुकी, बहु विधि सुमनि छवाइ ।
पिय मिलतनि रोमंच उठि, तन में दई जनाइ ।।[2]

यहाँ नायिका का स्पर्श जन्य "रोमांच" सात्विक अनुभाव दिखाया गया है ।

**(4) स्वर भंग -**

मद्यपान, हर्ष, पीड़ा आदि के कारण गले के रुंध जाने का नाम स्वर भंग है ।[4] यथा —

स्वेद बदन तन सिथिलता, सुतरी सी पर वानि ।
डीठि डीठि सी लगन सी, लगी डीठि सी आनि ।।[5]

यहाँ नायिका के उद्दीप्त रति भाव की दर्शन जन्य सात्विक अनुभावों (स्वेद, स्वर भंग एवं स्तम्भ) द्वारा अभिव्यक्ति अत्यन्त सुंदर वर्णित है ।

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 205, 206
(2) साहित्य दर्पण- 3/137
(3) राजधर सतसई दोहा संख्या- 230
(4) साहित्य दर्पण- 3/138
(5) राजधर सतसई दोहा संख्या- 205

**5। वेपथु -**

अनुराग, प्रेम, परिश्रम आदि के कारण शरीर में कँपकँपी को "वेपथु" कहा करते हैं ।[1] यथा -

पहिरावत श्री राम के, कंठ बनत नाहि माल ।
कर कंपत दृग अश्रु मिलि, चकित चित्त तिहि काल ।।[2]

यहाँ नायिका के रति भाव की अभि-व्यक्ति का "वेपथु" और अश्रु दर्शन जन्य सात्विक अनुभावों द्वारा सुन्दर चित्रण किया गया है ।

**6। वैवर्ण्य -**

विषाद, मद, रोष आदि के कारण उत्पन्न वर्ण-विकार को "वैवर्ण्य" कहते हैं ।[3] यथा --

सुन्दरि सूने भवन में, आए लाल सुजानु ।
चंद वदन दुति यों भई, मानो उयो भानु ।।[4]

यहाँ दर्शन जन्य "वैवर्ण्य के चित्रांकन में कवि की सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि श्लाघनीय है ।

**7। अश्रु :**

क्रोध, दुख, प्रहर्ष आदि के कारण उत्पन्न होने वाले नेत्र जल को "अश्रु" कहते हैं ।[5] यथा --

अतन ताप तन तापियतु, ताके उपशम हेत ।
कुच महेश सिर सहस घट, दृग अश्रुन मिस देत ।।[6]

---

1। साहित्य दर्पण- 3/138
2। राजधर सतसई दो०- 128
3। साहित्य दर्पण- 3/138
4। राजधर सतसई दो०- 527
5। साहित्य दर्पण- 3/139
6। राजधर सतसई-दो०- 24

यहाँ स्मृति जनित अश्रु सात्त्विक अनुभाव का सुन्दर वर्णन है।

**(8) प्रलय -**

सुख अथवा दुख के अतिरेक में चेष्टा शून्यता किंवा ज्ञान शून्यता "प्रलय" है।[1] यथा --

नाती गति मति चित्त की, भूलि गए अभिलाष।
गाँती सो हिय में लग्यो, हाँसी ललित कटाक्ष ॥[2]

यहाँ नायक का रति-भाव चेष्टा-शून्यता एवं ज्ञान-शून्यता के कारण दर्शन जन्य "प्रलय सात्त्विक" द्वारा वर्णित है।

राजमद ललाई में अनुभावों द्वारा रति भाव की अभिव्यक्ति का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। आहार्य, आंगिक, सात्त्विक एवं वाचिक अनुभावों की ओर क्रमशः कवि ने रुचि दिखाई है। सात्त्विक अनुभावों में दर्शन जन्य "स्तम्भ," "स्वर भंग", "वेपथु", "प्रलय", स्पर्श जन्य - स्वेद एवं रोमांच, स्मृति जन्य- "अश्रु", वर्णित है। प्रायः सात्त्विक अनुभाव दर्शन जन्य ही हैं।

---

(1) साहित्य दर्पण- 3/139

(2) राजमद ललाई दोहा संख्या- 61

## व्यभिचारी अथवा संचारी भाव -

### व्युत्पत्ति -

1. "वि" और "अभि" उपसर्गों से युक्त "चर" धातु से व्यभिचारी शब्द की निष्पत्ति होती है।

2. संचारी "शब्द" - [सम्] उपसर्ग और "चर" धातु से मिलकर बना है।

--

### परिभाषायें-

1. विविधम् आभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः[1]

2. विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः
   स्थायिन्युन्मग्न निर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ ।[2]

3. विशेषादाभिमुख्येन चरणाद्व्यभिचारिणः ।[3]

### नाम का आधार -

व्यभिचारी भाव नाम का आधार यह भी है कि किसी स्थायी भाव के साथ नियत नहीं होते हैं ।[4] अर्थात [1] किसी स्थायी भाव के होने पर कोई व्यभिचारी भाव कभी होता है, कभी नहीं । [2] एक ही व्यभिचारी भाव कभी किसी स्थाई भाव के साथ होता है तो कभी दूसरे के साथ । इन्हें संचारी भाव भी कहते हैं, क्योंकि ये स्थाई भाव के रस रूपता की ओर ले जाते हैं ।

संचारयन्ति भावस्य गतिं संचारिणोऽपिते [5]

---

[1] नाट्य शास्त्र- सप्तम अध्याय पृ0- 84
[2] दशरूपक- 4/8
[3] साहित्य दर्पण- 3/140
[4] नाट्य दर्पण- 3/144
[5] नाट्य शास्त्र- पृ0- 355, 356, रसार्णव सुधाकर द्वितीय विलास

## व्यभिचारी अथवा संचारी भावों की संख्या -

भरत मुनि,[1] मम्मटाचार्य,[2] धनंजय[3], विश्वनाथ[4] आदि संस्कृत आचार्यों ने तथा अन्य रीति ग्रन्थों में इनकी संख्या तैंतीस मानी गई है । कवि देव ने चौंतीस-वां छल संचारी भाव माना है । गुप्त रीति संक्रिया सम्पादन करना "छल" कहलाता है । इसकी उत्पत्ति अपमान, कुचेष्टा, प्रतीप आदि से होती है ।[5] जबकि देव ने संचारी वर्णन के अन्तर्गत तैंतीस संचारी भावों का ही वर्णन किया है । "छल" संचारी वस्तुतः "अवहित्था" संचारी के ही अन्तर्गत आ जाता है ।

## श्रृंगार रस के संचारी भाव -

रति ।स्थायी भाव। को सहायता पहुँचाने वाले भावों में श्रृंगार रस के संचारी भाव कहते हैं । "उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा इन चार संचारी भावों को छोड़कर शेष 29 संचारी भाव श्रृंगार रस के सहायक होते हैं ।[6] देव के अनुसार श्रृंगार रस में सम्पूर्ण 33 संचारीभाव आ जाते हैं ।[7]

## राजभर सतसई में संचारी भाव वर्णन -

### हर्ष -

सावन मन भावन मिले, आनंद उर न समात ।
भूमि सरस नव अंकुरनि, जनु पुलकित सरसात ।।[8]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। नाट्य शास्त्र 7/92
।2। काव्य प्रकाश- 4/31-34
।3। दश रूपक- 4/9
।4। साहित्य दर्पण- 3/141
।5। "शब्द रसायन" देव, तृतीय प्रकाश पृ0- 35
।6। साहित्य दर्पण- 3/186
।7। शब्द रसायन देव, पृ0- 35
।8। साहित्य दर्पण- 3/185 एवं राजभर सतसई दोहा सं0- 395

सावन के मास में नायक से मिलने पर नायिका के हृदय में आनंद नहीं समा रहा है । पुलक से उसके हर्ष की अभिव्यक्ति हो रही है । इसी प्रकार आगमिष्यत्‌-पतिका नायिका का नायक को देखकर[1], ज्ञात यौवना नायिका का "फूली-फूली फिरना,[2] पर कीया नायिका का पति के परदेश के लिए चलने पर भविष्य में अन्य नायक के संग विहार की कल्पना मात्र से[3], प्रोषित पतिका नायिका के गुन-श्रवण मात्र से अंगों का प्रफुल्लित होना[4] आदि में नायिका का रति स्थायी भाव हर्ष संचारी से परिपुष्ट हो रहा है ।

औत्सुक्य -

> औंटि उमाकति नित टही, बरति झरोटे माँह ।
> छवि देखन को लाल की, छपी छपावै छाँह ।।[5]

पूर्वानुरागिनी नायिका छिपकर नायक की छवि देखने के लिए अत्यंत उत्सुक हो रही है ।

।1। जड़ता- नासी गति मति चित्त की, भूलि गए अभिलाष ।
गाँसी सो हिय में लग्यौ, हाँसी सहित कटाक्ष ।।[6]

यहाँ नायिका के दर्शन से नायक की गति एवं मति नष्ट हो गई । इसी प्रकार कहीं नायिकाएँ नायक को देखकर स्तम्भित रह गईं[7]। कहीं नायिका नायक के दर्शन से "दीठि लगी" रह गई[8]। इन सब दोहों में जड़ता संचारी भाव है ।

---

।1। रामचरित सतसई दोहा सं०- 407
।2। - वही - 125
।3। - वही - 68
।4। - वही - 548
।5। - वही - 76
।6। - वही - 61
।7। - वही - 272
।8। - वही - 205

**चपलता -**

दृग चंचल, चंचल करनि, अँचल पकरति सोई ।
नाहीं कीजक मुँह लगी, नाही लगि थिर होई ॥[1]

नायक के अँचल पकड़ने पर नायिका के नेत्रों में चांचल्य उत्पन्न हो गया है, अतः यहाँ "चपलता" संचारी भाव है ।

**व्रीडा -**

गई न जौ लगि छुटि कै, पिय क्यौं आवै हाथ ।
ननदिन हा लागी फिरै, सौत लाज सौ साथ ॥[2]

मुग्धा नायिका के लिए "लाज", प्रिय मिलन हेतु सौत की भाँति बाधक है । यहाँ "व्रीडा" मूल संचारी भाव का वर्णन है । कुछ अन्य दोहों में नायिका का मुख-वैवर्ण्य [3] तथा रंग-भवन में नायक को देखकर वापस लौट जाना[4], में भी व्रीडा संचारी भाव का वर्णन है ।

**असूया -**

(1) ललित लता सी लहलही, सौतैं लखि कुँभलाति ।
सो तन उपि कछु फूल सी, दिन दिन आवति जाति ॥[5]

(2) भुजगपति की गति धरै, मैं करति हौं धीर ।
मन उत सौ लागै हिये, सौतिन के हिय पीर ॥[6]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामधर सतसई दोहा संख्या- 139
(2) रामधर सतसई दोहा संख्या- 282
(3) रामधर सतसई दोहा संख्या- 527
(4) रामधर सतसई दोहा संख्या- 528
(5) रामधर सतसई दोहा संख्या- 110
(6) रामधर सतसई दोहा संख्या- 112

प्रथम दोहे में नायिका का सौन्दर्य एवं द्वितीय दोहे में नायिका के उपभोग के चिन्हों को देखकर, सपत्नियों की असूया वर्णित है ।

**गर्व-**

चतुर चलाए की चली, चित मैं चढ़ी चितचारि ।
रस बस करि राखौ पिया, और न भावै नारि ।।[1]

यहाँ प्रेम-गर्विता नायिका का "गर्व" अभिव्यक्त है ।

**आवेग -**

थर हरात दुरकी ठुरक, लगि लगि स्वास समीर ।
अकुलाति विपरीत रत, अधर रंगि वामे नीर ।।[2]

विपरीत रति में मध्या नायिका की अकुलाहट (मुग्धा) लक्षणा से लक्षित हो रही है ।

**श्रम -**

दोउ सोवत सेज पर, देखे छवि यौं देत ।
पाइक रति संग्राम के, मानौं परे अचेत ।।[3]

नायक नायिका की सुरतोपरान्त छवि में श्रम (थकान) का वर्णन है।

**स्वप्न -**

सपने में देखे पिय, चलन कहत है प्रात ।
अँसुवनि भीगी सेज सब, विह्वल ह्वै गये गात ।।[4]

यहाँ नायिका के स्वप्न का वर्णन है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामधर सतसई दोहा संख्या- 315
(2) - वही - 48
(3) - वही - 503
(4) - वही - 506

शंका -
=====

पिय हिय मनि प्रतिबिंब लखि, तिय हिय नहि परतीति ।

आलिंगन करतनि महा, उर उपजात है भीति ।।[1]

नवोढा नायिका, नायक के वक्ष पर (मालादि की) मणि में अपना ही प्रतिबिंब देखकर (नायक के हृदय में अन्य नायिका के होने से) शंकित हो रही है ।

स्मृति -
======

छूटी अलक तिय गात पर, रही ध्यान मम सोहि ।

खुली अधखुली पलक छवि, पल न बिसरत मोहि ।।[2]

यहाँ नायक की नायिका विषयक स्मृति का वर्णन है । इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं ।[3]

मति -
=====

जैसे हरि के भजन बिनु, घटै न घट के पाप।

तैसे पिय हिय बिनु लगे, मिटै न तन को ताप।।[4]

स्वीया नायिका का यह निश्चय कि जिस प्रकार हरि भजन बिना पाप नहीं घटता, उसी प्रकार "पिय" के हिय लगे बिना तन (उसका) का ताप नहीं घटता है, "मति" संचारी भाव का उदाहरण द्रष्टव्य है ।

राजधर ने प्रायः सभी शृंगाररसोचित संचारी भावों की वर्णना की है । उपर्युक्त उदाहरणों में प्रायः सर्वत्र विभाव, अनुभाव और संचारी भाव का योग दिखाकर स्थायी भाव की पुष्टि के द्वारा रस की सत्ता सिद्ध की जा सकती है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 122
(2) ,, ,, - 649
(3) ,, ,, - 537, 442, 217
(4) ,, ,, -

## विप्रलम्भ-श्रृंगार

जहाँ नायक-नायिका में प्रगाढ़ अनुराग होता है, किन्तु परस्पर मिलन नहीं हो पाता वहाँ विप्रलम्भ श्रृंगार होता है।[1]

"यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ (नायक नायिका के परस्परानुराग में मिलन नैराश्य ही विप्रलम्भ है।)

सम्भोगसुखास्वादलोभेन विशेषेण प्रलभ्यते आत्माऽनेनेति विप्रलम्भः[2]
व्यापकता एवं प्रभाव की दृष्टि से विप्रलम्भ श्रृंगार निश्चय ही श्रृंगार रस का अत्यधिक महत्वपूर्ण अंग है। यथा -

न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते॥[3]

अर्थात् बिना वियोग के संयोग श्रृंगार परिपुष्ट नहीं होता, कषायित वस्त्रादि पर ही अच्छा रंग चढ़ता है।

यह "विप्रलम्भ-श्रृंगार" भी चार प्रकार का होता है - (1) पूर्वराग विप्रलम्भ (2) मान विप्रलम्भ, (3) प्रवास विप्रलम्भ और (4) करुण विप्रलम्भ।[4]
इन श्रृंगार के भेदों के वर्णन में रीति कालीन कवियों ने विशेष रुचि प्रदर्शित की है।[5]

---

(1) साहित्य दर्पण- 3/187

(2) काव्यानुशासन 2/30

(3) साहित्य दर्पण- पृष्ठ 249

(4) साहित्य दर्पण- 3/187

(5) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग-6 डा0 नगेन्द्र पृष्ठ- 153

किन्तु प्रवास-जन्य वियोग की अपेक्षित गंभीरता रीति काव्यों में प्रायः नहीं मिलती । रीति के लक्षण ग्रंथों में प्रवत्स्यत्पतिका प्रोषित पतिका और आगत-पतिका ही ऐसी नायिकाएँ हैं जिनमें, प्रसंग में प्रवास जन्य वियोग का वर्णन किया जा सकता है । इनमें से प्रोषित-पतिका को प्रवास का गहरा क्लेश सहन करना पड़ता है । पर उसके क्लेश की गहराई को सामान्यतः उसके संताप और दौर्बल्य से मापा गया है, इसके अतिरिक्त सन्देश प्रेषण, पत्र लेखन चित्रलेखन आदि रूढ़ियों के भी इस प्रसंग में संकेत किया गया है ।[1] लक्षणकारों में अन्य विशेषता का अभाव है । शेष तीन भेदों में परम्परा का पालन किया गया है ।[2]

पूर्वराग-विप्रलम्भ -

"पूर्वराग" का अभिप्राय रूप सौन्दर्य आदि के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक नायिका की उस दशा से है, जो कि उनके समागम के पहले की हुआ करती है । रूप सौन्दर्यादि का श्रवण तो दूती बन्दी, सखि आदि के मुख से संभव है और दर्शन संभव है इन्द्रजाल में, चित्र में स्वप्न में अथवा साक्षात् ।[3]

पूर्वानुरागिनी, नायिकाएँ अवस्था की दृष्टि से प्रायः मुग्धा होती हैं । इस अवस्था में भावुकता का स्वाभाविक अतिरेक होता है । पूर्वानुराग में सामाजिक मर्यादाओं का अवरोध राग को और भी तीव्र बना देता है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग-6 सम्पादक डा० नगेन्द्र पृष्ठ- 154

(2) रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन डा० पुष्पलता पृष्ठ- 132

(3) साहित्य दर्पण - 3/188 और 189

## नायिकारब्ध पूर्वानुराग -

रामसहाय सतसई में पूर्वराग प्रायः प्रत्यक्ष दर्शन से ही वर्णित है ।

मोहन को मोहन गई, मोही आपहु जाइ ।
कहौ कौन धौं कहि सकै, ठगु ज्यौं जाति ठगाइ ।।[1]

(संभवतः सखी से नायक के विषय में सुनकर) नायिका "सोलह श्रृंगार करके" नायक को मोहित करने हेतु गई थी, किन्तु स्वयं ही उस पर मुग्ध हो गई --

यहाँ नायिका का पूर्वराग (दूती अथवा सखी से नायक का रूप सौन्दर्य आदि का श्रवण कर तो था ही) प्रत्यक्ष दर्शन से और प्रगाढ़ हो गया है -

(1) ओट जमावति मिस दही, धरति मथानि माँहि ।
छबि देखन कौं लाल की, छपी छपावै छाँहि ।।[2]

(2) मारत मग टारत सुमिन, हरि आवन के हेत ।
सीके बाँधति उरझो, मनु न होई दधि लेत ।।[3]

इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं ।[4]

## नायकारब्ध पूर्वानुराग -

जा दिन ते बाढ़े लखे, अधिके अधिके हेत ।
उर उरझी सुरझी नहीं, चितवन साथ सचेत ।।[5]

नायक अपने सखा से कहता है, जिस दिन से (नायिका की) साथ युक्त चितवन हृदय में उलझ कर रह गई, उसी दिन से प्रेम अधिकाधिक बढ़ता ही गया ।

---

(1) रामसहाय सतसई दोहा सं०- 475
(2) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 76
(3) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 75
(4) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 332, 280-281
(5) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 330

टरै न टारी चित चुभी, घूँघट पटहि टरहि लौटि।

प्यारी की प्यारी लखी, दुरकि विलोकनि मोहि ।।[1]

प्यारी (नायिका) की, घूँघट पट से झुककर देखने की अदा, नायक के हृदय पटल से हटाये नहीं हटती है ।

कहीं नायक भौंरे की भाँति नायिका के घर के चक्कर काटता है । (नायिका की) सखी नायक के पूर्वानुराग का वर्णन नायिका से करती है -

ए पदमनि तुम रूप लखि, फिर आवत फिर जात ।

रस के चसके लाल अब, भौंर भए मँडरात ।।[2]

इस प्रकार राजधर सतसई में नायिकारब्ध एवं नायकारब्ध पूर्वानुराग का सुन्दर वर्णन है । पूर्वानुराग प्रायः दर्शन जन्य है जिसमें अभिलाषा,[3] उद्वेग,[4] स्मृति,[5] गुण कथन[6] आदि पूर्वानुराग में नायिका[7] की काम दशायें अन्तर्निहित है ।

## मानज-विप्रलम्भ

"मान" का अभिप्राय है कोप (प्रणय-कोप) । इसके दो भेद हैं - (1) प्रणयसमुद्भव मान (प्रणयमान) और ईर्ष्यासमुद्भव मान (ईर्ष्या मान) ।

(1) प्रणयमान का तात्पर्य है अकारण कोप । प्रेम की चाल सदा वक्र हुआ करती है । प्रेमी प्रेमिका के हृदय प्रेम से भरे रहने पर भी, उनका एक दूसरे पर अकारण कोप स्वाभाविक है । इसलिए "प्रणय मान भी (संयोग में रतिभाव की अभिव्यंजना का) एक विशेष ही विप्रलम्भ प्रकार है । यहाँ कारिका में "द्वयो" का अभिप्राय नायक और नायिका दोनों से है क्योंकि "प्रणयमान" एक का नहीं अपितु दोनों का वर्णित किया जाता है ।[8]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा सं0-330
(2) - वही -512
(3) - वही -75, 76, 330
(4) - वही -332
(5) - वही - 280, 330
(6) - वही - 280
(7) सा0द0 3/191, 192
(8) सा0द0 3/198

## राजधर सतसई में प्रणयमान -

राजधर ने प्रायः "सखी द्वारा मानिनी नायिका का मानभंग करने का प्रयत्न", वर्णन किया है ।

बिनु बोले क्यों मिटत है आली मन को भेद ।
हमहू जान्यों जात नाहिं, अरु नाहीं को भेद ।।[1]

मानिनी नायिका का मान भंग करने हेतु सखी समझाती है, "हे आली ! (नायक से) तेरा "नहीं" कहने का ढंग हमें समझ में नहीं आता । बिना बोले कहीं मन का भेद मिटता है ? (अर्थात् उसे नायक से बोलना चाहिए ।

यहाँ नायिका का अकारण मान होने से प्रणयमान है ।

नाह तिहारी प्रीति करि, रीति जगत की खोई ।
बार बार के रूसने, क्यों न सुहागिन होई ।।[2]

नायिका के बार बार (अकारण) रूठने से उसको सौभाग्यवती कहा गया है (क्योंकि जब वह बार-बार रूठेगी तो नायक बार-बार मनायेगा) यहाँ प्रणय मान का वर्णन है ।

कभी कभी तो नायिका (नायक से मनुहार करवाने के लोभ वश) लगभग सारी रात्रि रूठी रह कर, बहुत देर बाद हुलस, हँस देती है --

निसि बीतति सब विनय तें, जौन मनाई लेति ।
पहिले दुख दै नाह को, पाछे के सुख देति ।।[3]

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 445

(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 35

(3) राजधर सतसई दोहा संख्या- 509

**(2) ईर्ष्या मान -**

"ईर्ष्या मान" का अभिप्राय है किसी दूसरी प्रेमिका पर, अपने प्रेमी की आसक्ति के देखने, सुनने अथवा अनुमान करने के कारण, नायिका के प्रेम-कोप से यहाँ नायक की अन्य प्रेमिकासक्ति का जो अनुमान है वह तीन प्रकार का है —

(1) उत्स्वप्नायित जन्य , (2) भोगांकजन्य

(3) गोत्र स्खलनजन्य ।[1]

राजधर सतसई में मात्र "भोगांक जन्य" ईर्ष्यामान का ही वर्णन प्राप्त होता है, जो कि खण्डिता नायिका की व्यंग्योक्तियों में लक्षित है—

भली भाँति भूषित भई, टिकुली सौ सुख देन ।
ज्यौं काम डरपै नहीं, भालन धर त्रिनैन ।।[2]

खण्डिता नायिका, नायक के माथे पर टिकुली (भोगांक चिन्ह) देख कर व्यंग्य करती है," (आपके माथे पर शोभायमान) यह टिकुली मुझे (अत्यन्त) सुख (अथवा से दुख) देने वाली है । आप तो (साक्षात्) त्रिनेत्रधारी शिव दिख रहे हैं । (आश्चर्य है फिर भी कामदेव डरता नहीं ।) इसी प्रकार के अन्य उदाहरण प्रस्तुत शोध प्रबंध के शीर्षक "खण्डिता की व्यंग्योक्तियाँ" के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं ।

**मान भंग के उपाय -**

मान भंग के 6 उपाय हैं—

(1) साम (2) भेद (3) दान (4) नति (5) उपेक्षा (6) रसान्तर[3]

---

(1) साहित्य दर्पण- 3/199 एवं 3/200

(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 201

(3) सा0द0 3/201, 202, 203

राजधर सतसई में "भेद एवं नति" मान भंग उपायों का वर्णन है कुछ दोहों में[1] सखियों द्वारा नायिका को समझाया जाना "भेद मान भंग के उदाहरण हैं एवं नायक का पैरों पर गिरना "नति" मान भंग है । यथा -

हा हा करि हारी सखी, हरि हारे परिपाइ ।
सेरी मेरी बीर पै, सठ छुटैय न जाइ ।।[2]
जिनके बसु पाउनि परे, परम पुरिषु पहिचानि ।
ते राधे तुव मानु लखि, परे पाइ तुव आनि ।।[3]

यहाँ इन दोनों दोहों में नायिका का सखियों द्वारा समझाने से "भेद" एवं नायक द्वारा ही नायिका के पैरों पर गिरने से "नति" मान भंग वर्णन है ।

ज्ञातव्य है कि "अपर स्त्री संग जन्या मान गुरु होता है जिसके लिए नायक नायिका के चरणों पर गिरे या गहने दे इसे ही "प्रणामान्तो मानः" कहा गया है ।[4]

## (3) प्रवास विप्रलम्भ -

"प्रवास" का अभिप्राय है- कार्यवश, शापवश, अथवा संभ्रमवश नायक का देशान्तर गमन । (और इसके कारण जो वियोग है उसे प्रवास-विप्रलम्भ कहा जाता है ।[5]

"कार्यज" (कार्यवश होने वाला) प्रवास भी काल भेद से तीन प्रकार का है -

(1) भावी, (2) वर्तमान, (3) भूत[6]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 323, 343, 436, 445

(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 342

(3) राजधर सतसई दोहा संख्या- 481

(4) रसमंजरी पृष्ठ- 130, 131

(5) [redacted] सा०द०- 3/304

(6) सा०द०- 3/208

204

**भावी-प्रवास -**

जिस समय नायक विदेश जाने के लिए उद्यत हो रहा हो ।

उदाहरणार्थ -

पनी बिना छूटे सबै, भोजन अरु पय पान ।
नींद भई है पाहुनी, पिय पयान सुनि कान ।।[1]

यहाँ नायक के प्रस्थान की खबर सुनकर प्रवत्स्यत्पतिका नायिका ने अन्न जल ग्रहण करना बन्द कर दिया है और उसकी नींद भी पाहुनी हो गयी है ।

**वर्तमान-प्रवास -**

प्रोषित पतिका नायिका का प्रवास॥वर्तमान प्रवास के अन्तर्गत॥ आता है, जिसका वर्णन हम "विरह की काम दशाएँ" शीर्षक के अन्तर्गत आगे करेंगे ।

**भूत- प्रवास -**

जब नायक लौटकर घर आया ही हो अर्थात् आगत पतिका का प्रवास भूत प्रवास के अन्तर्गत आता है । दीर्घकालीन प्रवासजन्य विरह वेदना के उपरांत प्रिय का आगमन आगत पतिका के लिए अत्यन्त हर्ष-प्रद होता है --

§1§ गई दीनता दूर ह्वै, दीपति दुगुन दिखाति ।
अंगन पिय आये लखे, अंगन फूली माति ।।[2]

§2§ पिय आये लखि तिय हिये, हुति हरि विधि अधिकाइ ।
नेहु दयै तै दीप की, दीपति ज्यौं दरसाइ ।।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

§1§ रामधर सतसई दोहा संख्या- 403
§2§ रामधर सतसई दोहा संख्या- 390
§3§ रामधर सतसई दोहा संख्या- 407

## विरह की काम दशायें

संस्कृत के आचार्य भरतमुनि,[1] धनंजय[2] एवं भानुदत्त[3] ने नायिका के प्रवास विप्रलम्भ की दस कामदशायें मानी हैं — (1) अभिलाषा, (2) चिन्ता (3) स्मृति (4) गुण कथन (5) उद्वेग (6) प्रलाप (7) उन्माद (8) व्याधि (9) जड़ता (10) मरण ।

जबकि साहित्य दर्पण में इन्हें पूर्वराग विप्रलम्भ के अन्तर्गत रखा है ।[4] तथा विप्रलम्भ प्रवास के अन्तर्गत नायिका की 11 काम दशाओं का उल्लेख किया है - (1) अंगों का असौष्ठव (2) सन्ताप (3) पाण्डुता (4) दुर्बलता (5) अरुचि (6) अधीरता (7) अनालम्बनता (8) तन्मयता (9) उन्माद (10) मूर्च्छा (11) मरण ।[5]

सम्भवतः साहित्य दर्पण का मत परवर्ती आचार्यों को मान्य नहीं हुआ । अतः हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों ने पूर्वोल्लिखित काम की दस दशाओं को गृहीत किया ।

इनमें से प्रथम पाँच का सम्बन्ध आश्रय की मानसिक स्थिति के साथ रहता है जब कि शेष पाँच मुख्यतः नायिका की शारीरिक स्थिति का द्योतन करतीं हैं । फिर भी, इन दसों काम, दशाओं का एक दूसरी से किसी प्रकार पृथक उद्देश्य नहीं रहता सभी एक के बाद दूसरी आकार आश्रय के विरह की उत्कटता प्रकट करतीं हैं । राजधर सतसई में इन्हीं दस काम दशाओं का वर्णन किया गया है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) नाट्य शास्त्र- 24/163-184
(2) दश रूपक- 4/51-54
(3) रस मंजरी- पृष्ठ- 328
(4) साहित्य दर्पण- 3/188-192
(5) साहित्य दर्पण- 3/205-207

## — राजधर सतसई में विरह की काम दशाएँ —

**(1) अभिलाषा –**

वियोगावस्था में नायक-नायिका के परस्पर मिलने की इच्छा को अभिलाषा कहते हैं –

क्यों हरिहर सखि निरखि बन, फूले लाल तमाल ।
माधव नहिं आए जदपि, आयौ माधव काल ॥[1]

प्रोषित पतिका नायिका (राधा) कृष्ण की प्रतीक्षा में रत है । वह कहती है, "माधव काल तो आ गया लेकिन माधव नहीं आया" । यहाँ नायिका की नायक से मिलने की अभिलाषा व्यक्त हुई है ।

इसी प्रकार नायिका का (नायक की प्रतीक्षा में) दिन भर मार्ग देखना,[2] यह कहना कि जब नायक ही धन्वन्तरि होकर आए तभी अंग ताप मिटेगा[3] आदि[4] में अभिलाषा दशा की ही व्यंजना है ।

**(2) चिन्ता –**

प्रिय प्राप्ति अथवा चित्त-शान्ति-साधन विचार को चिन्ता कहते हैं । यथा —

किहि कारन आए नहीं, कहि विचार तु श्याम ।
कैसे के निसि बीत है, बैठे सूने धाम ॥[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 55।
(2) – वही – 418
(3) – वही – 25
(4) – वही – 154, 191, 333, 599
(5) – वही – 427

"नायक किस कारण नहीं आया" नायिका, नायक की प्रतीक्षा में चिन्ताकुल होकर अपनी सखी से कह रही है, "इस सूने घर में बैठे-बैठे [बिना नायक के] रात्रि कैसे व्यतीत होगी ?"

[3] स्मृति -

वियोग अवस्था में प्रिय के संयोगकाल की पिछली बातों, चेष्टाओं और समागम सुखों की याद करने को "स्मृति" कहते हैं—

ससि सुतार कर घंट तन, सीतल अधिक समीर ।
आवति पिय परिरंभ सुधि, छोड़ति मानिनि धीर ।।[1]

नायिका "परंभ" की स्मृति में अधीर हो रही है ।

[4] गुण-कथन -

रीतिकाल के कवियों का गुणों की ओर ध्यान नहीं गया । अतः सतसइयों में केवल सौन्दर्य कथन अंशतः वर्णित ही रहा[2]। यथा-

बंक भौंह करि कुटिल दृग, मैंलुक बैन बनाइ ।
गाई लिये अबही गयो, फेरी हेरी जाइ ।।[3]

पूर्वानुरागिनी नायिका अपनी सखी से नायक के सौन्दर्य का कथन कर रही है ।

[5] उद्वेग -

प्रिय वियोग से व्याकुल होकर किसी विषय में चित्त न लगने का नाम "उद्वेग" है ।

निसि बीते उड़गन गिनत, चौहु निहारति छाँह ।
कल न परत पल एक हू, सोचति है चितमाँह ।।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

[1] राजधर सतसई दोहा संख्या- 635
[2] रीतिकालीन श्रृंगार सतसइयों का तुल0अध्ययन- डा0 पुष्पलता पृष्ठ- 138
[3] राजधर सतसई दोहा संख्या- 300
[4] - वही - 70
[5]

नायिका उद्वेग की स्थिति में रात्रि में तारे गिनती है और दिन में राह निहारती है। इसी प्रकार एक क्षण भी कहीं कुछ भी अच्छा न लगना[1] बेचैनी से व्याकुलतः घड़ी-घड़ी आना जाना[2] उद्वेग के उदाहरण हैं।

**(6) व्याधि -**

वियोग व्यथा से उत्पन्न संताप के कारण शरीर के रोग ग्रस्त, पाण्डु अथवा कृश हो जाने को व्याधि कहते हैं —

सब तन सूख्यो विरह यह, रही सनक है श्यास ।
एक अधार जियु जियतु है, अवधि धाँसि की आस ।।[3]

प्रोषित पतिका नायिका का तन सूख गया है (कृशता)। अन्तःताप को कई[4] दोहों में देखा जा सकता है।

**(7) प्रलाप -**

वियोग से अत्यधिक व्यथित होकर प्रिय की अनुपस्थिति में भी उसे उपस्थित मानकर असंगत किंवा निरर्थक वार्तालाप एवं चेष्टा करने को "प्रलाप" कहते हैं —

तै बेहरि परहूँ करति, मैं बरजति यह आगि ।
सूखे तन पर विरह की, आगि लगै जनि आगि ।।[5]

नायिका अपनी सखी को (पंखा) की हवा करने का वर्जन करती है। वह कहती है कि कहीं सूखे तन में विरह की अग्नि न लग जाये। यहाँ नायिका का निरर्थक वार्तालाप ही करना प्रलाप दशा है।

---

(1) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 370
(2) - वही - 372
(3) - वही - 89
(4) - वही - 24, 25, 39, आदि
(5) - वही - 119

## (8) उन्माद -

वियोग जनित व्यथा के कारण बुद्धि विपर्यय हो जाने से फिरती, मारा वृथा व्यापार करने, जड़ चेतन विवेक रहित होने और व्यर्थ हँसने रोने आदि को "उन्माद" कहते हैं। यथा—

चितै रहति हूँ चकित सी, फिरै बावरि है रात।
निडर भई डोलति भ्रमु, नेक न कहूँ डरात ।।[1]

नायिका की बुद्धि विपर्यय हो जाने से (चितै रहत हूँ चकित सी) होकर रात्रि में (पागलों की भाँति) डोलती फिरती है।

यहाँ नायिका की उन्माद-दशा है।

## (9) जड़ता -

वियोग जनित दुःखातिरेक के कारण शरीर के स्तब्ध हो जाने का नाम जड़ता है। इसमें व्यक्ति सुध-बुध भूलकर निस्तब्ध और निश्चेष्ट हो जाता है। अंगों तथा मन के चेष्टा-शून्य होने और इन्द्रियों की गति के अवरोध को जड़ता कहते हैं। यथा—

चित्र पुतरिकन मिलि रही, पिय आगमु दिय जानि।
उड़ती चीर न स्वास लगि, क्यों परती पहिचानि ।।[2]

नायिका बिल्कुल चित्रवत् (जड़) बन रही थी। यदि उसकी स्वास लगने से उसका "चीर" नहीं उड़ता तो वह नहीं पहिचानी जा सकती थी।

यहाँ नायिका की "जड़ता-नाम दशा" का वर्णन है।

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 376

(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 72

**(10) मरण-**

प्राण परित्याग का नाम मरण है । परन्तु साहित्य में वियोगावस्था जनित नैराश्य की पराकाष्ठा को ही मरण कहते हैं । इसलिए कविगण मरण को स्पष्ट वर्णन न करके उसके स्थान पर मूर्च्छा, अथवा मृत व्यक्ति के सुयश, वीरता आदि गुणों का वर्णन करते हैं ।

राजधर ने नायिका की मूर्च्छा का वर्णन निम्न दोहों में किया है --

(1) भारी विरहिनि विरह तप, परी अचेतन धाम ।
ऐसे कोउ करत है, काम करै जे काम ।।[1]

(2) घर घरात घरतीनि के, प्रकट दिखाई देत ।
नैकहू धरती धीर नहिं, धरती परी अचेत ।।[2]

इन दोहों में नायिका की मूर्च्छावस्था का वर्णन करके विरह की "मरण" काम दशा का निरूपण किया गया है ।

इसके अतिरिक्त रीतिकाल के रूढ़ि ग्रस्त वर्णन जैसे- स्वप्न में प्रिय मिलन,[3] पत्र एवं देवर[4], दूत द्वारा संदेश प्रेषण आदि के वर्णन भी राजधर सतसई में मिल जाते हैं ।

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 302
(2) - वही - 303
(3) - वही - 186
(4) - वही - 154
(5) - वही - 333

## ऊहात्मक वर्णन -

राजधर सतसई में विरहवर्णन प्रायः परिपाटीग्रस्त एवं स्वाभाविक रूप से किया गया है, किन्तु युगीन वातावरण के प्रभाव के कारण राजधर के कतिपय दोहे अनुभूति संवलित होने की अपेक्षा चमत्कारपूर्ण अधिक हैं। जिनमें हृदय की अपेक्षा राज पर बुद्धि की ओर अधिक प्रवृत्त दिखाई देते हैं। यथा "विरह को समुद्र के रूप में वर्णित किया गया है जिसमें समस्त संसार डूब गया,"[1] कहीं उसे तरंगिणी के रूप में चित्रित किया गया है, जिसमें तीव्र प्रवाह के कारण पैर तो टिकता नहीं और तैर कर कोई पार नहीं कर सकता है।[2] नायिका का बार बार अपने "उर" पर उसीर एवं घनसार लेपन इस हेतु करना कि हृदय में स्थित प्रिय ~~सिहर~~ विरह की अग्नि से दग्ध न पाये,[3] अनल ताप से पीड़ित नायिका, उपशमन हेतु "कुच-शंभु" को हजारों घट जल अश्रु के व्याज से चढ़ा रही है।[4]

नायिका का अपनी सखी से यह कहना है कि तू व्यर्थ ही पंखा से हवा करती है कहीं तुझे बदन में विरह की आग और न फैल जाये।[5] कभी नायिका मुखों के साथ श्वास इस हेतु बन्द कर रही है, कि उसका सूक्ष्म शरीर हवा से उड़ न जाय। यह कृशता का वर्णन ऊहात्मक एवं हास्यास्पद हो गया है।[6]

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 186
(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 117
(3) राजधर सतसई दोहा संख्या- 402
(4) राजधर सतसई दोहा संख्या- 24
(5) राजधर सतसई दोहा संख्या- 119
(6) राजधर सतसई दोहा संख्या- 188

निष्कर्ष :-

(1) राजधर सतसई संयोग श्रृंगार प्रधान है ।

(2) राजधर सतसई में विभावों, अनुभावों एवं संचारी भावों की रमणीय वर्णना की गई है ।

(3) वस्तुतः शास्त्रीय दृष्टि से नायिका ही श्रृंगार रस की आलम्बन ठहरती है, अतः राजधर सतसई में (युवक - विभाव की अपेक्षा) युवति-विभाव एवं (नायिका का) देह विभाव का वर्णन ही अधिक किया गया है ।

(4) राजधर को आंगिक और सात्विक अनुभावों में विशेष सफलता प्राप्त हुई । आहार्य अनुभाव वर्णन मात्रा की दृष्टि से अधिक है, किन्तु साधारण है । वाचिक अनु-भाव की ओर राजधर का ध्यान अत्यल्प है ।

(5) आहार्य, कायिक, सात्विक एवं वाचिक अनुभावों की ओर कवि की क्रमशः रुचि दिखाई पड़ती है ।

(6) सात्विक अनुभावों में दर्शन-जन्य-स्तम्भ, स्वर भंग, वेपथु प्रलय, स्पर्श जन्य-स्वेद एवं रोमांच तथा स्मृति-जन्य अश्रु वर्णित है । प्रायः सात्विक अनुभाव दर्शन जन्य ही है ।

(7) श्रृंगार रस के प्रायः सभी संचारी भावों का यथोचित वर्णन है ।

(8) काम शास्त्र के कुछ शब्द- नखच्छेद, दन्तक्षत, विपरीत रति आदि— कुछ दोहों में आये हैं । जिनसे ज्ञात होता है कि राजधर को कामशास्त्र का सामान्य ज्ञान ही था । राजधर का झुकाव काम शास्त्र की ओर नहीं, अपितु काम क्रीड़ा की वर्णना में ही है ।

(9) विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन यद्यपि परिपाटी ग्रस्त है, तथापि उसमें स्वाभाविकता एवं मार्मिकता का अभाव नहीं है । चमत्कार प्रदर्शन की ओर राजधर का झुकाव अत्यल्प है ।

(10) पूर्वराग में रायधर का मन खूब रमा है । साहित्य दर्पण में वर्णित पूर्वानुरागिनी नायिका की 10 काम दशाओं में 5 ही काम दशाओं का वर्णन मिलता है- अभिलाषा, उद्वेग स्मृति एवं गुण कथन । अतः शास्त्रीय दृष्टि से साधारण है ।

(11) प्रणय मानु में मान "मानिनी" नायिका की सखियों द्वारा उसका मान भंग का प्रयत्न ही वर्णित किया है ।

(12) ईर्ष्यामान में खण्डिता की व्यंग्योक्तियों द्वारा नायिका का मान वर्णन है ।

(13) अतएव मान विप्रलम्भ में रायधर को शास्त्रीय दृष्टि से सफलता नहीं मिली ।

(14) प्रवास विप्रलम्भ में भावी प्रवास का मार्मिक वर्णन है ।

(15) "भूत-प्रवास-" साधारण है ।

(16) "वर्तमान प्रवास" प्रायः ऋतु वर्णन के प्रसंग में ही हुआ है, जो कि परिपाटी ग्रस्त है । साहित्य दर्पण के अनुसार प्रवास जन्य 11 काम दशाओं में से 7 का वर्णन है ।

(17) संस्कृत एवं हिन्दी आचार्यों द्वारा निरूपित विरह की 10 काम दशाओं का रायधर ने वर्णन किया है ।

([illegible]) अतः शास्त्रीय दृष्टि से इसे सफल कहेंगे ।

(18) इस प्रकार काव्य शास्त्रीय दृष्टि से रायधर को शृंगार वर्णन में पर्याप्त साफल्य प्राप्त हुआ है ।

:-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-:

## राजधर सतसई में अन्य रसों का स्थान

:-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-:

### हास्य रस -

"हास" स्थायी भाव के काव्यात्मक अभिव्यंजन को "हास्य" रस कहा जाता करता है, इसका आविर्भाव आलंबन विभाव की आकार विकृति, वाग्विकृति, वेष विकृति, चेष्टा विकृति किंवा अन्यान्य प्रकार की विकृतियों के वर्णन अथवा अभिनयन से हुआ करता है ।[1] इसमें प्रायः आलम्बन का वर्णन यथेष्ट होता है अनुभावादि की योजना उतनी आवश्यक नहीं होती है ।

राजधर सतसई में शुद्ध हास्य रस के व्यंजक दोहों का अभाव है । इसका कारण या तो उनकी स्वतः की प्रकृति या फिर आश्रयदाता राजा उद्योत सिंह का गंभीर स्वभाव कहा जा सकता है । कविवर बिहारी के अनेक दोहे हास्य का पुट लिए हुए मिलते हैं, पर इनका एक ही दोहा उपलब्ध है ।यथा—

खांड़ चबावत साधु लखि, सब बहिरिन को गोलु ।
पूछत फेरहि फेर यह, कैसो मीठो होतु ।।[2]

यहाँ बहिरे लोग आलम्बन विभाव हैं । साधुओं को खांड़ चबाकर देखकर उनका यह पूछना कि खांड़ कैसा मीठा होता है — उद्दीपन विभाव है ।

यहाँ आलम्बन की मूर्खता पूर्ण बात (वाग्विकृति) की वर्णना द्वारा हास्य रस की अभिव्यक्ति की गई है । अतः यह "उत्तम प्रकृतिक स्मित हास्य" है ।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) साहित्य दर्पण 3/214

(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 80

(3) साहित्य दर्पण 3/217

शान्त रस -

निर्वेद या "शम" रूप स्थायी भाव का जब सहृदय आस्वाद लेते हैं तब शान्त रस निष्पन्न होता है । इसके आश्रय सात्त्विक प्रकृति के व्यक्ति होते हैं । विषयों की अनित्यता किंवा दुःखमयता आदि के कारण समस्त सांसारिक विषयों की निःसारता का ज्ञान अथवा परमात्म स्वरूप का साक्षात् ज्ञान ही इसका आलम्बन विभाव है । इसके उद्दीपन हैं- पवित्र आश्रम भगवान की लीला भूमियाँ, तीर्थ स्थान, रम्य कानन, साधु-सन्तों के संग आदि-आदि । रोमांच आदि इसके अनुभाव हैं । और इसके व्यभिचारी भाव हैं- निर्वेद, हर्ष, स्मृति, मति, जीव दया आदि ।[1]

यथा -

कहो असार संसार में, सार एक ही बात ।
मनु सुमिरे पर सुख पावत, प्रभु परमारथ जात ।।[2]

यहाँ धन आदि सांसारिक विषयों की निःसारता आलम्बन विभाव है । उत्तमप्रकृति आश्रय कवि स्वयं आश्रय है । निर्वेद एवं मति संचारी भाव है ।
यहाँ शान्त रस की अभिव्यक्ति आलम्बन एवं संचारी भाव वर्णन द्वारा हुई है ।

दूसरा उदाहरण देखिए-

देह धरे को धर्म यह, देखो सब संसार ।
विपति भोगई नृपति ह्वै, दशरथ राज कुमार ।।[3]

---

(1) साहित्य दर्पण- 3/245, 246, 247, 248
(2) राजधर सतसई दोहा संख्या - 392
(3) राजधर सतसई दोहा संख्या - 393

दुख भोगना संसार का (अनिवार्य) धर्म है, (यहाँ तक कि साक्षात) भगवान रामचन्द्र जी को भी दुख भोगना पड़ा ।

यहाँ संसार की दुःखमयता का वर्णन आलम्बन विभाव आश्रय स्वयं कवि । निर्वेद एवं मति व्यभिचारी भाव आक्षिप्त है ।

यहाँ आलम्बन की वर्णना से ही शान्त रस की अभिव्यक्ति हुई है ।

**वत्सल रस -**

(काव्याचार्यों ने एक और भी रस माना है, वह है (वत्सल रस) इसे इसलिए माना गया है क्योंकि उसका चमत्कार अन्य रसों के चमत्कार से अतिरिक्त प्रकार का ही आनन्द है । इसका स्थायी भाव बाल-रति है । आलम्बन (वात्सल्य स्नेह के भाजन) पुत्रादि हैं । यहाँ पुत्रादि की चेष्टाओं में उनकी विद्या, शूरता, दया आदि-आदि उद्दीपन विभाव हैं । आलिंगन, अंगस्पर्श, शिरश्चुम्बन, सस्नेह वीक्षण, रोमांच आनन्दाश्रु आदि-आदि इसके अनुभाव हैं। इसके व्यभिचारी भावों में अनिष्टाशंका, हर्ष-गर्व आदि-आदि का समावेश है ।[1] इसके उदाहरणार्थ—

आँखें मींड़त जात कर, चितवत माखन ओर ।
देखत श्री गोपाल छवि, मंद जसोदा भोर ।।[2]

यहाँ बाल कृष्ण आलम्बन विभाव है । उनका "आँखें मींड़ते हुए (कनखियों से) माखन की ओर देखने (ताकि उनकी नियत कोई समझ न पाये) की-छवि-चेष्टा उद्दीपन विभाव है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) साहित्य दर्पण- 3/251, 252, 253

(2) रामधर सतसई दोहा संख्या- 265

(3)

श्री नंद जी एवं माता यशोदा का स्नेह-वीक्षण अनुभाव है। यहाँ हर्ष-संचारी आक्षिप्त हो जाता है। अतः वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति हुई है —।

> चकित चित इत उत चितै, गहत मटुकिया धाइ।
> माखनु लेत उताइले, मति जसुमति सतराइ ॥[1]

यहाँ बालक कृष्ण आलम्बन विभाव है। उनकी बाल-सुलभ क्रीड़ा- चकित होकर इधर उधर देखना, दौड़कर मटकिया पकड़ना एवं उसमें से मक्खन उठाना उद्दीपन विभाव है। माता यशोदा की मति सतराना ।विचित्र प्रकार की गति को प्राप्त होना। जड़ता सात्विक अनुभाव है यहाँ भी हर्ष संचारी भाव आक्षिप्त हो जाता है। एक उदाहरण और देखिए -

> रतन खंभ प्रतिबिंब लखि, और सखा भ्रम साधु।
> कहत सु माखन चोर हरि, हम तुम आधे आधु ॥[2]

रत्न खंभ में अपना ही प्रतिबिंब देखकर ।उसे अपना दूसरा सखा समझकर। माखन चोर हरि ।कृष्ण। का यह कहना कि "आधा-आधा" ।माखन। बाँट लो ।जैसे चोर अपने पकड़ने वाले व्यक्ति को।दाम "नीति" से। अपने पक्ष में मिलाने का प्रयत्न करता है में विभाव वर्णना द्वारा वत्सल्य रस की अभिव्यक्ति है।

इस प्रकार श्रृंगार रस के अतिरिक्त वात्सल्य, शान्त, हास्य रस के फुट फुट दोहे प्राप्त होते हैं।

निष्कर्षतः रामधर सतसई में अन्य रसों का स्थान नगण्यप्राय है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। रामधर सतसई दोहा संख्या- 28

।2। रामधर सतसई दोहा संख्या- 29

श्री नंद जी एवं माता यशोदा का स्नेह-वीक्षण अनुभाव है। यहाँ हर्ष-संचारी आक्षिप्त हो जाता है। अतः वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति हुई है --।

चकित चित इत उत चितै, गहत मटुकिया धाइ।
माखनु लेत उतावले, मति जसुमति ललचाइ ॥[1]

यहाँ बालक कृष्ण आलम्बन विभाव है। उनकी बाल-सुलभ क्रीड़ा- चकित होकर इधर उधर देखना, दौड़कर मटकिया पकड़ना एवं उसमें से मक्खन उठाना उद्दीपन विभाव है। माता यशोदा की मति ललचाना (विचित्र प्रकार की गति को प्राप्त होना) जड़ता सात्विक अनुभाव है यहाँ भी हर्ष संचारी भाव आक्षिप्त हो जाता है। एक उदाहरण और देखिए -

रतन खंभ प्रतिबिंब लखि, और सखा भ्रम लाय।
कहत सु माखन चोर हरि, हम तुम आधे आय ॥[2]

रत्न खंभ में अपना ही प्रतिबिंब देखकर (उसे अपना दूसरा सखा समझकर) माखन चोर हरि (कृष्ण) का यह कहना कि "आधा-आधा" (माखन) बाँट लो (जैसे चोर अपने पकड़ने वाले व्यक्ति को (दाम "नीति" से) अपने पक्ष में मिलाने का प्रयत्न करता है में विभाव वर्णना द्वारा वत्सल्य रस की अभिव्यक्ति है।

इस प्रकार शृंगार रस के अतिरिक्त वात्सल्य, शान्त, हास्य रस के छुट पुट दोहे प्राप्त होते हैं।

निष्कर्षतः राजधर सतसई में अन्य रसों का स्थान नगण्यप्राय है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 28

(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 29

## १- रामसर सतसई में भक्ति -:

### रीतिकालीन भक्ति भावना -

पूर्व मध्यकाल के समाप्त होते होते धार्मिक सम्प्रदाय श्रृंगार परक होने लगे थे । भक्ति कालीन माधुर्य भक्ति की उदात्त भावनाएँ और इनके सूक्ष्म तत्व इस काल तक आते आते पूर्ण रूप से तिरोहित हो रहे थे । लीला पुरुष श्री कृष्ण के प्रति माधुर्य भक्ति अब राधा कृष्ण के स्थूल मांसल श्रृंगार का रूप धारण कर चुकी थी । श्री कृष्ण भक्ति परम्परा के अनेक सम्प्रदायों में माधुर्य भक्ति की स्निग्ध मधुर उपासना के नाम पर स्थूल श्रृंगार परक उपासना ही शेष रह गयी थी । ---- भक्ति में से भाव तत्व पूर्णरूप से लुप्त हो गया था, केवल स्थूल काम चेष्टाओं की अभिव्यक्ति में ही भक्ति परक, ग्रंथों की अभिव्यक्ति की जाने लगी । पुण्य प्रेम के स्थान पर कामुक लोलुपता धार्मिक साहित्य और धर्म के ठेकेदार महन्तों के जीवन में भी व्याप्त हो गयी ।[1]

डा० नगेन्द्र के शब्दों में "यह भक्ति भी उनकी श्रृंगारिकता का अंग थी । जीवन की अतिशय रसिकता से जब लोग घबड़ा उठते होंगे तो राधा कृष्ण का यही अनुराग उनके धर्म-भीरु मन के आश्वासन देता होगा । इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक ओर सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरण भूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी । तभी तो वे किसी न किसी तरह उसका आँचल पकड़े हुए थे । रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति भावना से हीन नहीं है -- हो ही नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उनके लिए मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी । भौतिक रस की उपासना करते हुए भी उनके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास पृष्ठ- 14, सं० डा० नगेन्द्र

नहीं था कि भक्ति में अनास्था प्रकट करते, या उसका सैद्धान्तिक निषेध करते । इसीलिए रीतिकाल के सामाजिक जीवन और काव्य में भक्ति का आभास अनिवार्यतः वर्तमान है और नायक नायिका के लिए "हरि और राधिका" शब्दों का प्रयोग किया गया है ।[1]

## रीतिकालीन सतसइयों की भक्ति भावना

"रीतिकालीन सतसईकार केवल कवि ही थे, इसलिए उनके हृदय में जब जैसा भाव उद्बुद्ध होता था उसे व्यक्त कर दिया करते थे । वे तो सामान्य व्यक्ति के तरह मतमतान्तर के झगड़े में न पड़कर सभी देवी-देवताओं और अवतारों को मान्यता देते थे और उन्हें भगवान का स्वरूप समझते थे । वास्तविक बात यह थी कि राम और कृष्ण में वे लोग कोई भेद नहीं समझते थे । भगवान की एक सामान्य भावना लेकर ही वे अपनी उक्तियाँ कहा करते थे । —[2] सतसईकारों के भक्ति विषयक उद्गारों से ऐसा ज्ञात होता है कि सच्चे हृदय से निकली हुई भक्ति भाव पूर्ण उक्तियाँ उनकी रचनाओं में अवलोकनीय है । इनका अभिप्राय भक्ति भाव विषयक उक्तियों में किसी सम्प्रदाय विशेष का मण्डन न होकर सामान्य भावना का ही प्रस्फुटन हुआ है । अतः इनकी भक्ति सामान्य भावों से ओत प्रोत भक्ति भावना को प्रस्तुत करती है ।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रीतिकाव्य की भूमिका, डा० नगेन्द्र पृष्ठ- 187

(2) रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन- डा० पुष्पलता पृष्ठ- 149

(3) [illegible] --- वही --- पृष्ठ- 153

## राजधर सतसई में भक्ति भावना

उपर्युक्त वर्णित रीतिकालीन सतसईकारों की विशेषतायें राजधर पर भी घटित होती हैं ।

राजधर सतसई के आरम्भ में बुद्धि और विवेक के प्रतीक देवता गणपति तथा काव्य एवं कला की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की वंदना की गई है —

(1) गनपति पद नख चंद की, चारु चंद्रिका चित्र ।
बुद्धि कुमुदिनी वृंद की, आनंद करन पवित्र ॥[1]

(2) सुमति करनि कुमतिनि हरन, असरन सरन सुचित्त ।
ध्यावहु सरसुति मातु के, चरन कमल जुग नित्त ॥[2]

प्रथम दोहे में गणेश जी को, "बुद्धि को आनंद देने वाले", एवं द्वितीय दोहे में माँ सरस्वती को "सद्बुद्धि देने वाली, "कुबुद्धि हरने वाली व "अशरण को शरण में लेने वाली" कह कर उनके (सरस्वती जी के) चरण कमलों का ध्यान किया गया है ।

इन दोनों दोहों में "गुणात्मक विशेषणों" के द्वारा गणेश जी एवं सरस्वती जी की वंदना की गई है ।

यह मंगलाचरण नमस्कारात्मक है ।

## राम भक्ति -

यद्यपि राम-काव्य परंपरा का श्रृंगारीकरण रीतिकाल[3] में हो गया था तदपि राजधर के राम भक्ति विषयक उद्गारों में दास्य भक्ति के दर्शन होते हैं जिनमें दैन्य भाव का प्राधान्य है ।

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 1
(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 2
(3) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग-6 पृष्ठ- 14

रीतिकालीन कवि अवतार वाद में आस्था रखते हैं अतः राजधर के अनुसार राम एवं कृष्ण एक ही हैं। नाम का एवं गुणगान दास्य भक्ति में प्रमुख स्थान रखते हैं। राजधर राम (अथवा कृष्ण) के नाम का प्रताप बताते हैं --

जिनके नाम प्रताप तें, सेतु रच्यौ इक कीस।
धरनी धर गिरवर धर्यौ, कौन बड़ाई ईस ॥[1]

कहीं राजधर ने श्रीराम के औदार्य का गुणगान[2], कहीं अपना (राजधर का) उद्धार करने हेतु प्रार्थना[3], कहीं राम भक्ति की अनन्यता[4], कहीं श्रीराम के सौन्दर्य का वर्णन किया है।[5]

## कृष्ण भक्ति -

सूरदास आदि भक्तिकालीन कवियों ने श्री कृष्ण भक्ति विषयक जिन प्रसंगों पर विस्तृत रूप से लेखनी चलाई, उन्हीं परम्परित प्रसंगों पर राजधर ने यत्र तत्र मार्मिक उद्गार व्यक्त किए हैं।

## राधा भक्ति -

भक्तिगत श्रृंगार की नायिका राधा है तो उसका नायक कृष्ण। काव्यशास्त्रीय श्रृंगार और नायक नायिका भेद के विभिन्न संस्कारों से युक्त होकर श्रृंगारी लीलाओं का विशेष महत्व है।

राजधर जी ने कतिपय दोहे राधा की भक्ति से सम्बन्धित भी लिखे हैं।

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 337
(2) - वही - 465
(3) - वही - 32, 478
(4) - वही - 151, 187
(5) - वही - 126, 128, 480

राजधर जी सुख एवं शोभा के "सदम", श्री राधिका जी के चरण कमलों का निशि-दिन ध्यान करते रहते हैं –

निशुदिन ध्यावत रहति हैं, श्री राधे पद पद्म ।
अति कोमल लाल चिक्कन पे, सुख, शोभा के सदम ।।[1]

इसी प्रकार "नूपुर रव रंजित"[2] जावक युक्त,[3] राधा जी के चरण-कमलों की वंदना भी की गई है । वैसे राजधर कहते हैं इतनी बुद्धि किसमें है जो राधा की रूप राशि का वर्णन कर सके।[4] श्री राधिका जी की "मुख ज्योति" "तिमिर रूप बाधा" हरण करने वाली है --

तिमिर रूप बाधा हरिन, और न ऐसी होति ।
दीप ज्योति ते है गुनी, राधा की मुख जोति ।।[5]

यहाँ राधा की मुख "दीप्ति" को दीप ज्योति से बहुगुणित दिखाकर सौन्दर्य की अलौकिता तथा "तिमिर रूप" बाधा हरनि कहकर राजधर ने राधा के प्रति अज्ञान तिमिर हरण में सच्ची भक्ति अभिव्यक्त की है । इसी प्रकार राधा के नख शिख-- मुख[6], अधर[7] नासिका[8] एवं आभूषण- मोतियों के गुथे हार[9], चूनरी[10] आदि की अलौकिता का वर्णन भी किया गया है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 496
(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 498
(3) - वही - 497
(4) - वही - 495
(5) - वही - 329
(6) - वही - 176
(7) - वही - [illegible] 177
(8) - वही - 178
(9) - वही - 246
(10) - वही - 252

इसके अतिरिक्त राधा भक्ति से सम्बन्धित और भी दोहे देखे जा सकते हैं ।[1]

श्री कृष्ण की लीलाओं का गायन -

माधुर्य भाव में रूपोपासना का अत्यधिक महत्व है । जल भरती हुई गोपियाँ श्री कृष्ण के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध होकर जड़वत् रह गईं ।

एक भरे भरती न इक, इकनि धरें भरि नीर ।
जो जैसी सो त्यौं रही, निरखत श्री जदुवीर ।।[2]

इसके अतिरिक्त श्री कृष्ण की रूपोपासना से सम्बन्धित और भी दोहे देखे जा सकते हैं ।[5]

माखन चोरी -

जिस प्रकार गृह स्वामी चोर को रंगे हाथों पकड़ कर छोड़ना नहीं चाहता है, उसी प्रकार एक क्रिया विदग्धा गोपी भी माखन चोर श्रीकृष्ण जी को पकड़े हुए है । वह चोर को एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ना चाहती है । उसे बाहों के जोर से हृदय से लगा लिया है -

राख्यौ हिये लगायकैं वर बाहिनि के जोर ।
कनु छाड़यौ भावे नहीं, पायौं माखनु चोर ।।[3]

कुछ और भी दोहे माखन चोरी से सम्बन्धित हैं ।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। राकेश सतसई दोहा संख्या- 102, 450, 492, 493, 495
।2। - वही - 272
।3। - वही - 78
।4। - वही - 75, 76, 77
।5। - वही - 272, 273, 280, 281, 322
23, 43, 249, 270

इसके अतिरिक्त श्री कृष्ण की गोपियों से छेड़खानी[1] होली का रास रंग[2] मुरली,[3] गौ चारण[4] ऊधव गोपी सम्वाद[5] से सम्बन्धित दोहे भी देखे जा सकते हैं ।

शिव भक्ति -

एक सखी नायिका को पति प्राप्ति के हेतु शिव जी की सेवा के लिए प्रेरित कर रही है -

अवधि न बीतन पाइहै, जो यौवन धरि नेउ ।
गौरी पति तब ही मिलै, गौरीपति की सेउ ।।[6]

पार्वती जी -

शिव जी की धर्मपत्नी के विषय में रामसहाय जी कहते हैं कि उन (पार्वती जी) के पिता ने ढूंढ़ी करके अच्छा ही किया कि हर (शिव जी) वर को उनके लिये ढूंढ़ लिया —

पारबती के भाग की, कहा कहौं अधिकाई ।
तात भली हरबर करी, हर वर ढूढ़यौ जाइ ।।[7]
एक एक की वृद्धि तें, अवरजु कह्यौ न जाइ ।
पारबती के भागु लखि, ससुर पूत पति पाइ ।।[8]

यहाँ पार्वती जी के परिवार का परिचय प्राप्त होता है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 155, 271
(2) - वही - 254, 255
(3) - वही - 106, 175, 280
(4) - वही - 103, 300
(5) - वही - 105, 163, 262, 333, 375
(6) - वही - 238
(7) - वही - 202
(8) - वही - 219

**भैरव जी -**

श्री भैरव जी पार्वती जी के पुत्र हैं । उनको भी महिलायें पूज रही हैं-

> गौरी सुत भावत हिये, भैरव पूजति नारि ।
> नवपुरी कल्यान कर, श्री राघौव मुरारि ।।[1]

**गंगा जी -**

संसार (सागर) में (फँसा) राजधर गंगा (मैया) से लिए गुहार करता है -

> मंदाकिनि तुम किर्ति हुव, राजधर जग माँह ।
> गावत ध्यावत रहत है, सुर नर दिन अरु साँझ ।।[2]

**निष्कर्ष :-**

नमस्कारात्मक मंगला चरण में गणेश एवं सरस्वती की साधारण वंदना है । जहाँ-जहाँ राजधर ने राम भक्ति विषयक उद्गार व्यक्त किए हैं वहाँ दास्य भक्ति के दर्शन होते हैं, जिसमें दैन्य भाव की प्रधानता है । राधा कृष्ण भक्ति के अन्तर्गत- राधा के अलौकिक सौन्दर्य निरूपण के साथ इनकी वंदना, कृष्ण की रूपोपासना एवं उनकी लीलाओं का गायन यथा माखन चोरी, गोपियों के साथ रास रंग आदि का वर्णन है । इसके अतिरिक्त अन्य देवी देवताओं- शिवजी, पार्वती जी, भैरव जी, एवं गंगा जी के प्रति भी भक्ति परक उद्गार कतिपय दोहों में अभिव्यक्त किए गए हैं ।

प्रायः सभी भक्ति परक उक्तियों में राजधर का भक्त-रूप की अपेक्षा कवि रूप अधिक मुखर है । भक्ति गौण है, काव्य प्रधान है ।

## :- रामधर सतसई में नीति -:

### रीतिकाल और नीति -

"नीतिपरक उक्तियाँ अपने समसामयिक जीवन मूल्यों और परिवेश पर आधारित होती हैं। इस ह्रासोन्मुखी युग में उदात्त मूल्यों के प्रति आस्था नहीं रह गई थी। इसलिए जीवन की असारता, प्रेम की निष्फलता, अस्थिरता, वैभव विलास के प्रति उदासीनता आदि भावनाएँ नीति परक उक्तियों में उभर कर आयीं हैं। सच पूछिए तो यह भी जीवन के अवसाद और थकान का द्योतक है। राग की अतिशयता से ऊब कर मनुष्य या तो भक्ति और वैराग्य की साधना करता है या म्रियमाण नैतिकता का आँचल पकड़ता है। रीति काव्यों के रचयिता इसके अपवाद नहीं थे।[1]

### शृंगारिक सतसईकार और नीति -

प्रायः सभी शृंगारिक सतसइयों में नीति सम्बन्धी दोहों की बहुलता पाई जाती है। इनका कोई क्रम सतसइयों में नहीं पाया जाता है। प्रायः यत्र तत्र बिखरे हुए ही ये दोहे दिखाई पड़ते हैं। सतसईकारों ने प्रत्यक्ष वस्तुओं एवं मनुष्यों से सम्बन्धित सांसारिक पदार्थों का दृष्टान्त रूप में प्रयोग न करके अपने व्यावहारिक ज्ञान का परिचय दिया है। ये नीति परक दोहे विभिन्न विषयों से सम्बन्धित हैं। उदाहरणतः सत्संग महिमा, दुष्टों की निन्दा, गुणों का महत्व कर्तव्यपालन एवं जीवन की उपयोगिता इत्यादि।[2]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग-6, सं. डा० नगेन्द्र पृष्ठ 163

(2) रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन, डा० पुष्पलता- पृष्ठ- 144

राजधर सतसई में नीति -

राजधर ने भी नीति विषयक उक्तियों में अपने विचार व्यक्त किए हैं —

सत्य की महिमा

कबीर के "सांच बराबर तप नहीं," वाले भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है, कि सत्याचरण से स्वार्थ व परमार्थ दोनों ही सिद्ध हो जाते हैं -

व्यास लिखी विधि पै लिखी, वेद पुरानिन वांचु ।
परमारथ स्वारथ दुवै, सधत सांच से सांचु ।।[1]

सत्संग महिमा -

बिहारी ने कहा है कि "नाक बात बेसरि लयौ बसि मुकतन के संग" । राजधर कहते हैं कि जिस प्रकार समुद्र का खारा जल बादल के संग से मीठा बन जाता है, उसी प्रकार खलों का शरीर सत्संग से पवित्र हो जाता है -

बहु संगत से खलन को, पावन होत सरीर ।
छार जलधि जल सुरति भरि, जलद हरत जग पीर ।।[2]

जिस प्रकार छोटी नदियां गंगा में मिलकर गंगा ही हो जाती है सत्संग में सभी संत कहलाते हैं -

प्रीति बडिन की जगत में, गंगाजल सम देखि ।
होत सुर सुरी सरित मिलि, छोटी बडी बिसेखि ।।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 392

(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 603

(3) राजधर सतसई दोहा संख्या- 44

इसी प्रकार राजधर ने विवेक का महत्व प्रतिपादित किया है ।[1] दानी व्यक्ति की[2] एवं चतुर व्यक्ति की प्रशंसा की है[3]।

क्षुद्र निन्दा

जिस भाव को रहीम ने "प्यादे से फरजी भयो टेढ़ो-टेढ़ो जाय" कहकर व्यक्त किया उसको राजधर ने इस प्रकार कहा है --

कोलाहलु नूपुर करै, सुरत समय ढिंग जाइ ।
कहो क्षमा क्यों करि गहै, नीच ऊँच पद पाइ ।।[4]

सहजावस्था में नूपुर नायिका के पैरों (नीचे स्थान पर) रहता है। किन्तु सुरत काल में नायक के कानों तक पहुँचकर कोलाहल करता है राजधर कहते हैं कि नीच व्यक्ति उच्च पद प्राप्त करके कभी किसी को क्षमा नहीं करता है ।

यहाँ नीति कथन में भी राजधर की शृंगारिक रुचि रही है । अनेक प्रयत्न करने से भी नीच व्यक्ति महान नहीं हो पाता है ।

काम परे ही जानिए लघुओं पद सब कोइ ।
करि देखौ कोटिक जतन, ओछौ बड़ौ न होइ ।।[5]

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 217
(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 46, 267, 268
(3) - वही - 150
(4) - वही - 45
(5) - वही - 363

"खल व्यक्ति "दगली (रजाई) में कीट की भाँति सभा में दुखदाई होता है ।[1]

अतः राजधर ने उस पर (खल पर) विश्वास न करने की सलाह दी है । यथा -

दुरि जावत इस पलकु में, उघरि जात पल माँहि ।
नीच प्रीति अरु अतिसु सु फल, पतियैये ये नाँहि ॥[2]

## कंजूस की निन्दा -

कंजूस को राजधर ने समुद्र कहकर निन्दा की है । जिसके पास असीम जल होने के बाद भी किसी प्यासे (जरूरत मंद) की प्यास नहीं बुझती है -

(1) रत्नाकर पर नाम लहि, सिंधु अगाध गंभीर ।
प्यासो जाति, न पथिक को, आये से तुव तीर ॥[3]

(2) आलय पान्थे जलनि को, बहु जल जीव निवासु ।
आये से अति समुद्र टिंग, पानी हूँ की प्यासु ॥[4]

## अन्य नीति विषयक उक्तियाँ :-

रहीम के "जानि परत है काक पिक, ऋतु बसंत के माँहि" राजधर ने इस प्रकार व्यक्त करते हैं - कि ग्राम के बाहर कोयल और काग में कोई भेद नहीं होता है -

उसी सुर उसी सुरनि बोलति है ये काम ।
इक रंग कोकिल काग को, भेदु न बाहिरे ग्राम ॥[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 181
(2) - वही -236
(3) - वही -347
(4) - वही -348
(5)- वही -79

बिहारी के "पानी गए न ऊबरै, मोती मानस चून" को राजधर इस भाँति कहते हैं --

मोती मानस एक सम, दिपु दिपु पानिप नाम ।
तिनहु उतारि पानी गए, बहुरि न कौनहु काम ।।[1]

ऐसे ही कपटी व्यक्ति देखने में विद्वान सा लगे किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति को वहाँ से चला ही जाना चाहिए --

बहु पढ़ि अति स्वच्छ है पढ़नि दच्छ गति लीन ।
कहा कबनि मे आनि कै, बैठहु ह्वै प्रवीन ।।[2]

राजधर चूँकि श्रृंगारिक रुचि के थे । रीतिकाल में श्रृंगारिक कवियों में दूती को अत्यन्त महत्व दिया गया है । राजधर भी दूती के महत्व से भली भाँति परिचित थे । किन्तु जाते जाते यह कह जाते हैं, कि दूती को कभी हृदय का रहस्य नहीं बताना चाहिए, क्योंकि दूती की पैठ दोनों तरफ होती है अतः नहीं, मन की बात जानकर कौन सा झमेला खड़ा कर दे । यथा -

इत ते उत, उतकी इतै, पारति आनि उमैठ ।
भूलि न दीजे भेद कछु, दूती होति दुपैठ ।।[3]

सारांशतः राजधर सतसई में व्यवहारिक जीवन से संबंधित नीति विषयक सुन्दर उक्तियाँ यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं ।

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 462
(2) - वही - 517
(3) - वही - 85

## राजधर सतसई में नृप-प्रशस्ति एवं अन्य

"सतसइयों में प्रशस्ति परक दोहे बहुत कम मिलते हैं। केवल मतिराम और बिहारी ने ही अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में दोहे लिखे हैं। राम सहाय और रस निधि ने इस प्रकार के दोहों को महत्व ही नहीं दिया है और विक्रमसाहि तो स्वयं ही राजा थे। इस प्रकार सतसइयों में प्रशस्ति संबंधी दोहों का प्रभाव कम ही लक्षित होता है। अत्युक्ति की सबसे अधिक संभावना प्रशस्तियों के क्षेत्र में रही है किन्तु सतसईकारों ने इस दिशा में अपनी अत्युक्ति भावना का परिचय नहीं दिया है।[1]

### राजधर सतसई में नृप-प्रशस्ति -

राजधर ने अपने आश्रयदाता राजा उदोत सिंह का सामान्य परिचय 3 दोहों में दिया है। राजधर सतसई के आधार पर महाराज उदोत सिंह बेतवा नदी के किनारे नगर ओरछा के बुंदेला वीर[2] वीर सिंह (जू देव) के वंशज[3] जसवंत सिंह के पुत्र हैं।[4]

### दान वीरता

राजधर ने उदोत सिंह की दान वीरता की प्रशंसा की है, जिस प्रकार अपने अपने समय में पृथु, पार्थ, दशरथ और हरय आदि महात्यागी राजा थे, उसी प्रकार उदोत सिंह अपने समय के दानी हैं। यथा -

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन, डा० पुष्पलता पृ०- 103
(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 3
(3) - वही - 4
(4) - वही - 6

पृथु, पारथु, दसरथु, सुरथु, समरथ सबै होत ।
जग जाहिर जसवंत नृप, भूपति सिंह उदोत ।।[1]

उदोत सिंह को कर्ण एवं भोज की तरह दानी एवं हरि एवं हर के समान वरदान देने वाला कहा गया है -

दानि करन से, भोजु से, जोनि जान जिय लेउ ।
हरि हर से वरदान को, सिंह उदोतहि सेउ ।।[2]

उनकी दान वीरता का ऐसा यश गान दिशाओं-दिशाओं में फैल रहा है -

राजधर नृप दान के, सुनि अमान बखान ।
दिसि दिसि राज सभानि में, कवि कुल करत बखान ।।[3]

**वीरता -**

उदोत सिंह ने पण्डितों को यश मण्डित एवं उदण्ड शत्रुओं को दण्डित किया इसलिए नव खण्डों में उनका प्रताप है -

जस मण्डित पण्डित किय, दण्डित अरि गन चण्ड ।
सिंह उदोत नर नाथ नृप, नृप प्रताप नव खण्ड ।।[4]

उन्होंने कई शत्रु दलों को नष्ट करके युद्ध में विजय श्री प्राप्त की तथा कई किलों को स्पर्श मात्र से ध्वस्त कर दिया । अतः उनका यश पृथ्वी के कोने-कोने तक फैला है -

बहु अरि दल दह-पट्ट किय, लिय जय तेगन जोर ।
केयक गढ़ ढाहे ढकनि, जस किय छिति ओर ।।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 6
(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 7
(3) राजधर सतसई दोहा संख्या- 453
(4) राजधर सतसई दोहा संख्या- 5
(5) राजधर सतसई दोहा संख्या- 9

इसीलिए राजधर ने महाराज उदोत सिंह को बुद्धिमान और वीर समझकर अपने हृदय में धारण किया है -

बुद्धिवंतु कलपतरु लखि, जग जानतौ बानि ।
राजधर महाराज किय, राजधर उर आनि ॥[1]

राजधर ने कतिपय दोहों में ही नृप प्रशस्ति की है । जिसमें आश्रय दाता राजा को दानवीर, युद्ध वीर कवियों को सहायता देने वाले एवं बुद्धिमान कहा गया है । यह प्रशंसा अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है । इसकी ऐतिहासिक तथ्यों से पुष्टि होती है ।

अन्य :-

**कायस्थ प्रशंसा** - राजधर ने किसी एक कायस्थ की दानशीलता से प्रभावित होकर उसकी प्रशंसा की है । संभवतः वह कायस्थ राजदरबार का प्रमुख पदाधिकारी रहा होगा और राज धर की इच्छायें पूरी करता होगा तभी राजधर ने उसे कल्प तरु कहा है -

कायथु कुल कलि कलप तरु, महा पानि मन पानि ।
विधि रचना सब सफल हुव, रचि राजधर दानि ॥[2]

**कवि की मित्रता** - कवियों से मित्रता करने से।कवि के द्वारा प्रशस्ति गान किये जाने से। उसके मित्र की कीर्ति का विस्तार होता है —

और मित्र ते प्रगट है, सुख दुख को विस्तार ।
होतु कविन की मित्रई, कीरति जग विस्तार ॥[3]

तात्पर्य यह है कि राजा को कवि से मित्रता रखना चाहिए ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या - 7
(2) - वही - 608
(3) - वही - 218

अध्याय - 4

# राजधर सतसई में नायिका भेद

## :- राजधर सतसई में नायिका-नायक भेद -:

नायिका-नायक शृंगार रस के आलम्बन विभाव हैं। शृंगार रस का स्थायी भाव रति, इन्हीं दोनों में एक दूसरे के प्रति उद्बुद्ध होती है। रति के आलम्बन होने के कारण ये आलम्बन विभाव कहे जाते हैं।

### नायिका-नायक भेद निरूपक आचार्य और ग्रन्थ :-

साहित्य शास्त्रीय संस्कृत वाङ्मय में नायिका-नायक भेद को नाट्य शास्त्र, काम शास्त्र और काव्य शास्त्र संबंधी ग्रंथों में स्थान मिला है।

### नाट्यशास्त्र -

नाट्यशास्त्र संबंधी चार ग्रंथ सुलभ हैं- ।1। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र, ।2। धनंजय का दशरूपक, ।3। सागर नंदी का नाटकलक्षण रत्नकोष और ।4। राम चन्द्र गुणचन्द्र का नाट्य दर्पण।

### काम शास्त्र -

काम शास्त्र सम्बन्धी ग्रंथों में- कामसूत्र, अनंगरंग, रति रहस्य आदि के नाम विशेषतः उल्लेख्य हैं। इन सबमें नायक-नायिका भेद का यथा स्थान निरूपण हुआ है।

### काव्य शास्त्र -

नायक नायिका भेद की दृष्टि से काव्य शास्त्र संबंधी ग्रंथों के दो वर्ग हैं :-

।क। शृंगार रस के अन्तर्गत नायक नायिका भेद निरूपक ग्रंथ -

इनमें रूद्रट का काव्यालंकार, भोज का सरस्वती कंठाभरण और शृंगार प्रकाश तथा विश्वनाथ का साहित्य दर्पण विशेष उल्लेखनीय है।

इनके अतिरिक्त रुद्रभट्ट, अग्नि पुराणकार, श्रीकृष्ण कवि, वाग्भट्ट प्रथम, हेमचंद्र, शारदा तनय, विद्यानाथ, शिंगभूपाल, वाग्भट्ट द्वितीय और केशव मिश्र के काव्य शास्त्रों में भी इस प्रकरण को स्थान मिला है, पर इस सम्बन्ध में कोई उल्लेखनीय नवीनता उपलब्ध नहीं होती है ।

**ख** **मात्र नायक-नायिका भेद निरूपक ग्रंथ -**

इस वर्ग में दो ग्रंथ अति प्रसिद्ध हैं- भानु मिश्र की रस मंजरी और रूप गोस्वामी का उज्ज्वल नील मणि । तीसरा ग्रंथ संत अकबर शाह प्रणीत श्रृंगार मंजरी प्रसिद्धि की दृष्टि से न सही, विषय व्यवस्था और मौलिक मान्यताओं के लिए उल्लेखनीय एवं उपादेय है ।

**संस्कृत साहित्य में नायिका-नायक भेद निरूपण परम्परा -**

नायिका-नायक भेद की परम्परा काव्य-शास्त्र की परंपरा के साथ ही आरम्भ होती है, इसलिए इस विषय का सर्व प्रथम वर्णन भरत मुनि कृत नाट्य शास्त्र में उपलब्ध होता है । नाट्य शास्त्र अभिनय सम्बन्धी ग्रंथ है । उसमें नायक-नायिकाओं का वर्णन अभिनय के सन्दर्भ में हुआ है । यद्यपि नायिका भेद निरूपण का मूल आधार अभिनय है, तथापि उन्होंने किसी न किसी रूप में प्रायः समस्त महत्वपूर्ण नायिकाओं एवं नायकों का उल्लेख कर दिया है, अतः भरत मुनि को नायिका नायक भेद कथन का प्रवर्तक और नाट्य शास्त्र को इस विषय का सर्व प्रथम ग्रन्थ मानना सर्वथा युक्ति-युक्त है ।

**भरत मुनि -** । 3 य शती ई०पू०- 3 य शती० ई० ।

भरत ने विभिन्न आधारों पर नायिका के भेदों का उल्लेख किया है ।

1- सामाजिक व्यवहार के आधार पर उन्होंने नारी के पहले तीन भेद माने हैं- (1) आभ्यन्तरा (कुलीना) वर्तमान स्वकीया[1] (2) बाह्या (वेश्या)[2] (3) बाह्याभ्यन्तरा अथवा कृत शौचा[3] (अर्थात् वैश्यावृत्ति त्याग कर शुद्ध रूप से प्रेमी के साथ रहने वाली) और फिर इसी आधार पर अन्य दो भेद किए- (1) कुलजा[4] (2) कन्यका[5]

2- नायक के साथ संयोग अथवा वियोग की अवस्थानुसार नायिका के आठ भेद किए-[6] (1) वासक सज्जा,[7] (2) विरहोत्कण्ठिता[8] (3) स्वाधीन भर्तृका[9] (4) कलहान्तारिता[10] (5) खण्डिता[11] (6) विप्रलब्धा[12] (7) प्रोषित भर्तृका[13] (8) अभिसारिका[14]

3- नायक के प्रति प्रेम के आधार पर तीन भेद -

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) नाट्य शास्त्र, भरत मुनि - 24/143 पृ०सं० 280
(2) - वही - 24/143 पृ०सं० 280
(3) - वही - 24/144 पृ०सं० 280
(4) - वही - वही वही
(5) - वही - 24/145 पृ०सं० 280
(6) - वही - 24/203, 204 पृ0284
(7) - वही - 24/205 पृ०सं० 284
(8) - वही - 24/206 वही
(9) - वही - 24/207 वही
(10) - वही - 24/208 वही
(11) - वही - 24/209 वही
(12) - वही - 24/210 वही
(13) - वही - 24/211 वही
(14) - वही - 24/212 वही

(1) मदनातुरा[1] (2) अनुरक्ता[2] (3) विरक्ता[3]

4- प्रकृति के आधार पर नायिका के तीन भेद हैं-

(1) उत्तमा[4] (2) मध्यमा[5] (3) अधमा[6]

5- यौवन लीला के आधार पर चार भेद -

(1) प्रथम यौवना[7] (2) द्वितीय यौवना[8] (3) तृतीय यौवना[9] (4) चतुर्थ यौवना[10]

<u>द्रष्टव्य -</u>

भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में परकीया को स्थान नहीं मिला[11]

<u>रुद्रट</u>[12] (800 ई0)

भरत के उपरान्त रुद्रट ने नायिका भेदों का उल्लेख किया है जो प्रथम बार सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत होने के कारण, प्रायः सभी परवर्ती आचार्यों द्वारा अनुकरणीय रहा है ।

---

(1) भरत मुनि, नाट्य शास्त्र - 25/19 पृ0सं0 294
(2) - वही - 25/20-23 वही
(3) - वही - 25/24-27 सं0 295
(4) - वही - 25/37-39 सं0 295 अथवा 34/2-4 पृ0सं0- 457
(5) - वही - 25/40-41 सं0 295, 96 एवं 34/4-5 पृ0सं0- 457
(6) - वही - 25/42 पृ0 296 एवं 34/5-8 पृ0457
(7) - वही - 25/44 पृ0 296
(8) - वही - 25/45 पृ0 296
(9) - वही - 25/46 पृ0 296
(10) - वही - 25/47-48 पृ0 296
(11) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग-6, सं0 डा0 नगेन्द्र पृ0सं0 102
(12) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग-6, सं0 डा0 नगेन्द्र पृ0सं0 105

1- नायिका के प्रमुख तीन भेद-

(1) आत्मीया (2) परकीया (3) वेश्या

2- आत्मीया (स्वकीया) के रति विकास के आधार पर तीन भेद -

(1) मुग्धा (2) मध्या (3) प्रगल्भा

3- इनमें से अन्तिम दो (मध्या और प्रगल्भा) के पति द्वारा प्राप्त प्रेम व्यवहार के आधार पर दो-दो उप भेद -

(1) ज्येष्ठा (2) कनिष्ठा

फिर इन दोनों के मान, व्यवहार के आधार पर तीन-तीन उप भेद -

(1) धीरा (2) अधीरा (3) मध्या

4- परकीया के दो भेद -

(1) कन्या (2) अन्योढा

5- आत्मीया के अन्य दो भेद -

(1) स्वाधीन पतिका (2) प्रोषित पतिका

6- आत्मीया, परकीया एवं वेश्या के इन तीनों के अन्य दो-दो उप भेद -

(1) अभिसारिका (2) खण्डिता[1]

---

(1) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग-6 सं0 डा0 नगेन्द्र पृ0- 105

**धनंजय - 1975 ई०[1]**

दशरूपक के रचयिता धनंजय का समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी है। भरत मुनि की भाँति धनंजय ने भी अभिनय के सम्बन्ध में ही नायिका भेद कथन किया है। यद्यपि इस ग्रन्थ में इस विषय का विशद विवेचन नहीं किया गया है, तथापि भरत के कई शताब्दियों पश्चात् विषय की चर्चा करने के कारण इस ग्रन्थ का विशेष महत्त्व है।

धनंजय के आदर्श भरत मुनि हैं। नायिका-भेद कथन में वे रुद्रट से पर्याप्त प्रभावित हैं।

1- इन्होंने रुद्रट की भाँति नायिका के तीन भेद- (1) स्वकीया (2) परकीया (3) साधारण स्त्री स्वीकार किए।[2]

2- स्वकीया के तीन भेद रुद्रट की भाँति- (1) मुग्धा (2) मध्या (3) प्रगल्भा को स्वीकार किया।[3]

3- किन्तु मुग्धा के तीन भेद करके विकास किया- (1) वयोमुग्धा (2) काम मुग्धा (3) रतवामा[4]।

4- प्रगल्भा के भी दो भेद करके विकास किया- (1) भाव प्रगल्भा (2) रत प्रगल्भा[5]।

5- मध्या व प्रगल्भा के मान के आधार पर तीन भेद- (1) धीरा (2) अधीरा (3) धीरा-धीरा[6]।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) भारतीय साहित्य शास्त्र, बलदेव उपाध्याय - पृ०सं० - 61

(2) दशरूपक, धनंजय - 2/15

(3) वही - 2/15

(4) वही - 2/16

(5) वही - 2/18

(6) वही - 2/17

पति प्रेम के आधार पर - (1) ज्येष्ठा (2) कनिष्ठा भेद किए[1] परकीया के भेद- (1) कन्यका (2) परोढ़ा[2] ।

6- अवस्थानुसार अष्ट विधि नायिकाओं को भरत मुनि के अनुसार इन भेद से वर्णित किया[3]। किन्तु इन्होंने एक महत्वपूर्ण संकेत दिया है, कि अन्तिम 6 (विरहोत्कण्ठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा प्रोषित प्रिया और अभिसारिका) तो चिन्ता, निःश्वास खेद, अश्रु, वैवर्ण्य ग्लानि तथा भूषण हीनता से युक्त होती है और आरम्भ की दो (स्वाधीन पतिका और वासक सज्जा) क्रीड़ा, उज्ज्वलता और हर्ष से युक्त होती है[4]।

भोज राज (1050 ई0)

रूद्रट के उपरान्त भोज राज ने अपने दोनों ग्रंथों सरस्वती कण्ठाभरण और श्रृंगार प्रकाश में कतिपय नवीन भेदोपभेद प्रस्तुत किए, जो विशेष महत्वपूर्ण नहीं है[5]।

विश्वनाथ - (1200-1350 ई0)

विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में श्रृंगार रस के अन्तर्गत नायक नायिका भेद निरूपण किया है ।

1- इन्होंने पूर्वाचार्यों से ही नायिका के तीन भेद- (1) स्वीया (2) परकीया (3) सामान्या स्वीकार किए[6] ।

---

(1) दशरूपक, धनंजय -2/20
(2) " " "
(3) " " -2/23-27
(4) " " -2/28
(5) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग-6 सं0 डा0 नगेन्द्र पृ0 105
(6) साहित्य दर्पण, विश्वनाथ 3/56

2- स्वकीया के तीनों प्रभेदों- (1) मुग्धा (2) मध्या (3) प्रगल्भा के उपभेदों का विवेचन किया[1]।

(1) मुग्धा के तीन उपभेद- (क) प्रथमावतीर्ण यौवना (ख) प्रथमावतीर्ण मदन विकारा (ग) रतौ वामा[2]

(2) मध्या के चार उपभेद- (क) विचित्र सुरता (ख) प्ररूढ यौवना (ग) ईषत्प्रगल्भ वचना (घ) मध्यम व्रीडिता[3]

(3) प्रगल्भा के छः उपभेद- (क) स्मरान्धा (ख) गाढतारुण्या (ग) समस्त रत कोविदा (घ) भावोन्नता (ङ) स्वल्पव्रीडा (च) आक्रान्ता[4]

3- स्वकीया मध्या और प्रगल्भा के मान के आधार पर[5] एवं परकीया[6] के भेद निरूपण में पूर्वाचार्यों का अनुकरण किया

4- सामान्या निरूपण भरत मुनि के आधार पर किया[7]

5- अष्टविध अवस्थानुसार नायिकाओं में भी भरत आदि पूर्वाचार्यों का अनुकरण किया[8]

---

(1) साहित्य दर्पण, विश्वनाथ 3/57
(2) साहित्य दर्पण, विश्वनाथ 3/58
(3) " " " 3/59
(4) " " " 3/60
(5) " " " 3/61
(6) " " " 3/66
(7) " " " 3/67-71
(8) " " " 3/72-86

**भानुदत्त** (लगभग 13 वीं शताब्दी के अन्त से 14 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक)

नायिका भेद निरूपण के क्षेत्र में भानुदत्त का स्थान महत्वपूर्ण है । उन्होंने अपने ग्रन्थों 'रस तरंगिणी' और 'रस मञ्जरी' में विस्तार सहित नायिका भेद निरूपण किया है । उनका ग्रन्थ 'रस मंजरी' इस क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है ।

'नायिका भेद की स्वतंत्र विवेचना सर्व प्रथम भानुदत्त ने की । उनसे पहले इस प्रकरण को शृंगार रस के आलम्बन विभाव के अन्तर्गत निरूपित किया जाता था । परिणामतः इसका विस्तृत प्रसंग रस निरूपण में एक अवांछित सी बाधा और विषय के अनुपात में एक अनुचित सी विषमता उपस्थित करता रहा, पर भानुदत्त के इस स्वतंत्र निरूपण से इनके ग्रंथ 'रस मंजरी' में ये दोष नहीं रहे ।'[1]

**भानुदत्त कृत नायिका भेद वर्गीकरण -**

1- पूर्वाचार्यों की भाँति नायिका के तीन भेद- (1) स्वीया (2) परकीया (3) सामान्या[2] एवं स्वीया के तीन उपभेद - (क) मुग्धा (ख) मध्या (ग) प्रगल्भा स्वीकार किए[3]।

मान के आधार पर मध्या एवं प्रगल्भा के 3-3 उपभेद- (1) धीरा (2) अधीरा (3) धीराधीरा[4]।

2- पूर्वाचार्यों से भिन्न मुग्धा के 2 प्रभेद- (अ) अज्ञात यौवना (ब) ज्ञात यौवना[5] एवं ज्ञात यौवना के दो प्रभेद- (1) नवोढा (2) विश्रब्ध नवोढा[6] साथ ही प्रगल्भा के 2 प्रभेद- (1) रति प्रीति मती (2) आनन्द संमोहवती[7]

---

(1) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग-6 सं0 डा0 नगेन्द्र पृ0103
(2) रस मंजरी (भानुदत्त), (संस्कृत हिन्दी व्याख्या) (हि0व्या0 पं0 जगन्नाथ पाठक) पृ08
(3) - वही - पृ015
(4) - वही - पृ047
(5) - वही - पृ016
(6) - वही - पृ017
(7) - वही - पृ040

3- परकीया के 2 उपभेद - (1) कन्यका (2) परोढा पूर्वाचार्यों की भाँति एवं परोढा के निम्नलिखित प्रभेद भानुदत्त की अपनी देन है।[1]

(1) गुप्ता - 1- वृत्त सुरत गोपना 2- वर्तिष्यमाण सुरत गोपना 3- वृत्त वर्तिष्यमाण सुरत गोपना ।[2]

(2) विदग्धा- 1- वाग्विदग्धा 2- क्रिया विदग्धा ।[3]

(3) लक्षिता-[4]

(4) कुलटा -[5]

(5) अनुशयाना- (1) वर्तमान स्थान विघटना (2) भावी स्थानाभाव शंकया (3) संकेत स्थल नष्टा[6]

(6) मुदिता-[7]

4- दशानुसार तीन भेद- (1) अन्य संभोग दुःखिता (2) वक्रोक्ति गर्विता- (3) प्रेम गर्विता (4) सौन्दर्य गर्विता (3) मानवती[8]

5- पूर्वाचार्यों की भाँति अवस्थानुसार अष्टविध नायिकाओं को स्वीकार करते हुए[9] इन्होंने एक उपभेद की वृद्धि की । प्रवत्स्यत्पतिका[10]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रस मंजरी, भानुदत्त (हिन्दी व्याख्याकार पं० जगन्नाथ पाठक पृ०86
(2) - वही - पृ०88
(3) - वही - पृ०91
(4) - वही - पृ०95
(5) - वही - पृ०97
(6) - वही - पृ०100
(7) - वही - पृ०107
(8) - वही - पृ०120-124
(9) - वही पृ०-146, 158, 170, 182, 192, 203, 215, 224
(10) - वही पृ० 247

एवं अभिसारिका के 3 प्रभेद किए[1]- ।1। ज्योत्स्नाऽभिसारिका ।2। तमिस्राभिसारिका ।3। दिवसाभिसारिका

6- गुणानुसार नायिका के भेद- ।1। उत्तमा ।2। मध्यमा ।3। अधमा[2]

'भानुदत्त ने अपने समय तक प्रचलित नायिका भेदों में से महत्व पूर्ण भेदों का व्यवस्था पूर्ण संकलन प्रस्तुत कर हिन्दी रीतिकालीन आचार्यों का इस विषय में दिशा प्रदर्शन किया'[3]।

रूप गोस्वामी

' भानुदत्त के उपरान्त उज्ज्वलनीलमणि के कर्ता रूप गोस्वामी ने परंपरागत नायिका भेदों के अतिरिक्त हरि प्रिया, वृन्दावनेश्वरी तथा पूर्वेश्वरी नामक भेदों तथा इनके भेदोपभेदों का उल्लेख किया है, पर इन भेदों को किसी भी परवर्ती संस्कृत अथवा हिन्दी के काव्य-शास्त्रियों ने नहीं अपनाया[4]।'

संत अकबर शाह

इस विषय के अन्तिम संस्कृत काव्याचार्य संत अकबर शाह हैं[5] इनका ग्रंथ 'शृंगार मंजरी' की प्रसिद्धि की दृष्टि से न सही, विषय व्यवस्था और मौलिक मान्यताओं के लिए उल्लेखनीय एवं उपादेय है[6]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। रस मंजरी, भानुदत्त ।हि०व्या० पं० जगन्नाथ पाठक। पृ०-235, 236, 237
।2। - वही - पृ०- 255, 258, 260
।3। हि०सा०का वृ० इति० भाग-6 सं० डा० नगेन्द्र पृ० 105
।4। - वही - पृ० 106
।5। - वही - पृ० 106
।6। - वही - पृ० 103

'भानुदत्त और विश्वनाथ में कौन पूर्ववर्ती है, इस पर विवाद है, किन्तु हमने डा० नगेन्द्र के अनुसार विश्वनाथ को भानुदत्त का पूर्ववर्ती माना है[1]। यद्यपि दोनों पर एक दूसरे का प्रभाव नहीं है, तदपि साहित्य दर्पण की अपेक्षा भानुदत्त ने इस विषय का अधिक विकास किया है, अतः हमने विवेचन की सुविधानुसार भानुदत्त को ही परवर्ती मान लिया है ।

## हिन्दी के रीति कालीन आचार्य -

हिन्दी के रीति कालीन आचार्य नायक नायिका भेद के लक्षण पक्ष में भानु मिश्र से प्रायः प्रभावित हैं और लक्षण पक्ष में रूप गोस्वामी से । इन्होंने उदाहरण निर्माण के लिए प्रायः रूप गोस्वामी के समान गोपी कृष्ण को नायिका एवं नायक के भेदों का माध्यम बनाया है ।[2] भानु मिश्र ने अपने समय तक प्रचलित नायिका भेदों में से महत्वपूर्ण भेदों का व्यवस्था पूर्ण संकलन प्रस्तुत कर हिन्दी रीतिकालीन आचार्यों का इस विषय में दिशा प्रदर्शन किया ।[3] अतः हम हिन्दी आचार्यों की परम्परा का संक्षिप्त परिचय ही प्रस्तुत कर रहे हैं ।

## ब्रज भाषा में नायिका- भेद कथन

ब्रज भाषा रीति साहित्य की आरंभिक कृतियाँ हैं- कृपाराम कृत 'हित तरंगिनी' सूरदास कृत 'साहित्य लहरी' नन्द दास कृत 'रस मंजरी' एवं रहीमकी 'बरवा नायिका भेद'।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भाग-6 सं० डा० नगेन्द्र पृ०104

(2) - वही - पृ०103

(3) - वही - पृ०106

कृपाराम कृत हित तरंगिणी (रचना काल 1698)

यह नायिका भेद हिन्दी की सबसे प्राचीन उपलब्ध रचना है। इसकी रचना लक्षण उदाहरण शैली पर है। कृपाराम कृत नायिका भेद कथन पूर्ण विकसित है। उस पर भानुदत्त की रस मंजरी का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। परवर्ती आचार्यों ने बहुत कुछ इसी क्रम को स्वीकार किया है।

सूरदास कृत साहित्य लहरी -

हित तरंगिणी के पश्चात् सूरदास कृत साहित्य लहरी (रचना काल सं० 1617) में नायिका भेद-कथन किया गया है। इसकी रचना दृष्टिकूट पदों में की गई है। इनमें केवल उदाहरण दिए गए हैं। प्रारम्भ के 39 पदों में 28 में नायिका भेद का कथन है। कहीं-कहीं नायिकाओं के नाम भी कूट में ही दे दिए गए हैं। "साहित्य लहरी" का नायिका भेद बहुत संक्षिप्त है। इसमें नायिका के तीसरे भेद सामान्या का उल्लेख नहीं है। परकीया के उपभेदों में कुलटा को छोड़ दिया गया है। इसमें कवि की उच्चादर्श एवं उसकी धार्मिक भावना स्पष्ट है।

नंददास कृत रस मंजरी-

प्रभुदयाल मीतल ने निष्कर्ष रूप में इसका रचना काल संवत् 1624 से 1630 के बीच माना है।[1] इस मंजरी की रचना भानुदत्त कृत रस मंजरी के आधार पर हुई है।[2] नंददास ने अपने किसी मित्र के आग्रह पर इसकी रचना की थी, क्योंकि नायिका भेद के ज्ञान के अभाव में रस रूप प्रभु के प्रेम का परिचय सम्भव नहीं।[3]

---

(1) ब्रज भाषा साहित्य का नायिका भेद, प्रभुदयाल मीतल पृ०-105
(2) रस मंजरी, नंददास - पंक्ति संख्या- 28, 29 (नंददास ग्रंथावली)
(3) रस मंजरी, नंददास - पंक्ति संख्या- 11, 12 ( " )

इन्होंने मात्र 'लक्षण' लिखे हैं। इन्होंने स्वकीया की भाँति परकीया एवं सामान्या के भी मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा भेद माने हैं।

नन्द दास कृत रस मंजरी में नायिका भेद कथन संक्षिप्त रूप से किया गया है। नायिका भेद की प्रारम्भिक रचना होने के कारण इसका महत्व है।

## रहीम कृत 'बरवा नायिका भेद'

अब्दुर्रहीम खानखाना का समय सं0 1610 से 1683 तक है। 'बरवा नायिका भेद' नायिका सम्बन्धी उनकी प्रसिद्ध रचना है। इसकी भाषा अवधी है।[1]

इसमें 115 बरवै हैं। प्रारम्भ के 95 बरवों में नायिका भेद कथन है। रहीम ने नायिका भेद के मात्र उदाहरण लिखे हैं। रहीम कृत 'नगर शोभा' नामक एक अन्य रचना भी प्राप्त होती है। इसमें 142 दोहे हैं। इनमें ब्राह्मणी रजतरानी आदि विभिन्न जाति की 61 प्रकार की स्त्रियों का श्रृंगार रस पूरित कथन है।

## केशव दास कृत रसिक प्रिया -

रीतिकाल के प्रारम्भिक आचार्यों के पश्चात् केशव दास का नाम आता है। इन्होंने सं0 1648 में रसरीति और नायिका भेद ग्रंथ 'रसिक प्रिया' की रचना की। रसिक प्रिया में वर्णित नायिका भेद का क्रम विविध संस्कृत ग्रंथों के आधार पर किया गया है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

[1] अवधी की रचना होने के कारण यहाँ इसके उल्लेख की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु आरम्भकाल की सुन्दर रचना होने के कारण इसका महत्व स्पष्ट है।

केशव दास कृत नायिका भेद की विशेषता यह है, कि इन्होंने दशानुसार अष्ट नायिकाओं के 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' दोनों भेद किए हैं।[1]

**नायिका भेद का विकास और नायिका भेद के सांगोपांग कथन की परम्परा -**

केशव दास का मत परवर्ती हिन्दी आचार्यों को मान्य नहीं हुआ। उनके 50 वर्ष बाद चिन्तामणि त्रिपाठी के साथ रीति ग्रंथों की परम्परा प्रारम्भ हुई। 'कवि कुल कल्पतरु' इनका प्रसिद्ध रीति ग्रन्थ है। इसमें श्रृंगार रस के विभावान्तर्गत नायिका भेद का विस्तृत वर्णन किया गया है। नायिका भेद कथन के लिए इनका मत भी परवर्ती कवियों को मान्य नहीं हुआ।

इस क्षेत्र में चिन्तामणि के छोटे भाई मति राम का मत मान्य हुआ।

**मति राम -**

मति राम नायिका भेद कथन के सर्वमान्य आचार्य हैं तथा इनका नायिका भेद ग्रंथ 'रस राज' इस विषय का सर्व प्रधान ग्रंथ है। 'रस राज' का रचना काल सन् 1690 के आस-पास माना जाता है। प्रायः समस्त परवर्ती कवि आचार्यों ने इनके आदर्श को अपनाया।

**महाकवि देव - (संवत 1730 से सं0 1800 के बाद तक)**

मतिराम के पश्चात् देव ने नायिका भेद का विस्तार किया। मतिराम के पश्चात् देव नायिका भेद के सर्वश्रेष्ठ आचार्य एवं कवि माने जाते हैं। इनके लिखे हुए 72 ग्रंथ कहे जाते हैं, जिनमें 30 ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं -

---

(1) रसिक प्रिया (सप्तम् प्रकाश), केशवदास - छन्द सं0 38

भाव विलास, भवानी विलास, सुजान विनोद, प्रेम तरंग, रस विलास आदि विलास तथा काव्य रसायन । देव ने नायिका भेद पर कोई पृथक ग्रन्थ नहीं लिखा किन्तु अधिकांश ग्रंथों में नायिका भेद कथन हुआ है ।

देव का एक संस्कृत ग्रंथ 'श्रृंगार विलासिनी' भी प्राप्त हुआ है, इसमें विशेषकर नायिका भेद का ही वर्णन है । भाव विलास में वर्णित नायिका भेद क्रम केशव दास की 'रसिक प्रिया' में वर्णित क्रम से मिलता है ।

इन्होंने मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा आदि की वय निर्धारित की हैं । विभिन्न देशों, प्रान्तों, जातियों के आधार पर नायिका भेद करके अनावश्यक विस्तार प्रेम प्रदर्शित किया है ।

<u>रसलीन और रस प्रबोध -</u>

इनका नाम सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी 'रसलीन' था । इनके लिखे दो ग्रंथ हैं- अंग-दर्पण (रचना काल सं० 1794) और रस प्रबोध (रचना काल सं० 1799) प्रथम ग्रंथ में नखशिख एवं द्वितीय ग्रंथ में रसरीति एवं नायिका भेद का विस्तार पूर्वक वर्णन है ।

<u>आचार्य भिखारी दास और श्रृंगार निर्णय -</u>

भिखारी दास ब्रज भाषा के सुप्रसिद्ध आचार्य एवं कवि हैं । नायिका भेद पर इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'श्रृंगार निर्णय' है । इसकी रचना संवत 1807 में हुई थी ।

भिखारी दास ने अपनी परिपाटी स्वयं स्वतंत्र रूप से निर्धारित की । परवर्ती कवि आचार्यों को इनका मत मान्य नहीं हुआ ।

नायिका-भेद-कथन की परम्परा बराबर जारी रही । रीतिकाल में नायिका भेद पर अच्छी रचनाएँ करने वाले अन्य कवियों में मुख्य हैं- पद्माकर, बेनीप्रवीन, प्रतापसिंह, ग्वाल, द्विजदेव, नवीन, सेवक, सरदार नंदराम, लछिराम, शिव, प्रतापनारायणसिंह, जगन्नाथ प्रसाद'भानु' और बिहारी लाल भट्ट ।

## :- राजधर सतसई में नायिका नायक भेद -:

जैसा, कि हम निवेदन कर चुके हैं, कि भानुदत्त ने अपने समय तक प्रचलित नायिका नायक भेदों में महत्वपूर्ण भेदों का व्यवस्था पूर्ण संकलन प्रस्तुत कर हिन्दी रीति कालीन आचार्यों का इस विषय में दिशा प्रदर्शन किया ।[1] अतः हमने राजधर सतसई में नायिका नायक भेद विवेचन के लिए भानुदत्त की 'रस मंजरी' को एवं कहीं-कहीं जहाँ (साहित्य दर्पण में) अधिक विकास हुआ है, वहाँ सा०द० के भेद-प्रभेदों को मूलाधार बनाया है । विवेचन करते हुए साथ ही, टिप्पणी में यह भी निर्दिष्ट कर दिया है, कि उनमें किन किन संस्कृत काव्य शास्त्रियों के भेद प्रभेदों का अनुकरण अथवा अन्तर्भाव हो जाता है ।

विभिन्न संस्कृत काव्य शास्त्रियों के नायिका भेद के लक्षणों के विकास क्रम का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है, कि कभी कभी एक आचार्य के भेद-प्रभेदों का दूसरे आचार्य के प्रभेदों में अन्तर्भाव होने पर भी, उनमें सूक्ष्म अन्तर बना ही रहता है, और उसका अपना एक विशेष महत्व होता है । अतः इस सूक्ष्म अन्तर को ध्यान में रखते हुए, नायिकाओं का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है ।

ऐसी स्थिति में, जिस भेद प्रभेद के अन्तर्गत नायिका के प्रति राजधर के भाव का समावेश अधिक अच्छी तरह हो सकता था, उसी के अन्तर्गत नायिका को रख कर विवेचन प्रस्तुत किया है ।

कुछ भेद प्रभेद हिन्दी आचार्यों ने विकसित किए हैं, उनका भी यथा स्थान उल्लेख कर दिया गया है ।

भानुदत्त के अनुसार- 'श्रृंगार रस के आलम्बनों (नायिका नायक) में भी नायिका ही श्रेष्ठ है, अतः नायक से पूर्व नायिका का ही निरूपण किया जाता है[2]।'

---

(1) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग-6 सं० डा० नगेन्द्र पृ० 106

(2) 'तदालम्बन विभावत्वेन नायिका तावन्निरूप्यते'
रस मंजरी, भानुदत्त (हिन्दी व्याख्याकार) पं० जगन्नाथ पाठक पृ०-6

अतः, हम प्रथमतः नायिका भेद का विवेचन करेंगे । वैसे भी राजधर सतसई एक नायिका प्रधान काव्य है ।

## नायिका भेद -

आचार्यों ने यद्यपि विभिन्न आधारों- धर्म ।अथवा कर्म। वय क्रम, अवस्था, गुण, जाति, देश, प्रकृति, तत्व आदि- को लेकर नायिकाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, । तदपि हम राजधर सतसई में श्रृंगार रस के महत्वानुसार क्रमशः इनका विवेचन करेंगे ।

।1। धर्म ।अथवा कर्म। के अनुसार तीन भेद-

यह वर्ग वस्तुतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और समस्त नायिका भेद का मूलाधार है । नायिका में भी नायक के समान- त्याग, आर्जव आदि सामान्य गुण-यथा संभव उपनिबद्ध किये जाया करते हैं । धर्मानुसार नायिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं -[1]

।1। स्वकीया अथवा स्वीया

।2। परकीया अथवा अन्या

।3। सामान्या ।वेश्या।

---

।1। अ- दशरूपक - 2/15

ब- साहित्य दर्पण- 3/56

स- काव्यानुशासन- 7/23

द- रस मंजरी- कारिका-3 पृ0 8

## :- स्वकीया अथवा स्वीया -:

नायिका भेद के आचार्यों ने समस्त नायिकाओं में स्वकीया को ही श्रेष्ठ माना है । भरत मुनि कृत नाट्य शास्त्र में इसे 'कुलीना'[1], दशरूपक में इसे शील एवं सरलता से युक्ता,[2] साहित्य दर्पण में इन गुणों के अतिरिक्त गृह-कर्म में तत्पर और पतिव्रता कहा है ।[3] रस मंजरी ।भानुदत्त। में इसे स्वामी में ही अनुरक्ता कहा है,[4] क्योंकि 'स्वामी' शब्द सामान्यतः प्रभु वाची है, स्व पति परक नहीं । पति वही होता है, जो परिणय करता है, अतः वह परिणेता भी है । अतः श्रृंगार मंजरीकार ने उसको और अधिक स्पष्ट करने के लिए 'स्वपरिणेतर्यनुरक्ता' कहा है ।[5] तत्पश्चात् रस मंजरी में स्वकीया की चेष्टाओं- पति सेवा, शील, आर्जव, क्षमा - के अन्तर्गत उसके सद्गुणों का भी उद्घाटन किया गया है ।[6] स्वकीया में ही आठ प्रकार के गुणों- यौवन, रूप, गुण, शील, प्रेम, कुल, भूषण और वैभव- का विकास पाया जाता है । अतः स्वकीया को 'अष्टांगवती' कहा गया है । वह भले ही 'समस्तरसकोविदा' हो किन्तु उसका प्रेम कामानुराग पर आश्रित नहीं, बल्कि कर्तव्य पर आधृत होता है । अतः वह आदर्श नायिका है ।

अतः संक्षेपतः हम कह सकते हैं, कि काव्य शास्त्रियों ने आदर्श नायिका ।पत्नी। के स्वरूप की अभिव्यक्ति 'स्वकीया नायिका' के रूप में की है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। नाट्य शास्त्र 24/143
।2। दशरूपक - 2/15
।3। साहित्य दर्पण- 3/57
।4। रस मंजरी, भानुदत्त ।हि0व्या0- पं0 जगन्नाथ पाठक। पृ0-10
।5। - वही - पृ0-11
।6। - वही - पृ0-12

राजधर सतसई में स्वकीया वर्णन -

राजधर सतसई में श्रृंगार वर्णन के अन्तर्गत प्रायः स्वकीया का ही वर्णन हुआ है ।

प्रेम और शील -

मायके ।नैहर। में पत्नी, अपने माता-पिता, बड़े भाई आदि के समक्ष अपने पति से भी पर्दा किया करती है । यथा संभव पति के सामने भी नहीं आती है ।

राजधर सतसई की एक नायिका ।दीर्घकाल से। मायके में है । उसका पति ।संभवतः उसे लिवाने। आया है । वह पति से मिलन हेतु अत्यधिक उत्कण्ठित है । यदि वह पति से मिलने जाती है, तो उसे अपनी हँसी उड़ने की आशंका है । अतः वह अपनी मर्यादा का पालन कर रही है -

इतै चाह पिय मिलन की, इत हाँसी की संक ।
तिय हिय की भइ माइके, दुहूँ भाँति की बंक ।।[1]

यहाँ स्वकीया का प्रेम और शील दोनों ही देखे जा सकते हैं ।

पातिव्रत्य -

स्वकीया पति को ही परमेश्वर मानती है । वह अपने पति के रूप का आवाहन नयन-पीठिका पर करती है और उसकी मानसिक पूजा ।आराधना। कर रही है -

आवाहनु तुव रूप को, नैन पीठ पिय कीन ।
पूजि भली विधि मानसिक, पलक सुसंपुट दीन ।।[2]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। राजधर सतसई, दो० सं०- 312

।2। वही दो०सं०- 431

इसी प्रकार राजकवि सतसई में स्वकीया के यौवन, रूप, और आभूषण[1] तथा प्रेम[2] का वर्णन भी किया गया है।

## स्वकीया के भेद -

शृंगार रस की आलम्बन-रूपा नायिका का यौवन एवं कामाभिव्यक्ति अत्यन्त रमणीय होने के कारण कवियों के आकर्षण का केन्द्र रही है। वयक्रमानुसार उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं भावात्मक स्तर का विकास होता है।

उसके यौवन और कामाभिव्यक्ति (लज्जा और काम का अनुपात) के आधार पर आचार्यों ने स्वकीया के तीन भेद किए हैं -

(1) मुग्धा (2) मध्या (3) प्रगल्भा अथवा प्रौढ़ा

## 1- मुग्धा -

भानुदत्त ने रस मंजरी में मुग्धा को 'अंकुरित यौवना' कहा है।[3] इसके दो भेद हैं - (1) अज्ञात यौवना (2) ज्ञात यौवना[4]

ज्ञात यौवना के दो प्रभेद हैं - (अ) नवोढ़ा (ब) विश्रब्ध नवोढ़ा[5] इसकी चेष्टाएँ हैं- (लज्जा से ओत प्रोत) मनोहर क्रियाएँ, मृदु कोप एवं नए नए आभूषणों की इच्छा।[6]

यहाँ हम राजकवि के 'मुग्धा नायिका' के प्रति व्यक्त भाव को अधिक स्पष्ट करने हेतु भानुदत्त कृत रस मंजरी के भेदों के अन्तर्गत रखकर अन्य आचार्यों के भेदों का भी उल्लेख करते हुए विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं-

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) विस्तृत विवरण के लिए देखिए- इसी प्रबंध में शीर्षक- 'सौन्दर्य भावना'
(2) - वही - - 'प्रेम का आदर्श'
(3) रस मंजरी, भानुदत्त (हि०व्या० पं० जगन्नाथ पाठक) पृ०-15
(4) - वही - पृ०-16
(5) - वही - पृ०-17
(6) - वही - पृ०-18, 19

अंकुरित यौवना -

इस लक्षण से मुग्धा नायिका के शरीर में यौवन की स्थिति का बोध होता है। उसकी अवस्था वयःसंधि काल होती है। वह बालावस्था से यौवनावस्था में प्रविष्ट हो रही होती है, अतः उसका यौवन नवीन होता है। इसीलिए दश रूपककार ने उसे 'वयो-मुग्धा' कहा है।[1] प्रथमतः उसके शरीर में यौवन के अवतरित होने से साहित्य दर्पणकार ने 'प्रथमावतीर्ण यौवना' कहा है।[2] और इस समय ही उसके शरीर में यौवनजन्य परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगते हैं। जैसे- कुचों का निकलना, कटि का क्षीण होना, नितम्बों का भारी होने लगना आदि। उसके शरीर से यौवन-चिन्ह-कुच आदि निकलते समय, ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो उसके शरीर (भूमि क्षेत्र) से यौवन (रूपी वृक्ष) का अंकुरण हो रहा हो। अतः भानुदत्त ने इस अवस्था में मुग्धा नायिका को 'अंकुरित यौवना' कहा है।[3]

शारीरिक स्थिति की वर्णना के समय रसलीन का मुग्धा के प्रति जो भाव व्यक्त हुआ है, वह 'अंकुरित यौवना' के लक्षण में ही अन्तर्निहित है।

यौवन के आरम्भ काल में एक विशेष प्रकार का तेज[4] (अयत्नज अलंकार शोभा के अन्तर्गत) नायिका के शरीर में व्याप्त होने लगता है। अतः रसलीन ने अंकुरित यौवन को यह कहकर व्यक्त किया है कि तरुनी-तन में तरुनाई इस प्रकार शोभायमान है, मानो 'तम' में नई ज्योति प्रस्फुटित' हो रही हो।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) दशरूपक- 2/26
(2) साहित्य दर्पण- 3/58
(3) रस मंजरी -पृ० 15 (यहाँ भानुदत्त ने लक्षणा से कार्य लिया है।)
(4) साहित्य दर्पण- 3/95, (इस प्रकार की 'शोभा' का वर्णन रसलीन ने अन्यत्र भी किया है- देखिए र०प्र०दो०-63, 525, 402

'अंकुरित यौवना' के अंकुरित ज्यौं होवनीता द्रष्टव्य है-

कुच अंकुर पाइवौ कहत, नैन कुम्भ उपि होति ।
गाति [illegible] लसनई, लखौ [illegible] नहिं जाति ।।[1]

नायिका के यौवन के साथ ही काम का समानान्तर विकास होता है। ज्यौं-ज्यौं काम देव नायिका के हृदय में प्रवेश करता है, त्यौं-त्यौं संकोच सहित कुच बाहर आने लगते हैं -

ज्यौं-ज्यौं बसतु प्रवेसु हिय, मदन महीपति आनि ।
त्यौं-त्यौं निकसत बाहिर, कुच सकोच मन मानि ।।[2]

भानुदत्त के 'अज्ञात यौवना' और ज्ञात यौवना' भेद का आधार नायिका की बौद्धिक स्थिति ही है।

(1) अज्ञात यौवना -

मुग्धा बौद्धिक रूप से अपरिपक्व रहती है। जिसको यह भी न ज्ञात हो कि उसके अंग-अंग में यौवनागम हो गया है, उसे 'अज्ञात यौवना' कहते हैं।

(2) ज्ञात यौवना -

जिस मुग्धा नायिका को अपने यौवन का ज्ञान हो, उसे ज्ञात यौवना कहते हैं।

नायिका का विवाह होने जा रहा है। हल्दी और महावर लगाये वह 'मड़वा' (मण्डप) के नीचे (भावी समागम की कल्पना करके) फूली-फूली फिर रही है -

हरद चढ़ी महावर चढ़ी, चढ़ी देह दुति देव ।
फूली-फूली फिरति है, मड़वा लहुरी लेखि ।।[3]

---

(1) रामधार सतसई दो०सं०- 242
(2) रामधार सतसई दो०सं०- 289
(3) रामधार सतसई दो०सं०- 125

इस नायिका को अपने यौवन का ज्ञान है, तभी तो वह फूली नहीं, समा रही है, अतः 'ज्ञात यौवना' है ।

दश रूपक की 'काम मुग्धा'[1] एवं साहित्य दर्पण की 'प्रथमावतीर्ण मदन विकारा'[2] का अन्तर्भाव 'ज्ञात-यौवना' में हो जाता है।

नायक के समक्ष समागम के लिए उपस्थित होने पर, मुग्धा नायिका की मानसिक स्थिति के आधार पर भानुदत्त ने ज्ञात यौवना भेद के दो प्रभेद और किए हैं :-

(अ) नवोढा (ब) विश्रब्ध नवोढा

(अ) नवोढा -

जो नव विवाहिता वधू लज्जा और भय के कारण पति का संग नहीं चाहती, उसे नवोढा कहते हैं । 'नवोढा' का शब्दार्थ है- प्रथम बार प्रिय समागम को प्राप्त या नव विवाहिता नायिका ।[3]

प्रथमतः प्रिय समागम के अवसर पर लज्जा होना स्वाभाविक ही है, अतः दश रूपककार ने इसे 'लज्जया संवृतानुराग निबन्धना' कहा है ।[4] तथा साहित्य दर्पणकार ने 'समधिक लज्जावती' कहा है ।[5] ऐसी स्थिति में नायिका का अपनी ओर से पहल करने का कोई प्रश्न नहीं उठता तथा नायक के पहल करने पर उसकी लज्जा-भय-जन्य रति के प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ ही बन पड़ती हैं । उसकी ये रति प्रतिकूल चेष्टाएँ भी रसिक नायक के लिए मन मोहक होती हैं, इस स्थिति में नवोढा ही दश रूपक और साहित्य दर्पण के अनुसार 'रत-वामा' हो जाती है ।[6]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) दश रूपक - 2/16
(2) साहित्य दर्पण - 3/58
(3) 'लज्जा भय पराधीन रतिर्नवोढा' रस मंजरी- पृ0 17
(4) दश रूपक - 2/16
(5) साहित्य दर्पण - 3/58
(6) दश रूपक - 2/16 एवं सा0द0 3/58

## रत वामा -

राजधर सतसई की एक नवोढा-नायिका 'रमण-भवन' में (सखियों द्वारा भेजी) गई । नायक को देखकर 'केलि' का विचार मन में आते ही, वह (लज्जा और भय के कारण) उल्टे पैरों वापिस लौट पड़ी-

रवन भवन में जात ही, मन विचार लिय केलि ।
लखत ललन को फिर चली, पैंडहि पाछ पठेलि ।।[1]

नायक को देखकर ही नायिका का उल्टे पैरों लौट पड़ना, उसकी रत-वामता सिद्ध करता है ।

उल्टे पैरों लौट आई नवोढा को सखियाँ पुनः 'रमण-भवन' में जाने को ज्यों-ज्यों समझाती हैं, त्यों-त्यों उसका हृदय घबराहट से 'धक-धक' कर रहा है-

ज्यों-ज्यों सिखरीं कहत हैं, अबकै फिरि तुम जाउ ।
त्यों-त्यों तिय हिय धकधकी, कीजै कहा उपाउ ।।[2]

अतः जैसे तैसे समझाकर सखियाँ उसे 'रमण-भवन' तक साथ छोड़ने जाती हैं, फिर भी वह नायक की परछाहीं तक से शंकित है-

संग आयति है है सखिन के, संकित सी उर माँह ।
चकित चित्त सी भवन में, निरख नाह की छाँह ।।[3]

## समधिक लज्जा वती -

राजधर सतसई की एक नायिका को सखियाँ तो साथ छोड़कर चली जाती हैं, किन्तु सूने भवन में नायक को देखकर नायिका का मुख उदित होते हुए सूर्य की भाँति लज्जा जन्य-रक्ताभ हो उठता है-

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई, दोहा सं०- 528
(2) - वही - 313
(3) - वही - 485

सुन्दरि सूने भवन में, आये लाल सुजानु ।

चंद वदन दुति यों भई, मानों ऊगे भानु ।।[1]

प्रथम समागम के अवसर पर नायक के द्वारा मुख स्पर्श करने से नायिका डर रही है । यह तो गनीमत है कि। दीपक ।का प्रकाश। नायिका का साथ दे रहा है ।अन्यथा। तो अन्धकार में वह और भी डर जाती।-

निज छाया दिखु देत है, माने निसि में साथु ।

बार बार पिउ धरत है, कुच महेस सिर हाथु ।।[2]

नवोढा, पति के हृदय पर सुशोभित मणि में अपने ही प्रतिबिंब को देखकर आलिंगन करते समय भयभीत हो रही है -

पिय हिय मनि प्रतिबिंब लखि, तिय हिय नहि पतियाहि ।

आलिंगन करतनि नटत, उर उपजत है भीति ।।[3]

<u>मृदुमान वती</u> -

'लज्जा भय पराधीन रति' होने के कारण नवोढा का मान भी मृदु ही होता है, अतः दश रूपक में 'मृदुकुपि'[4] साहित्य दर्पण में मृदुमान वती[5] तथा रस मंजरी में मुग्धा की चेष्टा में 'कोपेमार्दवम्'[6] का विवेचन है ।

यथा, नायक से किसी कारणवश कुपित होकर नायिका ने मौन धारण करके हठ पूर्वक घूंघट तान लिया है ।-

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। राजधर सतसई, दो०सं० - 527
।2। - वही - 34
।3। - वही - 122
।4। दश रूपक - 2/16
।5। साहित्य दर्पण, 3/58
।6। रस मंजरी, पृष्ठ 18

पानि कहति नाहि कान किहि, आनन पटु हठि तान ।
जानत हानि न आपनी, अजहूँ मानिनि मान ।।[1]

यहाँ नायिका का हठ पूर्वक घूँघट तान कर मान मौन धारण करना ही उसके मुग्धात्व को प्रदर्शित करता है । (वह न तो नायक को ताने दे पा रही है, न फटकार) इस तरह उसका मान मुग्ध ही है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजधर ने 'लज्जा भय पराधीन रति' की मनः स्थिति में पड़ी हुई 'नवोढा' का सुन्दर चित्रण किया है ।

मध्या -
======

'मध्या वह (स्वकीया) नायिका है जो रंग बिरंग की रति लीलाओं में निपुण हो चुकी होती है । जिसमें काम - पिपासा बढ़ती दिखाई दिया करती है, जिसका यौवन उभार पर होता है, जिसे प्रणयालाप में कोई विशेष झिझक नहीं होती और जिसकी रति लज्जा अधिक नहीं रहा करती है ।

साहित्य दर्पणकार की दृष्टि से 'मध्या-नायिका' के 5 भेद हैं -

(1) विचित्रसुरता (2) प्ररूढयौवना (3) प्ररूढस्मरा
(4) ईषत्प्रगल्भवचना (5) मध्यमव्रीडिता[2]

राजधर के 'मध्या' नायिका के प्रति भाव को स्पष्ट करने के लिए साहित्य दर्पण के भेदों के अन्तर्गत रस मंजरीकार का मत भी उल्लिखित कर दिया है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई- दोहा सं0- 182
(2) साहित्य दर्पण- 3/59

## प्रौढ़ यौवना एवं प्रौढ़ रमणी -

प्रिय के प्रेम को प्राप्त नायिका का सौभाग्य चन्द्रमा की कला की भाँति दिन दिन बढ़ रहा है जिसको देखकर सौत को असूया एवं सखियों को आनंद होता है -

दिन दिन लखि बढ़ती कला, पिय सुहागु सुभ चंद ।
सौत जरी चित मैं घनी, सखियनु कोटि आनंदु ।।[1]

## मध्यम व्रीड़िता -

जिस नायिका में लज्जा और काम समान रूप से अर्थात् तुल्यबल होकर रहें, उसे मध्या कहते हैं[2] अतः साहित्य दर्पणकार ने उसे 'मध्यम व्रीड़िता' कहा है ।[3] मध्या की लज्जा उस मात्रा तक सीमित नहीं होती कि वह उसके मन्मथ को दबा दे । लज्जा को पराजित करने वाला उसका मन्मथ नहीं रहता, तात्पर्य यह है कि दोनों की स्थिति न्यूनाधिकभावन शून्य होती है ।

मध्या नायिका के अन्तर में लज्जा और काम दोनों का परस्पर संघर्ष तो कुछ होता है, लेकिन दोनों में से कोई भी विजयी नहीं होता । काम उसे प्रियतम के प्रति प्रवृत्त करता है, लेकिन लज्जा तत्काल उत्पन्न होकर उसे निवृत्त कर देती है । -- 'चाहने' और 'न कर सकने' की परस्पर द्वन्द्वात्मक स्थिति मध्या नायिका के स्वरूप का मूल व्यंजक है ।[4]

**उदाहरणार्थ--** नायक नायिका का आँचल पकड़ता है, तो उसके नैन चंचल हो उठते हैं और वह 'नहीं-नहीं' करती है ।-

दृग चंचल, चंचल करनि, अँचल पकरति सोई ।
नाहीं सींचक मुँह लगी, नाहीं लगि फिर होई ।।[5]

---

(1) राजधर सतसई, दोहा सं0- 300
(2) 'समानलज्जामदना मध्या,' रस मंजरी पृ- 33
(3) सा0द0 3/59
(4) रस मंजरी (हिन्दी व्या0 पं0 जगन्नाथ पाठक) पृ0-33
(5) राजधर सतसई- दोहा सं0- 139

यहाँ नायिका के नेत्रों के चांचल्य से उसका रति भाव तथा उसके 'नहीं-नहीं' करने (स्वीकृतिमूलक निषेध) में लज्जा व्यंजित हो रही है, अतः नायिका मध्या है ।

नायिका अपनी लज्जा के कारण नायक को प्राप्त नहीं कर पा रही है वैसे नायक को प्राप्त करने की उसकी इच्छा है । अतः नायिका 'मध्या' है -

गई न जौ लगि छूट कै, पिय ज्यौं आये साथु ।
नैननि ही लागी फिरै, लोल लाज लौ साथु ।।[1]

नायिका पति के दर्शनार्थ बेचैन है, लेकिन लज्जा के कारण निकट जाने में डर रही है -

लो गति अति अद्भुत भई, दई कही नहिं जाइ ।
ज्यों पिय देखै ललकैं, देखत निकट डराइ ।।[2]

अतः, नायिका मध्या है और दोहे 'मध्यम व्रीडिता' मध्या नायिका की मनः स्थिति के द्योतक है ।

<u>प्रौढ़ा (प्रगल्भा)</u> -

वह स्वीया, जिसमें स्मरोन्माद चढ़ती पर हो, जिसका यौवन पूरे उभार पर पहुँच गया हो, जिसमें रति लीला के समस्त कौशल समा चुके हों, जिसके हाव भाव पूर्ण रूपेण विकसित हो चुके हों, जिसमें रति लज्जा की थोड़ी ही मात्रा बच गई हो और वस्तुतः जो रति लीला में नायक को भी पछाड़ने की शक्ति रखने लगी हो, 'प्रगल्भा' नायिका कही जाया करती है ।[3] किन्तु नायिका की समस्त रति कला मात्र पति के लिए ही होती है ।[4] तभी तो वह स्वकीया रह सकेगी ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामसर सतसई, दोहा सं०- 282
(2) रामसर सतसई, दोहा सं०- 240
(3) साहित्य दर्पण 3/60
(4) रस मंजरी-(हिन्दी व्या० पं० जगन्नाथ पाठक) पृ०-38

साहित्य दर्पणकार ने प्रगल्भा नायिका के 6 भेद किए हैं- (1) स्मरान्धा (2) गाढ़ तारुण्या (3) समस्त रत कोविदा (4) भावोन्नता (5) स्वल्प व्रीडा (6) आक्रान्ता ।[1]

रस मंजरीकार ने प्रौढ़ा के 2 (दो) उपभेद किए हैं- (1) रति प्रीतिमती (2) आनन्द सम्मोहवती ।[2]

प्रौढ़ा की सबसे बड़ी विशेषता है - काम वासना की स्पष्टतम अभिव्यक्ति, उत्कण्ठा की अपेक्षा लज्जा की मात्रा बहुत कम रह जाती है । श्रृंगार मंजरीकार ने इसे 'मदनविजिता लज्जा' कहा है ।[3]

<u>स्मरान्धा प्रगल्भा -</u>

यह नायिका कामावेग के कारण अंधी-सी हो जाती है । इसे काम के अलावा कुछ नहीं सूझता । अपने शरीर की सुध बुधभी नहीं रहती है -

बिनु भूषन भूषित भई, अंग अंग जोबन जोति ।
<u>बूड़ी सुरत संग्राम निसि</u>, <u>सुरति न तन की होति</u> ।।[4]

इस नायिका की रति उद्दाम होती है, जिसके कारण उसके मोती और मणियों के हार टूट गए हैं -

टूटि गय उर हार हैं, मोती मनिनि समेत ।
स्वेद बिंदु उर परसिकर, कैसी शोभा देत ।।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) साहित्य दर्पण- 3/60
(2) रस मंजरी, (हि०व्या०) पृ०-40
(3) रस मंजरी, (हि०व्या०) पृ०-40
(4) रसराज सतसई- दोहा सं०- 168
(5) - वही - 165

समस्तरस कोविदा -

'अधर रदन,' 'नखच्छेद' आदि इसी नायिका के शरीर पर सुरतोपरान्त देखे जा सकते हैं -

अधर रदन, छद नख हिये, सिथिल देख द्युति गात ।
पिय तिय के अभिलाष सब, पूरन भये प्रभात ।।[1]

'पिय' (नायक) की समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण करने के साथ अपनी सब अभिलाषाएँ पूर्ण कर ली हैं । समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण करने से नायिका का 'समस्त रस कोविदा' होना व्यंजित होता है ।

गाढ़-तारुण्या -

इसका यौवन चरम विकास पर पहुँच जाता है । देखिए, उरोजों के उभार के कारण इसकी कंचुकी फटी जा रही प्रतीत हो रही है -

ऐसो देखे मैं न कहुँ, रचे पहरई मैन ।
सदा फटीकी कंचुकी, फटे सदा पट मैन ।।[2]

भाव प्रगल्भा -

यह नायिका रति लीला में नायक को भी पछाड़ने की शक्ति रखती है । देखिए, रामसहाय की नायिका सुरत-समर में जय पाती है -

सुबरन बर छवि करन लौं, लखि दुख पैगनि लीन ।
सुरत समर पुरि पलक में, अब जय पाइ प्रवीन ।।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामसहाय सतसई, दोहा संख्या- 167
(2) - वही - 286
(3) - वही - 52

प्रौढा की उद्दाम रति का चरम बिन्दु विपरीत रति काल में नायक को सुरत समर में पराजित करने की तत्परता में देखा जाता है-

कुच उलटे विपरीत में, राजत वेनी वेष ।
काम जीति की कामना, जनु लघु ध्वज महेश ।।[1]

## भावोन्नता -

यह नायिका अपना काम-भाव व्यक्त करने में अत्यन्त चतुर प्रतीत होती है -

दृग फेरहिं, फेरति करनि, कुच, छवि सहज सुभाहि ।
देखो अंग-अंग चतुरई, रही फिरावत मांहि ।।[2]

नायिका 'कुचों पर हाथ फिराकर' नायक को स्पष्ट निमन्त्रण दे रही है, अतः 'भावोन्नता प्रगल्भा' है ।

भानुदत्त ने चेष्टा भेद से प्रगल्भा के दो भेद किए हैं- पहली चेष्टा है 'रति प्रीति' दूसरी चेष्टा है 'आनन्द के कारण सम्मोह या मूर्छा की अवस्था'। ऐसी दशा में पहुँची हुई प्रगल्भा को 'आनन्द सम्मोहवती' कहते हैं, इसे श्रृंगार मंजरी कार ने 'रत्यानन्द परवशा' कहा है ।

## आनन्द सम्मोह वती प्रगल्भा -

राजधर सतसई की एक नायिका के मनमें (रत्यानन्द के कारण) सायुज्य पद प्राप्त कर लिया है । नैन मुकुलित हैं । उसकी तन की गति का वर्णन कौन कर सकता है -

मनु पायौ सायुज्य पद, नैननि लहि निर्वानि ।
तन की गति कहि कौन सकि, सो तन तजनि सुजान ।।[3]

यहाँ नायिका के अलौकिक रत्यानन्द का वर्णन किया गया है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई, दोहा सं0- 166
(2) - वही - 124
(3) - वही - 73

स्वीया भेद के अन्तर्गत मध्या और प्रगल्भा नायिकाओं के मान की अवस्था में अर्थात् अपने पति को अपराधी जानकर कोप के अवसर पर प्रत्येक के तीन भेद हो जाते हैं।

**धीरा**

नायक के अपराध पर जो अपने कोप का व्यंग्य रूप से (अर्थात् अस्पष्ट रूप से) प्रकाशन करे, वह धीरा होती है।

**अधीरा**

जिसका कोप स्पष्ट लक्षित हो जाता है, वह अधीरा कहलाती है।

**धीराधीरा**

जिसका कोप कुछ अस्पष्ट और कुछ स्पष्ट रहता है, उसे धीराधीरा कहते हैं।

नायक के द्वारा अपराध किए जाने पर धीरादिक तीनों नायिकाएँ किसी न किसी रूप में अपने कोप को व्यक्त करती हैं, लेकिन तीनों में विभिन्नता होती है।

**(1) मध्या धीरा -**

मध्या धीरा के कोप को व्यंजित करने वाली वाणी होती है। यहाँ वाणी से तात्पर्य 'वक्रोक्ति' से है। इसी से व्यक्त हो जाता है, कि वह नायक के अपराध करने से उस पर कुपित हो गई है।

**(2) मध्या अधीरा -**

मध्या अधीरा कोप की अवस्था में परुष या अप्रिय वचनों का प्रयोग करती है।

**(3) मध्या धीराधीरा -**

वक्रोक्ति युक्त रुदन करने लगती है।[2]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रस मंजरी, भानुदत्त (हि०व्या० पं० जगन्नाथ पाठक) पृ०-47
(2) - वही पृ०-50, 51

(4) प्रगल्भा धीरा -

नायकापराध से कुपित होकर सुरत में उदासीन होने के भाव का आचरण करने लगती है । मन बिल्कुल नहीं देती । इसी से व्यक्त हो जाता है, कि वह कुपित है ।

(5) प्रगल्भा अधीरा-

प्रगल्भा अधीरा तर्जन, अर्थात् डाँट-डपट, फटकार और मार-पीट हाथापाई भी करने लगती है ।

(6) प्रगल्भा धीराधीरा -

रत में औदासीन्य और तर्जना ताडन दोनों करती है ।[1]
राजमल सतसई में खण्डिता नायिका की व्यंग्योक्तियों का ही वर्णन किया गया है अतः इस नायिका को हम मध्या-धीरा[2] कहेंगे ।
'अलसौहैं दृगनि', 'बिथुरे बैचनि बाग' एवं 'लटपटई' चाल चलता हुआ नायक खण्डिता नायिका के सामने आता है -

अलसौहैं सोहै दृगनि, बिथुरे बैचनि बाग ।
लटपटई आए यहाँ, मेरे बड़े सभाग ।।[3]

नायिका 'मेरे बड़े सभाग' कह कर अपना कोप व्यंग्य द्वारा प्रकट करती है ।

'मुख से मुख और आँखों से आँखें मिलाकर, मस्तक से मस्तक को दबाकर अपने शरीर के भार को डाल देना 'ललाटिका आलिंगन' कहलाता है ।[4] निम्नलिखित दो दोहों में अन्य नायिका के समागम के समय किया हुआ 'ललाटिका' आलिंगन ही नायक के प्रति खण्डिता के कोप का कारण है । ललाटिका आलिंगन के समय नायक के माथे पर अन्य नायिका की टिकुली लगी चली आई, तो खण्डिता नायिका

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रस मंजरी, (हि०व्या०-पं० जगन्नाथ पाठक) पृ०-5।
(2) 'मध्यमा धीराधीरा: कोपस्य गोपायिका' - रस मंजरी- पृ-50
प्रियं सोत्प्रास वक्रोक्त्या मध्या धीरा दहेद् रुषा -सा०द० 3/6।
(3) राजमल सतसई दो०सं०- 42।
(4) कामसूत्र वात्स्यायन - 2/2/27

यह कहकर व्यंग करती है, कि लालन तो त्रिनैन हो गए हैं, अब भी कामदेव नहीं डरता है -

भरी भाल भृकुटि भई, टिकुली सो सुख दैन ।
अजौ काम डरपे नहीं, लालन भये त्रिनैन ॥[1]

कभी स्वाभाविक आलिंगन के कारण ही अन्य नायिका की बेंदी की उल्टी छाप भी नायक के माथे पर लगी चली आई है -

उलटी कीनी रीति यह, उलटी बेंदी भाल ।
उर तौ छाड़ि छाप दै, छिनकु छबीले लाल ॥[2]

अन्य नायिका ने नायक के पलक का चुम्बन कर लिया, जिससे उसकी पलक पर पीक का चिन्ह बना चला आया । खण्डिता नायिका का यह कहना कि 'पलक पीक सुख दैन', उसके क्रोध का व्यंग्य द्वारा प्रकाशन ही है -

कीनों चुम्बन चतुर पिय, पीक पलक सुख दैन ।
कौन भाँति छोटे भए, इते बड़ेरे नैन ॥[3]

सम्भवतः जभी नायक अपनी बार-बार आँखें बन्द करता है, तो खण्डिता नायिका कहती है कि नायक अपनी प्यारी अन्य नायिकाओं को ध्यानावस्था में देख आता है -

बार बार मूँदति दृगनि, मैं यह लई विचारि ।
[illegible] देखि देखि आवत हिये, वही जु प्यारी नारि ॥[4]

इस प्रकार मध्याधीरा नायिका वक्रोक्ति द्वारा नायक को ताने मार कर अपना क्रोध प्रकट करती है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामसहाय सतसई, दोहा संख्या- 201

(2) - वही - 148

(3) - वही - 224

(4) - वही - 223

## :- परकीया -:

काव्य शास्त्र के समस्त आचार्यों ने नायिका के परकीया भेद को स्वीकार किया, किन्तु सर्व प्रथम रस मंजरीकार ने परकीया नायिका का लक्षण स्पष्ट रूप से दिया है - 'अप्रकटपरपुरुषानुरागा परकीया'[1] अर्थात् जिस नायिका का पर-पुरुष में होने वाला अनुराग प्रकट नहीं होता, उसे परकीया कहते हैं। 'अप्रकट' शब्द का अर्थ सर्वथा अप्रकट नहीं बल्कि किसी आत्मीय (सखी आदि) का अवगत हो जाने पर भी अगर उस अनुराग में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचती हो, तब तक उसे 'अप्रकट' ही समझना चाहिए।[2] इसकी (परकीया की) समस्त चेष्टाएँ गुप्त ही रहती हैं।[3]

**परकीया के भेद -**

परकीया नायिका शास्त्रों में दो प्रकार की मानी गई है- (1) कन्या (2) परोढा अथवा अन्योढा (अन्य व्यक्ति से विवाहिता स्त्री)।[4]

### (1)- कन्यका -

कन्यका वह परकीया नायिका है, जो नव युवती और लज्जा शील हुआ करती है तथा अविवाहिता है।[5] रस मंजरी कार के अनुसार अविवाहित अवस्था में ही किसी से अनुराग करने वाली और उसी के साथ विवाह की इच्छा रखने वाली कुमारी नायिका को कन्यका कहते हैं।[6]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रस मंजरी, (हि०व्या०) पृ० 79
(2) वही पृ० 80, 81 और 972
(3) वही पृ० 79, 80
(4) दश० 2/20, सा०द० 3/60, र०म० पृ०-81
(5) सा०द० 3/67
(6) रस मंजरी (हि०व्या०) पृ०- 82

यतः, रीतिकालीन काव्य में राधा कृष्ण का श्रृंगार वर्णन साधारण नायिका-नायक के रूप में हुआ है, अतः राधा एवं अन्य गोपियों का कृष्ण के प्रति पूर्वानुराग वर्णन 'कन्यका' नायिका से ही सम्बन्धित है ।

रामसहाय सतसई की एक 'कन्यका' नायिका, नायक को मोहित करने गई थी, किन्तु उस पर स्वयं मोहित हो गई है -

मोहन कौं मोहन गई, मोही आपहु जाइ ।
कहौ कौन धौं कहि सकै, ठगु ज्यौं जातु ठगाइ ॥[1]

कन्या नायिका (राधा) 'चाँई' पर चढ़कर, नायक कृष्ण से आँखें चार कर रही है -

चाँई चढे चितवत रहत, चख चकोर की रीति ।
चंद बदन चित चलत तुव, सुनि राधे करि प्रीति ॥[2]

एक कन्यका नायिका तो, नायक की ओर मुस्कराती हुई, 'गागरि' पर 'गागरिधरत' के मिस से भुज मूल अथवा त्रिवली दिखाने की चेष्टा कर रही है -

भुज उठाइ बहु भाइ सौं, लालन तन मुसक्याइ ।
गागरि पर गागरि धरत, नागरि चरन उचाइ ॥[3]

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के शीर्षक - 'पूर्वानुराग' के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं ।

---

(1) रामसहाय सतसई दोहा सं०- 475
(2) रामसहाय सतसई दोहा सं०- 82
(3) रामसहाय सतसई दोहा सं०- 31

**2 परोढ़ा या परिणीता**

परोढ़ा वह नायिका होती है, जिसे विवाह संस्कार द्वारा पति प्राप्त हो चुका हो, फिर भी उसमें अनुरक्त न होकर, किसी दूसरे में जो अनुराग करती है ।[1] परोढ़ा का प्रेम न तो लोकानुमत है और न शास्त्र सम्मत, अतः काव्य शास्त्रियों ने उसे अंगी रूप में स्वीकार नहीं किया ।[2]

रस मंजरीकार भानुदत्त ने गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना, मुदिता प्रभृति नायिकाओं का परकीया में ही अन्तर्भाव किया है ।[3] 'प्रभृति' कहने का अर्थ यह है कि 'स्वयं दूती' आदि अन्य नायिकायें जो परकीया के लक्षण के उदाहरण में आ सकती हैं उनका भी संग्रह कर लेना चाहिए ।[4]

गुप्ता -

पर पुरुष के साथ अपने सुरत का गोपन करने वाली परकीया को गुप्ता कहते हैं ।

सुरत गोपन के प्रयत्न के काल भेद से भिन्न होने के कारण गुप्ता के तीन भेद हो जाते हैं - 1 वृत्त सुरत गोपना 2 वर्तिष्यमाण सुरत गोपना 3 वृत्त वर्तिष्यमाण सुरत गोपना ।[5]

रामचर सतसई की एक नायिका का हार पर पुरुष के साथ सुरत में टूट गया था । सुखोपरान्त लौटने पर उसकी एक सखी ने उसका टूटा हुआ हार देख लिया, जिससे वह सकुचा गई, तो वह सखी से स्वतः ही अथवा सखी के व्यंग्य रूप से पूछने पर अपनी सफाई पेश करती है -

---

1 दश रूपक 2/20

2 दश रूपक 2/20

3 रस मंजरी हि0व्या0 पृ0- 86

4 रस मंजरी हि0व्या0 पृ0- 87

5 रस मंजरी हि0व्या0 पृ0-88

सुधि भूली जानी नहीं, लगि अँचर की भार ।
माखन बरतन हरषै, टूट्यो मुकता हार ।।[1]

यहाँ नायिका परपुरुष के साथ हुए सुरत का गोपन अत्यन्त कुशलता है, यह कह कर करती है, कि माखन रखते हुए कछुकी में उसका हार टूट गया है ।

अतः, यह 'वृत्त सुरत गोपना परकीया-नायिका' है ।

<u>विदग्धा -</u>

अपनी आन्तरिक भावना को वाणी अथवा क्रिया के द्वारा प्रकट करने वाली परकीया नायिका को 'विदग्धा' कहते हैं ।

यह दो प्रकार की होती है -

(1) वाग्विदग्धा- वाणी के द्वारा अपनी भावना (सुरत भावना) को प्रकट करने वाली को 'वाग्विदग्धा' कहते हैं ।

(2) क्रिया विदग्धा- क्रिया के द्वारा अपनी भावना प्रकट करने वाली नायिका को 'क्रिया विदग्धा' कहते हैं ।

<u>वाग्विदग्धा -</u>

रामसहाय सतसई की एक परकीया नायिका नायक के साथ सुरत की इच्छुक है । वह नायक से कहती है, कि तरु पर लिपटी हुई ललित लतिका ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो कोई तरुणी किसी तरुण के अंग से लिपटी हो और (कामावेग में आलिंगनजन्य) पुलक के रूप में नूतन कलिका दिखाई दे रही हो -

ललित लता लपटी तरुनि, तरुनि तरुन जिमि अंग ।
नूतन कलिका तन भयो, पुलकित व्यापि अनंग ।।[2]

---

(1) रामसहाय सतसई दोहा सं0- 332

(2) रामसहाय सतसई दोहा सं0- 552

यहाँ वाग्विदग्धता की उक्ति होने के कारण (वस्तु बोधक व्यंग्य) से यह अर्थ ध्वनित होता है, कि नायिका नायक के साथ आलिंगनबद्ध होकर पुलकायमान होना चाहती है। (अर्थात् सुरत सुख लूटना चाहती है।)।

राजधर सतसई की एक परकीया नायिका किसी नायक से कहती है, कि उसकी पड़ोसिन यह बहुत बड़ा पाप करती है, कि सन्ध्याकाल से ही सो जाती है और अंधियारी रात में, सूने भवन में उसे अकेला ही रहना पड़ता है -

पापु परोसिन कौ बड़ौ, साँझहि तें सौं जाति।
सूने मँदिर बसति हौं, यह अँधियारी राति।।[1]

यह पड़ोसिन के सन्ध्या से ही सो जाने को 'पाप' कहकर (लक्षणा से) बताना चाहती है, यह पड़ोसिन वस्तुतः बड़ा पुण्य का कार्य करती है। दूसरा अर्थ व्यंजना से कि रात्रि में मिलन हेतु पड़ोसिन के जागते रहने का कोई डर नहीं है। उसका यह कहना कि 'वह सूने भवन में (आजकल) अकेली रहती है' व्यंग्यार्थ निकलता है, कि उसके घर में उसके अतिरिक्त और कोई है ही नहीं (अथवा आजकल उसके घर के सभी सदस्य अनुपस्थित हैं)। यहाँ 'अँधियारी रात' से यह व्यंग्य है कि नायक को अभिसरण एवं संयोग काल में कोई देख नहीं सकेगा।

इस प्रकार यह अपनी वाग्विदग्धता से नायक को सभी आशंकाओं से निश्चिंत करके, सम्भोग हेतु निमन्त्रण दे रही है।

<u>क्रिया विदग्धा -</u>

एक गोपिका (नायिका) ने माखन चुराते हुए श्रीकृष्ण (नायक) को रंगे हाथों पकड़ लिया है और वह उसे पल भर को भी नहीं छोड़ना चाहती है (क्योंकि नायक को आलिंगनबद्ध करके सुख लूट रही है) -

---

(1) राजधर सतसई- दोहा संख्या 130

राख्यौ हिये लगाइ है, पर वारिन के ओट ।
कछु उघर्यौ भावै नहीं, पायौ माखनु चोट ॥[1]

और एक क्रिया विदग्धा नायिका तो आँख मिचौनी खेल खेलते समय ही आँखों ही आँखों में नायक को 'सहेट स्थल' का संकेत कर देती है-

आँखि मूँदि इत उत फिरी, नैननि बदि संकेतु ।
पिय लगि खेलत तिय सखिनि, भौ निबाहबु हेतु ॥[2]

रामधर सतसई एक क्रिया विदग्धा नायिका घूँघट की ओट से छल नायक पर चोट करके सखियों की ओट में हो जाती है-

कैधक चारनि करि गई, हटि घूँघटि पट चोट ।
स्याम प्रेम सौं गह नहीं, गई सखिन ह्वै ओट ॥[3]

एक नायिका अपना काम भाव व्यक्त करने में अत्यन्त चतुर है -

दृग फेरहि, फेरति करनि, कुच छवि सहज छुवाहि ।
देखौ अँग-अँग चतुरई, रही दिखावत माँहि ॥[4]

यहाँ क्रिया विदग्धा नायिका अपने कुचों पर हाथ फिराकर नायक को स्पष्ट निमंत्रण दे रही है ।

एक क्रिया विदग्धा नायिका ज्वरादि का बहाना बनाकर नायक-वैद्य के पास गई । वैद्य नाड़ी-परीक्षा द्वारा उसका रोग नहीं समझ पा रहा था । समझ भी क्या पाता, कोई शारीरिक रोग होता तब न ? वह तो प्रेम रोगिणी है, अतः नायिका ने ही उसे अँगुलियों के संकेत से नाड़ी का रहस्य बतला दिया, तो नायक वैद्य व्यथित होकर उसका हाथ नहीं छोड़ पा रहा है -

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामधर सतसई दोहा संख्या- 78
(2) रामधर सतसई दोहा संख्या- 86
(3) रामधर सतसई दोहा संख्या- 257
(4) रामधर सतसई दोहा संख्या- 124

बार बार अँगुरीन सौं, न्यारी भेद बताइ ।
भेद क्रिया मैं क कह्यौ, सो नाहिं छाड्यौ जाइ ।।[1]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि रामसहाय ने वाग्विदग्धा की अपेक्षा क्रिया विदग्धा नायिका में अधिक रुचि प्रदर्शित की है ।

## लक्षिता -

परकीया अपनी गुप्त प्रीति को छिपाने के लिये चाहे जितना भी प्रयत्न करे, किन्तु उड़ती चिड़िया परखने वाली चतुर सखियाँ, उसे लक्षित कर ही लेती हैं -

प्रेम भरी रस रति भरी, भरी सुरति के चाइ ।
लखि सखियाँ अँखियानकौं, रहति सबै सुख पाइ ।।[2]

यहाँ सखियाँ नायिका की अँखियों के भाव से ही उसे भाँप कर प्रसन्न हो रही हैं, अतः यह नायिका 'लक्षिता' है ।

## कुलटा -

परकीया के इन समस्त प्रकारों में परकीयात्व का चरम विकास कुलटा में ही मिलता है । कुलटा का अर्थ है- 'कुलं त्यक्त्वा अटति इति कुलटा' अर्थात् जो स्त्री अपने कुल की मर्यादा का परित्याग कर अनेक पुरुषों से सम्बन्ध रखती फिरे वही कुलटा अर्थात् व्यभिचारिणी है ।

वैष्णव भक्त कवियों ने कुलटा को परकीया के अन्तर्गत नहीं लिया । नायिका भेद के कई आचार्यों ने भी कुलटा के प्रेम भाव को मानकर परकीया के रूप में उसका उल्लेख नहीं किया ।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 447
(2) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 297
(3) रस मंजरी (हि०व्या०) पृ०- 87

राजधर सतसई की एक नायिका 'नित प्रति औरहि और' पुरुषों की ओर प्रवृत्त है -

प्रिय के मन यह बसति है, रहि पै निति इक ठौर ।
औरति के औरति रहै, नित प्रति औरहि और ।।[2]

<u>मुदिता -</u>

संयोग सुख प्राप्ति की संभावना से मुदित होने वाली परकीया नायिका को मुदिता कहते हैं । यथा राजधर सतसई की एक नायिका का पति परदेश गमन करने वाला है । पति के गमनोपरान्त वह अन्य नायक के साथ 'घर-विहार' की कल्पना से आनंदित (मुदित) हो रही है, कि अब कोई उसे रोकने-टोकने वाला नहीं है -

घर विहार सुधि चित धरै, अब न बरजि है कोई ।
पिय चलानि परदेश की, तिय हिय आनंद होई ।।[2]

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 200

(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 68

## अवस्था भेद से नायिकाओं के प्रकार

16 प्रकार की नायिकाओं- 13 प्रकार की स्वीया, 2 प्रकार की परकीया और 1 प्रकार की साधारणी अथवा सामान्या- के भी अवस्था भेद से आठ-आठ भेद हैं। इन भेदों के क्रम में भले ही और हो, परन्तु संस्कृत के सभी आचार्यों ने एक मत से नायिकाओं के अवस्था भेद से भरत मुनि प्रणीत प्रकार ही स्वीकार किए हैं।[1]

ये आठ भेद निम्नलिखित हैं -

(1) वासक सज्जा (2) विरहोत्कण्ठिता (3) स्वाधीनभर्तृका (4) कलहान्तरिता (5) खण्डिता (6) विप्रलब्धा (7) प्रोषित भर्तृका (8) अभिसारिका।

### वासक सज्जा -

भरत मुनि कृत नाट्य शास्त्र के अनुसार जो सम्भोग की लालसा से हर्ष के साथ अपने को सजाती है, वह वासक सज्जा कहलाती है।[2] दशरूपककार का भी यही मत है।[3] सा०द० कार के अनुसार वह सजे धजे रंग महल में, अपनी सखियों द्वारा सजायी जाया करती है और अपने प्रियतम से मिलने की प्रतीक्षा में पड़ी रहती है।[4] रस मंजरी कार भानुदत्त ने 'मन में यह निश्चय करके कि आज मेरे प्रिय के आने का दिन है, जो नायिका सुरत-सामग्री सजाकर ठीक रखती है, वह वासक सज्जा कहलाती है।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) नाट्य शास्त्र-भरत मुनि 24/203, 204; दश० 2/23; सा०द० 3/72,73 ; रस मंजरी (हि०व्या०) पृ०-139
(2) नाट्य शास्त्र-भरत मुनि 24/205
(3) दश रूपक 2/24
(4) सा०द० 3/85
(5) रस मंजरी- पृ० 203

भरतादि आचार्यों ने 'वास' का अर्थ 'वार' ही ग्रहण किया है ।[1] और भानुदत्त को भी यही अर्थ ग्रहीत हुआ है । वासक या दिन का तात्पर्य दिन ही नहीं, बल्कि प्रिय के आने के निश्चय के बाद 'समय मात्र' दिन के अर्थ में संग्रहीत है ।[2]

रामसहाय सतसई में वासकसज्जा के प्रति व्यक्त भाव भानुदत्त कृत रस मंजरी के लक्षण के अधिक निकट है, क्योंकि रामसहाय ने वासक सज्जा को सुरत सामग्री सजाते हुए ही वर्णित किया है । साथ ही रस मंजरी में वर्णित वासक सज्जा की चेष्टाएँ - प्रिय के दर्शन की अभिलाषा, सखियों के साथ हँसी मजाक, सामग्री को ठीक करने का प्रयत्न एवं रह रहकर प्रिय के मार्ग की ओर दृष्टिपात करना आदि- वर्णित की हैं ।[3]

नायिका के संग मदनोत्सव मनाने के लिए नायक आने ही वाला है, अतः नायिका ने 'रमण भवन' को सुगंधित कर लिया है और रमणीय वस्त्र धारण कर लिए हैं-

करि सुवास वासित भवन्, रवन वसन दुति अंग ।
चाहति आगमु कंत को, पर विहार मिलि संग ।।[4]

नायिका सेज को सुगंधित करके, समस्त आभूषणों से सज्जित होकर (सोलह) शृंगार करके पति के आगमन में पलक पाँवड़े बिछाये हुए, प्रतीक्षारत है -

सरस सुगंधित सेज सजि, भूषन सकल सिंगारि ।
प्रिय आगमु अवलोकिहीं, दीठि पाँवड़े डारि ।।[5]

---

(1) रस मंजरी (हि०व्या०) पृ०- 205

(2) 'वासको वारः' रस मंजरी पृ०-203

(3) रस मंजरी पृ०- 205

(4) रामसहाय सतसई दोहा सं०- 335

(5) रामसहाय सतसई दोहा सं०- 345

इन दोनों में नायिका की अथवा पति की प्रतीक्षारत है, अतः स्वकीया है । यह सभी कान्तात्मानुमोदित समयोचित तैयारी कर रही है, अतः प्रगल्भा है इस प्रकार यहाँ 'स्वकीया प्रगल्भा वासक सज्जा' का वर्णन है ।

## विरहोत्कण्ठिता -

नाट्य शास्त्र में 'अनेक कार्यों के व्यासंग (के कारण) से (जिस नायिका का) प्रिय (नायक) उसके पास नहीं आपाता, उस दुःखार्ता को विरहोत्कण्ठिता कहते हैं ।[1] दश रूपक में 'निरपराध होते हुए भी, प्रिय (नायक) के देर करने पर (उत्कण्ठित रहने वाली नायिका विरहोत्कण्ठिता होती है ।[2] साहित्य दर्पण में जिसका प्रियतम, उससे मिलने के लिए इच्छुक होने परभी दैववश उससे नहीं मिल पाता और इसलिए जिसे वियोग की व्यथा विह्वल बना दिया करती है ।[3] रस मंजरी में जो अपने प्रिय के, संकेत स्थल पर न आने का कारण सोचती है, उसे 'उत्का' (अथवा उत्कण्ठिता) कहा गया है ।[4] अन्य आचार्यों ने भी इसीप्रकार के लक्षण दिए हैं ।[5]

हम देखते हैं, कि सारतः समस्त आचार्यों के लक्षणों में, विरहिणी नायिका की प्रिय मिलन हेतु 'उत्कण्ठा' (जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है) सामान्य रूप से विद्यमान है ।

विरहोत्कण्ठिता नायिका के लक्षण नायिका की मानसिक स्थिति से सम्बन्धित है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) नाट्य शास्त्र 24/206
(2) दश रूपक 2/25
(3) सा0द0 3/86
(4) रस मंजरी पृ0 193
(5) नाट्य दर्पण 4/265 एवं प्रता0- 1/45

राजधर सतसई की एक नायिका अपना उत्कंठा ... व्यक्त करती है- माधवकाल (बसन्त) तो काल बनकर आ गया लेकिन माधव (नायक) नहीं आए-

बयौं रहिये सखि निरखि बन, फूले लाल तमाल ।
माधव नहिं आये जदपि, आयौ माधव काल ।।[1]

सावन में तो बिना नायक के नायिका को बादल देखकर जीवन धारण करना असम्भव लग रहा है -

जौ न साजनै आवने, तू हेरी घर नाँह ।
तौ जीवनु किहि भाँति मन, देखैं ते कमाद ।।[2]

'कमाद देखकर' कैसे जीवन धारण करेगी' में उत्कण्ठा व्यंग्य है ।

कभी नायिका अपनी उत्कण्ठा नायक (पति) के पास पत्र प्रेषण के साथ-साथ अपने देवर (दूत) द्वारा मौखिक सँदेसा प्रेषण करके भी अभिव्यक्त करती है -

दीजौ देवर जात ही, पाती पति के हाथ ।
सुनि लीजौ कहिं चली, स्याम अवधि के साथ ।।[3]

'जाते ही' पति को पत्र देना, 'निश्चित अवधि पर नायक के न आने पर स्याम चली जायेगी' में नायिका की तीव्रतम उत्कण्ठा व्यंग्य रूप से अभिव्यक्त हुई है ।

इसी प्रकार नायिका का सूने घर में बैठे-बैठे यह सोचना कि नायक अभी तक क्यों नहीं आया,[4] रात्रि में तारे गिनना, दिन में धूप की छाँह निहारना[5] 'प्रियतम' 'बिना पिया के कहीं' अतन का जतन होता है[6] तथा 'अतन ताप तो तब ही मिटेगा जब पिय (पति)

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा सं०- 55
(2) राजधर सतसई दोहा सं०- 191
(3) राजधर सतसई दोहा सं०- 154
(4) राजधर सतसई दोहा सं०- 418
(5) राजधर सतसई दोहा सं०- 70
(6) राजधर सतसई दोहा सं०- 294

'धन्वन्तरि होकर आयेगा'[1] आदि में तथा विरह की कतिपय काम दशाओं में[2] नायिका की उत्कण्ठा व्यंग्य रूप से अभिव्यक्त हुई है।

नायिका की उत्कण्ठा अपने पति के ही प्रति व्यक्त हुई है, अतः नायिका स्वकीया है। साथ ही नायिका अपनी उत्कण्ठा स्पष्ट रूप से सखी अथवा देवर से कह कर व्यक्त कर रही है, अतः प्रौढ़ा अथवा प्रगल्भा है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि रामसहाय सतसई में स्वकीया प्रगल्भा-विरहोत्कण्ठिता नायिका का वर्णन हुआ है।

<u>स्वाधीन भर्तृका -</u>

भरत मुनि के अनुसार 'स्वाधीन भर्तृका' वह प्रमुदित एवं 'गुण-संयुक्ता' नायिका है, जिसका प्रिय (नायक) 'सुरतातिरसैः' एवं 'पार्श्वगत' (समीप में) बना रहता है[3]। 'गुण संयुक्ता' विशेषण को छोड़कर यही लक्षण दशरूपक में बताया गया है।[4] साहित्य दर्पणकार के अनुसार उसका प्रिय (कान्त) (उसकी) रति से आकृष्ट होकर अन्यत्र नहीं जा सकता है। जिसके विलास बड़े विचित्र हुआ करते हैं।[5] तथा रस मंजरीकार ने - 'जिसका प्रिय सदा अनुकूल रहे' उसे स्वाधीन भर्तृका कहा है[6]। अन्य आचार्यों के लक्षणों का इन्हीं में अन्तर्भाव किया जा सकता है।[7]

रामसहाय सतसई की एक रसीली स्वाधीन भर्तृका नायिका ने रसिक पति को इस प्रकार अपने प्रेम से वशीभूत कर रखा है, कि वह उसे भूलकर भी अन्य स्त्री नहीं भाती है -

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामसहाय सतसई दोहा सं० 25
(2) प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के शीर्षक- 'विरह की दस काम दशाएँ' में
    विस्तृत विवरण देखिए।
(3) नाट्य शास्त्र - 24/207
(4) दश० 2/24
(5) सा०द० 3/74
(6) रस मंजरी (हि०व्या०) पृ० 216
(7) भा०प्र० पृ०- 99; ना०द० 4/267; प्रता० 1/43

रस बस करि राख्यौ रसिकु, भली रसीली बाम ।
भूलि न भावत और तिय, निसु दिन अति अभिराम ।।[1]

सखियाँ स्वाधीन भर्तृका के द्वारा पति को वश में करने के चातुर्य से आनंदित हो रही हैं -

तेरे चित की चातुरी, लखि लखि आनँद होतु ।
पिय बस करि राख्यौ भलौ, पल पल प्रीति उदोतु ।।[2]

स्वाधीन भर्तृका ने अपने पति को रूप-रसपाकृष्ट कर रखा है, कि उसको 'बनावे' (सिरागमला) को चाहे तब (अर्थात् अपनी अनुपस्थिति में) भी विश्वास है, कि उसके पति को अन्य स्त्री नहीं भा सकती है-

चतुर बनावै जो भली, चित में यही विचारि ।
रस बस करि राख्यो पिया, और न भावै नारि ।।[3]

उपर्युक्त दोहों में नायिका का रतिभाव अपने पति के प्रति ही है अतः नायिका स्वकीया है । उसका अत्यन्त आत्म विश्वास है, कि उसने पूर्णतः पति को 'रसाकृष्ट' अथवा 'दृढ़ताति स्नेह' कर रखा है तथा 'सखियों द्वारा उसके इस चातुर्य को लक्षित कर आनंदित होना' उसकी प्रगल्भता के व्यंजक हैं, अतः नायिका 'स्वकीया-प्रगल्भा' 'स्वाधीनभर्तृका' सिद्ध होता है ।

**खण्डिता -**

भरत मुनि के अनुसार खण्डिता का प्रिय व्यालीक (किसी अन्य प्रेमिका के प्रेम में फँस जाने) से उचित वासक (समय) पर नहीं लौटता है[4]। इसे रस रूपककार ने और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि 'नायक को दूसरी नायिका के सम्पात से चिह्नित जान लेने पर जो ईर्ष्या से

---

(1) राघवर सतसई दोहा संख्या- 354
(2) राघवर सतसई दोहा संख्या- 353
(3) राघवर सतसई दोहा संख्या- 315

(4) ना०शा० 24/209

क्षुभित हो उठती है, वह खण्डिता है ।[1] सा०द० कार ने 'विकृत' के स्थान पर नायक के लिए 'चिन्हित' शब्द का प्रयोग किया है जिसका तात्पर्य वही है ।[2] अतः साहित्य दर्पण, दश रूपक से ही प्रभावित होते हैं, भानुदत्त के अनुसार 'पर-स्त्री के सम्भोग से चिन्हित होकर प्रातः काल जिसका पति आकर मिलता है, उस नायिका को खण्डिता कहते हैं । यहाँ प्रातः काल उपलक्षण मात्र है, क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रातः काल ही सम्भावित है ।[3] अन्य आचार्यों ने भी ऐसे ही लक्षण दिए हैं ।[4]

राजधर सतसई में खण्डिता नायिका की व्यंग्योक्तियों का ही वर्णन है, जिसका हम 'मध्या-धीरा' के नाम के अन्तर्गत विवेचन कर चुके हैं । इन दोनों में मध्या धीरा नायिका अन्योपभोग चिन्हित नायक के प्रति अपना कोप व्यंग्योक्तियों द्वारा अभिव्यक्त करती है ।[5]

**प्रोषित-भर्तृका -**

भरत मुनि के अनुसार 'किसी गुरु कार्यवश जिसका प्रिय बाहर चला जाता है, अतः ऐसी साज शृंगार-रहिता नायिका को प्रोषित भर्तृका कहते हैं ।[6] दशरूपक कार के अनुसार, जिस नायिका का प्रिय किसी कार्य से दूर देश में स्थित होता है, वह 'प्रोषित प्रिया' कहलाती है[7]। नाट्य दर्पण के लक्षण में 'अश्रुपात' क्षेप आदि संधारणा आदि की शुभा से रहित विवेचन अधिक है जो नाट्य शास्त्र के 'संस्कारविप्रमान्ता'

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) दश० - 2/25
(2) सा०द०- 3/275
(3) रस० पृ०- 159
(4) भा०प्र०-पृ० 98; नाट्य दर्पण 4/263 और प्रता० 1/49
(5) विस्तृत विवरण के लिए देखिए- यही शोध० शीर्षक 'मध्याधीरा'
(6) ना०शा० 24/211
(7) दश० 2/27

का ही भाव व्यक्त करता है ।[1] साहित्य दर्पणकार के अनुसार 'किसी कार्यवश' अपने प्रिय के परदेश चले जाने के कारण, कामवेदना से व्यथित (मनोभवदुःखार्ता) नायिका को प्रोषित भर्तृका कहते हैं ।[2] ~~रस मंजरी~~ रस मंजरी कार भानुदत्त के अनुसार जिस नायिका का प्रिय 'देशान्तरित' (अर्थात परदेश चला गया हो और (वह उसके विरह जन्य) सन्ताप से व्याकुल हो[3] यहाँ प्रिय से तात्पर्य कान्त से है, विवाहित पति से नहीं, अन्यथा परकीया और सामान्या के रूप में प्रोषित भर्तृका का ग्रहण नहीं हो सकेगा, जैसा कि प्रताप रुद्रीयकार विद्यानाथ ने भी 'कान्त' शब्द का प्रयोग किया है - 'देशान्तरगते कान्ते खिन्ना प्रोषितभर्तृका'[4] भानुदत्त के अनुसार[5] इसकी चेष्टाएँ 'विरह की दस काम दशाएँ' - अभिलाषादि - हैं ।

इन समस्त आचार्यों का निष्कर्ष यह है कि सामान्य रूप से सभी नायक को प्रवास-स्थित माना है । नाट्यशास्त्र एवं नाट्य दर्पण में नायिका को शृंगार रहिता माना है, साहित्य दर्पण तथा रस मंजरी में क्रमशः 'मनोभवदुःखार्ता' तथा सन्तापव्याकुला' कहा है, लेकिन भानुदत्त ने इसकी चेष्टा में काम की 'दशावस्थाओं' को रखकर प्रोषित पतिका के विरह को व्यापक रूप प्रदान किया है, जोकि उचित ही है ।[6]

## प्रोषित-भर्तृका के भेद-प्रभेद

भानुदत्त ने रसमंजरी में इन आठ नायिकाओं की संख्या बढ़ाकर नौ कर दी अर्थात् उन्होंने इनके अतिरिक्त एक अन्य भेद -

---

(1) नाट्य दर्पण 4/26 - 'कार्यतः प्रोषिते पत्यावाकुला प्रोषित प्रिया'
(2) सा०द०- 3/84
(3) रस मंजरी (हि०व्या०) पृ०- 147
(4) रस मंजरी (हि०व्या०) पृ०- 147
(5) रस मंजरी (हि०व्या०) पृ०- 148
(6) विस्तृत विवरण के लिए देखिए- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्याय-3 शीर्षक विरह की दस काम दशाएँ ।

'प्रवत्स्यत्पतिका' स्वीकृत किया है ।[1] हिन्दी आचार्य मतिराम ने इस भेद (जिसे उन्होंने 'प्रवत्स्य-प्रेयसी' संज्ञा दी) को भी स्वीकार करते हुए, एक अन्य भेद- 'आगत पतिका' और बढ़ा दिया ।[2] आगे चलकर रसलीन ने अपने 'रस-प्रबोध' में 'आगत पतिका' के प्रिय आगमन की स्थिति के आधार पर 'आगत-पतिका' से पूर्व स्थिति को ध्यान में रखते हुए एक भेद - 'आगमिष्यत पतिका' (आगमिष्यत्पतिका) - और कर दिया ।[3]

सम्भवतः, प्रोषित पतिका के भेद-प्रभेद भावी, वर्तमान और भूत प्रवास[4] के आधार पर ही किए गए हैं । इन विभिन्न अवस्थाओं में नायिका की मनः स्थिति एवं कामभिव्यक्ति को ध्यान में रखते हुए, उनके विश्लेषण का अपना विशेष महत्व है, अतः हिन्दी आचार्यों को भी ये भेद स्वीकृत हुए ।

इस प्रकार 'प्रोषित-भर्तृका' के निम्न-लिखित भेद हुए-

(1) प्रवत्स्यत्पतिका- जिसका प्रिय प्रवास पर अभी-अभी जाने वाला है ।
(2) प्रवसत्पतिका (मूल रूप में प्रोषित भर्तृका)- जिसका प्रिय प्रवास-स्थित है ।
(3) आगमिष्यत्पतिका- जिसका प्रिय अभी-अभी प्रवास से लौट कर आने वाला है (अर्थात् उसके समक्ष नहीं आया) ।
(4) आगत पतिका- जिसका प्रिय अभी-अभी प्रवास से (उसके समक्ष) आया है ।

---

(1) रस मंजरी (हि०व्या०) पृ०- 245
(2) मतिराम, रसराज - छन्द सं० 110
(3) रस-प्रबोध, रसलीन- सं० बाबू रामकृष्ण वर्मा, छन्द सं० 341, 342
(4) ना०द०- 3/208

राजधर सतसई में इन भेदों के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं-

**1 1 1 प्रवत्स्यत्पतिका -**

जिस नायिका का प्रिय अग्रिम क्षण ही देशान्तर जायेगा, वह प्रवत्स्यत्पतिका कहलाती है ।[1] श्रृंगार मंजरी के अनुसार वह नायिका प्रवत्स्यत्पतिका कहलाती है, जो अपने प्रिय के प्रयाणार्थ प्रयत्न को जानकर वेदना का अनुभव करती है ।[2] भानुदत्त के अनुसार प्रवत्स्यत्पतिका की चेष्टाएँ- वह काकु व या व्यंग वचनों द्वारा प्रिय को बार-बार बोलती है और दैन्य भाव से कातर होकर उसे देखती है। उसके प्रवास में विघ्नों की कल्पना करती है । प्रायः, निर्वेद, सन्ताप सम्मोह, निश्वास एवं बाष्प आदि भी प्रकट करती है ।[3]

राजधर सतसई में प्रवत्स्यत्पतिका के सुन्दरउदाहरण प्राप्त होते हैं । यथा -

नायिका ने मात्र यह सुन लिया कि उसका पति प्रवास पर जाने वाला है । उसका खाना-पीना-सोना सब छूट गया । अभी नायक प्रवास पर गया नहीं है, तब तो ऐसी हालत है -

चले बिना छूटे सबै भोजन, अरु पय पान ।
नींद भई है पाहुनी, पिय पयान सुनि कान ।।[4]

'नायक के प्रवास पर चले जाने पर कैसी हालत होगी ?' अर्थात् 'मरण कामदशा' व्यंग्य है ।

यहाँ तक कि स्वप्न में वही बात सुनकर प्रातः काल भी उसकी सिसकी रोके नहीं रुकती है -

---

1 1 1 रस मंजरी 1हि0व्या01 पृ0 247
1 2 1 - वही - 247
1 3 1 - वही - 248
1 4 1 राजधर सतसई दोहा संख्या-403

सपने में पिय गवन की, सुनि सखियन मुख बात ।
तिय हिय की हिलकी अजौं, रोकैं रुकति न प्रात ।।[1]

यहाँ नायिका पति के प्रवास पर जाने की बात सुनकर, खाना-पीना-सोना सब छोड़कर, मात्र रो रही है, अतः मुग्धा है ।

इस प्रकार उपर्युक्त दोनों दोहों में वर्णित नायिकाएँ-
'स्वकीया-मुग्धा-प्रवत्स्यत्पतिका'- भेद के अन्तर्गत सिद्ध होती हैं । पति को कल प्रातः काल जाना है, किन्तु आज संध्या से ही (काम जनित पीड़ा के कारण) उसके अंग प्रत्यंग में शैथिल्य व्याप्त हो गया है-

आतन पीर तन व्यापि है, भए सिथिल सब गात ।
साँझहि में लपट परी, पीउ चलैंगे प्रात ।।[2]

स्वप्न में भी प्रिय (पति) के देशान्तर जाने की बात सुनकर, प्रातः अँसुओं से सेज भीग गई, तथा (काम भावना के कारण) उसके अंग प्रत्यंग विह्वल हो गए हैं -

सपने में परदेस पिउ, चलन कहत हैं प्रात ।
अँसुवनि भींगी सेज सब, बिह्वल ह्वै गए गात ।।[3]

दोहा सं० 404 में 'आतन पीर के कारण जड़ता' उत्पन्न हो रही है, लेकिन फिर भी नायिका (लज्जा के कारण) कुछ कह नहीं पा रही है । दोहा संख्या 405 में भी (काम के कारण) नायिका के अंग प्रत्यंग विह्वल हो रहे हैं, फिर भी वह रो रही है तथा लज्जा के कारण कुछ नहीं कह पा रही है ।

इन दोनों दोहों में नायिका में लज्जा और मदन का भाव समान रूप से विद्यमान है । 'समान लज्जा मदना मध्या' के अनुसार ये नायिकाएँ 'मध्या' हैं ।

---

(1) रामधर सतसई दोहा सं० 406
(2) रामधर सतसई दोहा सं० 404
(3) रामधर सतसई दोहा सं० 405

अतः, ये दोनों नायिकाएँ- 'स्वकीया-मध्या-प्रवत्स्यत्पतिका' भेद के अन्तर्गत सिद्ध हो रही हैं ।

(2) प्रवत्स्यत्पतिका (अथवा प्रोषित भर्तृका) -

जिस नायिका का प्रिय प्रवास स्थित है । मूल रूप में संस्कृत आचार्यों की प्रोषित भर्तृका यही है, जिसका हम प्रारम्भ में उल्लेख कर चुके हैं । भानुदत्त के अनुसार 'अभिलाषादि-दस काम दशाएं' इसकी ही होती हैं ।[1]

राजधर की प्रवत्स्यत्पतिका (प्रोषित-भर्तृका) प्रगल्भा है, अतः वह 'मदन विजित लज्जा'[2] स्वल्पव्रीडा[3] होने के कारण अपनी काम भावना की स्पष्टतया अभिव्यक्ति करती है । इसीलिए वह अपनी काम पीड़ा की अभिव्यक्ति सखियों के समक्ष करती है । साथ ही समस्तरतकोविदा[4] होने के कारण कामशास्त्रानुमोदित समस्त प्रणयनोपचारों का प्रयोग करती है ।

कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं -

(1) तनु अति पीड़ित होतु है, लगि सुगंध की सोद ।
अतन ताप तबहीं मिटै, पिय धन्वन्तरि होइ ।।[5]

(2) इनि बासननि सौं तनु जरै, बनि सुगंध अंग पोतु ।
बौरी हौंरी बिन पिया, बातु अतनु को होतु ।।[6]

(3) मैं पेहरि पहूँ करित, मैं परबति यह बौनि ।
सूखे तन पर बिरह की, आगि लगे जनि औनि ।।[7]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) विस्तृत विवरण के लिए देखिए- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का शीर्षक - विरह की काम दशाएँ ।
(2) रस मंजरी (हि०व्या०) पृ०- 39
(3) सा०द० 3/60
(4) सा०द० 3/60
(5) राजधर सतसई दोहा सं०- 25
(6) राजधर सतसई दोहा सं०- 294
(7) राजधर सतसई दोहा सं०- 119

।4। बार बार बरषति रहति, उर उसीर घनसार ।

पिय हिय दुख पावै नहीं, बिरह अगिनि की झार ।।[1]

नायिका अपनी काम पीड़ा सखियों के समक्ष अभिव्यक्त करती है । सखी से, प्रथम दोहे में यह कहना कि अब ताप तबही मिटेगा जब प्रिय ही धन्वंतरी होकर आये, द्वितीय दोहे में 'बिना पिया के कहीं अतन का जतन होता है ?' तथा तृतीय दोहे में सखी को यह कहकर पंखा झलने से मना करना कि 'हवा से विरह की अग्नि समस्त शरीर में न व्याप्त हो जाए' नायिका की स्वल्प व्रीड़ा सिद्ध करता है । प्रथम दोहे में 'सुगंधित जल', द्वितीय में 'सुगंध' तथा चतुर्थ में 'जल और कपूर' आदि कामशास्त्रानुमोदित प्रशमनोपचारों को प्रयुक्त करना उसकी समरत रसकोविदा होना सिद्ध करता है ।

यहाँ नायिकाओं की रति अपने पतियों के ही प्रति व्यक्त हो रही है, अतः नायिकाएँ 'स्वकीया-प्रगल्भा-प्रवत्स्यत्पतिका ही सिद्ध हो जाती हैं ।

<u>।3। आगमिष्यत्पतिका-</u>

जिस नायिका का पति अभी-अभी प्रवास से लौटकर उसके समक्ष उपस्थित होने वाला है । अभी नायक उसके सामने नहीं आ पाया है । उसके आने मात्र की सूचना नायिका को प्राप्त हुई है । वह प्रसन्नता के मारे फूली नहीं समा रही है । वह अपने घर में बौराई हुई सहसा आ जा रही है -

मन भावन आवनु सुने, फूल न हिये समाति ।

तिय बौरी सी भवन में, कितु आवति कितु जाति ।।[2]

यहाँ, दीर्घकालीन प्रवासोपरान्त प्रिय के आने से विरह-अधीर नायिका के तन और मन में उमंग का संचरण स्वाभाविक ही है, अतः इस दोहे में आगमिष्यत्पतिका नायिका की हर्ष जन्य गति द्रष्टव्य है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। रामसहाय सतसई दो०सं०- 452
।2। रामसहाय सतसई दो०सं०- 410

द्रष्टव्य -

हिन्दी आचार्य रसलीन ने रस प्रबोध (रचनाकाल सं0 1799) में इस भेद का उल्लेख किया है, किन्तु राजधर सतसई (सं0 1764) इससे पूर्ववर्ती रचना है, अतः सम्भव है, इस भेद को लक्ष्य रूप में सर्व प्रथम लिखने का श्रेय राजधर को ही हो ।

(4) आगत पतिका -

जिस नायिका का प्रिय प्रवासोपरान्त अभी-अभी समक्ष उपस्थित हुआ है । बुझते हुए दीपक में तेल दे देने से वह फिर प्रज्ज्वलित और प्रकाशमान हो उठता है । नायिका बुझते हुए दीपक की (भाँति मरण) दशा को प्राप्त हो रही थी, किन्तु नायक को देखते ही उसकी द्युति इस प्रकार बढ़ गई, जैसे बुझे हुए दीपक में तेल डाल दिया हो -

पिय आए लखि तिय हिये, द्युति बढ़ि विधि अधिकाइ ।
नेहु दये तें दीप की, दीपति ज्यौं दरसाइ ।।[1]

यहाँ नेह (स्नेह अथवा तेल) शब्द का शिलष्ट प्रयोग श्लाघनीय है ।

जब नायक आँगन में आ गया, तो नायिका की दीप्ति दो-गुनी हो गई । (विरह जन्य) दैन्य दूर हो गया और उसके अंग-प्रत्यंग हर्ष के कारण फूले नहीं समा रहे हैं -

गई दीनता दूर ह्वै, दीपति दुगुन दिखाति ।
आँगन पियु आये लखे, अँगन फूली माति ।।[2]

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 407

(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 390

:- अभिसारिका -:

भरत मुनि के अनुसार "जो लज्जा छोड़कर काम के वशीभूत होकर प्रिय के पास रमण हेतु उपस्थित होती है, उसे अभिसारिका नायिका कहा जाता है ।[1] दश रूपककार ने इसके अतिरिक्त नायक को अपने पास बुलाने वाली नायिका को भी अभिसारिका ही माना है ।[2] दश रूपक का ही साहित्य दर्पणकार ने समर्थन किया ।[3] इसी मत की पुष्टि रस मंजरी में हुई ।[4] किन्तु श्रृंगार मंजरीकार को आचार्य भरत मुनि का मत मान्य है । वे अभिसारण पक्ष को नहीं मानते । उनके अनुसार जो नायिका प्रिय को अपने समीप बुलाती है उसे वासक लज्जा समझना चाहिए, क्योंकि प्रियागमन के निमित्त से सम्भोग के लिए प्रयत्नशील नायिका वासक सज्जा कहलाती है ।[5]

अभिसार के ढंग -

कुलजा - यदि कोई कुलजा (स्वीया) नायिका अभिसार करती है, तो लज्जा के भार से दबी दीखा पड़ती है । अपने-अपने अंलकारों को झंकार से बचाती रहा करती है और घूंघट की ओट में अपने आप को छिपाने में लगी रहती है ।

वेश्या - (सामान्या नायिका) - सामान्या नायिका का अभिसार एक और ही ढंग का है । उसके मुख पर आनन्द की अठखेलियां होती दिखायी पड़ा करती है ।

प्रेष्या (अनुचरी अथवा दूती) - अनुचरी अथवा दूती का अभिसार और ही प्रकार का है - कामोन्माद उसकी बात चीत में बेढंगापन भर दिया करता है, विभ्रम विलास उसकी आँखों में स्पष्ट झलका करता है और उसकी चाल-ढाल एक विचित्र मस्ती से भी भरी दिखाई दिया करती है ।[6]

---

(1) ना०शा० 24/212
(2) दश० 2/27
(3) सा०द० द03/76
(4) रस पृ० - 224
(5) रस० पृ० - 225
(6) ना०शा० 24/218-223 एवं सा०द० 3/77-79

अभिसार के स्थान -

अभिसरण के आठ स्थान निर्दिष्ट किए गए हैं-
(1) खेत (2) बगीचा (3) टूटे-फूटे मन्दिर (4) दूती गृह (5) वन (6) सूना स्थान (7) श्मशान (8) नदी आदि का तट और साथ ही साथ कोई अँधेरी जगह ।[1]

अभिसारिका की चेष्टाएँ -

रस मंजरीकार के अनुसार स्वीया तो अपने ही पास के पास संकेत स्थल पर मिलने जाती है, ऐसी स्थिति में अपने को अलक्षित करने का कोई कारण ही नहीं ।[2] किन्तु परकीया समयानुसार वेश-भूषा धारण करती है । उसके मन में अपने प्रियाभिसरण के रहस्य भेद की शंका बनी रहती है । वह अभिसार के गुप्त रखने में निपुणता से काम लेती है । उसे प्रिय के समीप संकेत स्थान पर पहुँचने का साहस होता है ।[3]

भानुदत्त ने समयानुसार वेश-भूषा धारण करने (चेष्टा) के आधार पर अभिसारिका के निम्नलिखित भेद किए हैं -

(1) ज्योत्स्नाऽभिसारिका ।

(2) तमिस्राऽभिसारिका ।

(3) दिवाभिसारिका ।[4]

---

(1) साहित्य दर्पण- 3/80, 81
(2) रस मंजरी (हि०व्या०) पृ०- 227
(3) रस मंजरी (हि०व्या०) पृ०- 227, 228
(4) रस मंजरी (हि०व्या०) पृ०- 235, 236, 237

**(1) ज्योत्स्ना भिसारिका -**

अभिसारिका कभी अभिसरण करती है, कभी नायक से अभिसारण करवाती है । (श्रृंगार रस के अनुरूप संभवतः) नायिका गौरवर्ण है और नायक श्याम वर्ण, अतः, सखी (अथवा दूती) उस नायिका से कहती है कि नायिका शुक्ल पक्ष में स्वयं अभिसरण करे और कृष्ण पक्ष में नायक से अभिसारण करवाया करे -

दुहू पच्छ करियौ करौ, मिलबौ यहै उपाउ ।
वे कबहूँ आवैं इहाँ, कबहूँ तुम चलि जाउ ।।[1]

यहाँ नायिका ज्योत्स्ना भिसारिका है । सखी का कुभाय द्रष्टव्य है।

सखी नायिका से कहती है, "तेरे तन की दीप्ति अत्यधिक होने के कारण कृष्ण पक्ष में तेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं होगी (क्योंकि अभिसरण के समय तू लक्षित हो जायेगी), अतः तेरे लिए शुक्ल पक्ष ही सुखदायक है"-

कृस्न पच्छ तन दुति अधिक, चलि जनि अलि अभिलाषु ।
सो कायौ सुख देत है, उज्यारे को पाखु ।।[2]

यहाँ सखी द्वारा नायिका को 'शुक्ल पक्ष सुखदायक' कहने से नायिका का शुक्लाभिसारिका (ज्योत्स्ना भिसारिका) होना व्यंग्य है ।

**(2) तमिस्रा भिसारिका -**

(कृष्ण पक्ष में) घोर-अँधियारी रात्रि में एक भी तारा नहीं दिखाई पड़ता है (संभवतः काली घटा छा भी छाई है) । अर्द्ध रात्रि में चन्द्रमुखी अभिसरण करना चाहती है -

घमक तार मैं तारका येकौ नहीं दिखाति ।
चंद्रमुखी चाहति चल्यौ, यह अधिकी अधराति ।।[3]

यह तमिस्रा भिसारिका है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामधर सतसई दोहा सं०- 515
(2) रामधर सतसई दोहा सं०- 287
(3) रामधर सतसई दोहा सं०- 514

(3) दिवसाभिसारिका -
=====================

वैसे तो दिवस संभोग शास्त्र निषिद्ध है । उसमें भी ब्राह्म मुहूर्त और सन्ध्या काल विशेष रूप से श्रृंगाराधना हेतु होने से, इस समय संभोग की विशेष वर्जना की गई है, किन्तु परकीया नायिका समय-असमय कुछ नहीं देखती है ।

प्रातः कालीन वेला में चिड़ियों की चह चहाट जन्य शोर हो रहा है, ऐसे में, दूती नायिका को अभिसरण के लिए प्रेरित कर रही है, क्योंकि अभिसरण-काल में नायिका के नूपुर की झंकृति, चिड़ियों की चह-चहाट में विलीन हो जायेगी -

चलि चलि प्यारी भवन कौं, को सकुचति सुनि सोरु ।
पद नूपुर धौं में परैं, चिरी-चुट चुही भोरु ।। [1]

अतः यह प्रातः अभिसारिका (दिवसाभिसारिका) की ओर संकेत है ।

सन्ध्याकालीन वेला है । नीले आकाश में तारों का (अभी-अभी) उदय हुआ है । रामसहाय सतसई की एक नायिका अभिसरण हेतु नीले वस्त्र (और उस पर रजत के) आभूषण धारण किए है । ऐसा प्रतीत होता है, मानो नीले आकाश में तारे चमचमा रहे हों-

भूषन राजत नील पट, चलतानि प्रिय पर, सांझ ।
चमचमात चहुँ ओर जनु, तारा अंबर मांझ [illegible] ।। [2]

यह नायिका संध्याकालीन वेला में अपना स्वरूप विलीन करना चाहती है, ताकि कोई उसे लक्षित न कर सके । अतः, यह संध्या भिसारिका (दिवसाभिसारिका) है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 46
(2) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 409

## दशानुसार नायिका भेद -

दशा भेद के अनुसार मुग्धा के अतिरिक्त पूर्वोक्त नायिकाओं के तीन भेद होते हैं- ।1। अन्य संभोग दुःखिता ।2। वक्रोक्ति गर्विता ।3। मानवती[1]।

अधिकांश आचार्यों ने तीनों नायिकाओं को पृथक वर्ग भेद के अन्तर्गत रखा है, किन्तु मूल रूप से ये स्वकीया के मध्या और प्रौढा में हो सकती हैं। रस मंजरीकार भानुदत्त ने इन्हें परकीया और सामान्या में भी माना है।

## वक्रोक्ति गर्विता -

वक्रोक्ति गर्विता उसे कहते हैं जो अपने प्रियतम के प्रेम और अपने सौन्दर्य का गर्व वक्रोक्ति द्वारा व्यक्त करे। इस प्रकार वक्रोक्ति गर्विता नायिका के दो उपभेद हुए - ।अ। प्रेम गर्विता ।ब। सौन्दर्य गर्विता।[2]

देव ने 'कुल-गर्विता' एवं दास ने 'गुण-गर्विता' भेद भी किए हैं-[3]

## ।अ। प्रेम गर्विता -

जो नायिका अपने प्रियतम के प्रेम पर गर्व करे उसे प्रेम गर्विता कहते हैं।

रामचरण सतसई की एक नायिका का यह विश्वास कि उसके प्रति प्रेम के कारण नायक को कोई दूसरी स्त्री नहीं भा सकती, उसके प्रेम गर्व को सूचित करता है -

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। रस मंजरी ।हि०व्या०। पृ०- 120
।2। रस मंजरी ।हि०व्या०। पृ०- 122
।3। श्रृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन, डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी पृ०-182

चतुर चलाए कों, चली मन में यहै विचारि ।
इत मत करि राख्यौ पिया, और न भावै नारि ।।[1]

मेरे विचार से उस नायिका को भी प्रेम गर्विता कहना चाहिए जो प्रियतम के प्रति अपने प्रेम पर गर्व व्यक्त करे ।

एक नायिका का अपनी सखी से यह कहना कि 'मुझे प्रेम की पीड़ा का क्या अनुभव ?' इस कथन से उस नायिका का प्रेम गर्विता होना व्यंग्य है -

मै जानी जगु जानिहै कैसी हूहै पीर ।
जोही मोही फिरति हो तोही कहि का पीर ।।[2]

<u>मानवती -</u>

एक नायिका नायक से बोल नहीं रही है एवं हठ पूर्वक घूँघट पट ताने हुए है -

<u>मानि कहति नहि कानि किहि, आनन पटु हठि तानि ।</u>
जानति हानि न आपनी, अजहूँ मानिनि मानि ।।[3]

<u>गुणानुसार 3 भेद -</u>

(1) उत्तमा (2) मध्यमा (3) अधमा ।

प्रायः सभी आचार्यों ने नायिका भेद कथन के अन्त में इस वर्ग का कथन किया है । भरत मुनि ने प्रकृति के आधार पर इनको लिखा है तथा विश्वनाथ एवं भानुदत्त ने इन तीन प्रकार की नायिकाओं का कथन किया है धनंजय ने इनका उल्लेख नहीं किया । हिन्दी के आचार्यों ने इनको गुणानुसार लिखा है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई दोहा सं0- 315
(2) - वही - 111
(3) - वही - 182

**मध्यमा -**

प्रिय हित करता है, तो हित करने वाली और अहित करता है, तो अहित चेष्टा करने वाली नायिका को मध्यमा कहते हैं । हित और अहित व्यवहार के अनुसार इसकी चेष्टा होती है ।[1]

राजधर सतसई की खण्डिता नायिका मध्यमा है, क्योंकि वह प्रिय के अहित करने ।पर स्त्री से संभोग करके आने। पर उसका भी व्यंग्योक्तियों द्वारा अहित करती है -

अनतौहै सौहैं द्रगनि, बिथुरे पैंचनि पाग ।
नटपदई आए यहाँ, भैरे बड़े सभाग ।।[2]

**जाति अनुसार 4 भेद -**

यह विभाजन कामशास्त्र पर आधारित है जिसके अनुसार नायिकायें- ।1। पद्मिनी ।2। चित्रणी ।3। शंखिनी एवं ।4। हस्तिनी होती है ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस वर्गीकरण का विशेष महत्व नहीं है । राजधर सतसई में मात्र पद्मिनी नायिका का वर्णन प्राप्त होता है ।

**।1। पद्मिनी -**

कामशास्त्र के अनुसार इस नायिका में पद्म की तरह सुगंध आती है । इसीलिए रसिक नायक उसके चारों ओर भ्रमर की भाँति मँडराता है -

ए पदमिनि तुव रूप लखि, फिरि आवत फिरि जात ।
रस के परसे लालु अब, भोंर भए मँडरात ।।[3]

**द्रष्टव्य -**

महा कवि देव ने 'रस विलास' में जाति अनुसार भी नायिकाओं का वर्गीकरण किया है ।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। रस० पृ०- 258
।2। राजधर सतसई दोहा सं०- 421    ।3। राजधर सतसई दो०सं०- 512
।4। रस विलास, देव-।पंचम विलास।छन्द सं०-4

निष्कर्ष :-

(1) राजधर की दृष्टि आदर्शवादी रही है, अतः उन्होंने धर्मानुसार स्वकीया नायिका का सर्वाधिक वर्णन किया है । कतिपय दोहे ही परकीया नायिका से सम्बन्धित हैं । वेश्या के वर्णन को उन्होंने संभवतः उचित नहीं समझा ।

(2) उन्होंने स्वकीया में पातिव्रत्य, शील और मर्यादा का वर्णन किया है ।

(3) स्वकीया के भेदों में मुग्धा के अन्तर्गत उन्होंने 'अंकुरित यौवना', 'नवोढा' एवं 'ज्ञात यौवना' को वर्ण्य बनाया है । नवोढा के अन्तर्गत ही 'रतवामा' एवं 'समधिक लज्जा वती' का वर्णन किया है, अतः यहाँ भानुदत्त से वे अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं । मध्या के साहित्य दर्पण के अनुसार भेद- 'प्रल्भयौवना', 'प्रल्भस्मरा' एवं 'मध्यम-व्रीडिता' का वर्णन किया है । साहित्य दर्पण के अनुसार प्रौढा के भेद- (1) 'स्मरान्धा' (2) 'गाढतारुण्या' (3) 'समस्तरतकोविदा' (4) 'भावोन्नता' (5) 'स्वल्पव्रीडा' (6) 'आक्रान्ता' एवं रस मंजरी के अनुसार 'आनन्द सम्मोहवती' राजधर सतसई में प्राप्त होते हैं ।

(4) रस मंजरी के अनुसार परकीया के भेद- गुप्ता (वृत्त सुरत गोपना), वाग्विदग्धा एवं क्रिया विदग्धा, लक्षिता, कुलटा एवं मुदिता का वर्णन किया गया है ।

(5) राजधर सतसई में अवस्थानुसार नायिकाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है । वासक सज्जा, विरहोत्कण्ठिता एवं स्वाधीनभर्तृका नायिकायें प्रगल्भा हैं । 'खण्डिता' मध्या है । अभिसारिका का वय प्रायः दूतीप्रशंसा करती है, संभवतः अभिसारिका मुग्धा है । प्रोषित पतिका प्रगल्भा है एवं उसके उपभेद-प्रवत्स्यत्पतिका, आगमिष्यत्पतिका, एवं आगतपतिका- का वर्णन किया गया है ।

६। दशानुसार- 'मानवती' एवं 'प्रेम गर्विता' का वर्णन है।

७। गुणानुसार- मात्र 'मध्यमा' नायिका का वर्णन है।

८। जात्यनुसार- मात्र 'पद्मिनी' नायिका का उल्लेख है।

सारांशतः राजधर सतसई नायिका भेद की दृष्टि से एक उत्तम ग्रन्थ है।

---

## दूती

### परिभाषाः-

नाट्य शास्त्र के पच्चीसवें अध्याय में दूती के भेद, गुण एवं कर्म का सर्वाधिक विस्तृत विवेचन किया गया है ।[1] दश रूपक[2] एवं साहित्य दर्पण[3] में इसका ही अनुकरण हुआ है, किन्तु रस मंजरी-कार भानुदत्त ने दूती का स्पष्ट लक्षण दिया है । 'दूत व्यापार पारङ्गमा दूती' (दूतस्य कर्म दूत्यम्) दूत्य अर्थात् युवक युवतियों को मिलाने के कार्य में प्रवीण स्त्री को दूती कहते हैं ।[4]

### दूती-भेद

भरत मुनि कृत नाट्य शास्त्र में वर्णित दूती भेद को ही क्रम भेद से दशरूपक एवं साहित्य दर्पण में अनुकरण किया गया है । इनके अनुसार दूती भेद निम्नलिखित हैं -

(1) दासी (2) सखी (3) शिल्पिनी (बढ़ई की स्त्री, धोबिन, तेलिन, तमोलिन रंगरेजिन इत्यादि) (4) धाय की लड़की (5) पड़ोसिन (6) लिंगिनी (संन्यासिनी आदि का चिन्हधारण करने वाली) (7) नटी (नाट्य शास्त्र में रंगोपजीवना) (8) कुमारी (नाट्य शास्त्र में 'बाला') (9) स्वयं दूती ।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) नाट्य शास्त्र 25/9-18

(2) दश रूपक 2/29

(3) सा0द0- 3/128, 129, 130

(4) रस मंजरी (हि0व्या0) पृ0 272

(5) नाट्य शास्त्र 25/9, 10 ; दश0 2/29; सा0द0 3/128

## :- राजधर सतसई में नायिका की सहायिकाएँ -:

राजधर ने नायिका की सहायिकाओं के वर्णन में विशेष रुचि प्रदर्शित की है । अनेक दोहों में दूती एवं सखियों के गुण-कर्मों को देखा जा सकता है । अतः, विषय को स्पष्ट करने के लिए हमने राजधर सतसई में वर्णित दूती-कर्म का क्रमानुसार विवेचन करते हुए, दूती के गुणों को भी दिखाते चलने का प्रयत्न किया है ।

### विरह निवेदन -

नाट्य शास्त्र में दूती को 'प्रोत्साहनेषु कुशला' कहा है ।[1] जब नायक नायिका दूरस्थ होते हैं, तो दूती उन्हें एक-दूसरे की विरह व्यथा का निवेदन[2] करके मिलन हेतु प्रोत्साहित करती है ।

राजधर सतसई की नायिका से दूती नायक का विरह निवेदन कर रही है -

विकल परे हैं धरनि पर, दृग बानन के घाइ ।
जीवै लालु जियाइ कै, अधर सुधा रस प्याइ ।।[3]

यहाँ '(नायिका के) नयन बाणों से घायल होकर नायक पृथ्वी पर पड़ा है' कहकर दूती नायक की विरहावस्था का निवेदन कर रही है । तथा 'लाल (नायक) को अधर-सुधा रस पिला कर जीवन प्रदान कीजिए' में दूती नायिका को प्रोत्साहित कर रही है ।

### अभिसरण के लिए प्रेरित करना

### कालज्ञा -

दूतियाँ प्रोत्साहन में कुशल होने के साथ-साथ 'कालज्ञा' भी होती हैं ।[4] अतः वे कालानुसार नायिकाओं को अभिसरण अथवा अभिसरण के लिए प्रोत्साहित करती हैं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) ना०शा० - 25/12, 13
(2) ना०शा० - 25/14 ; रस० पृ० 272
(3) राजधर सतसई, दोहा संख्या 502
(4) नाट्य शास्त्र 25/12

राजधर सतसई में शृंगार रस के अनुरूप सम्भवतः नायिका गौरवर्णी है और नायक श्याम वर्ण, अतः दूती कालानुसार (कृष्ण पक्ष एवं शुक्ल पक्षानुसार) नायिका को प्रोत्साहित करती है, कि कृष्ण पक्ष में वह नायक से अभिसरण करवाये एवं शुक्ल पक्ष में स्वयं अभिसरण करे -

दुहु पच्छ करिवौ करो, मिलवौ यहै उपाउ ।
वे कबहूँ आवैं यहाँ, कबहूँ तुम चलि जाउ ।।[1]

यहाँ दूती का कालानुसार अभिसरण-अभिसारण के लिए सुझाव द्रष्टव्य है ।

वैसे, तो दिवासंभोग शास्त्र वर्जित है, किन्तु दूती ब्राह्म मुहूर्त में भी (संभोग) का अवसर नहीं चूकने दे रही है, क्योंकि अभिसरण काल में चिड़ियों की चह-चहाट के बीच नायिका के नूपुर की ध्वनि विलीन हो जायेगी अर्थात् कोई उसका अभिसरण जान नहीं सकेगा -

चलि, बलि, प्यारी, भवन कौं, को समुझत सुनि सोर ।
पद नूपुर धुनि मैं परैं, चिरी चुह चुही भोर ।।[2]

नायिका से यह कहना कि '(हे, प्यारी !), तेरी बलिहारी जाऊँ' दूती के मधुर भाषिणी ('मधुरकथा')[3] गुण को प्रदर्शित करता है ।

## नायिका को ले आना -

'प्रत्युत्पन्नमति' दूती कर्म का निर्वाह अत्यन्त दुष्कर है । उसके लिए दूती को 'प्रतिभासितविचक्षणा' (प्रत्युत्पन्नमति) होना आवश्यक है ।[4]

---

(1) राजधर सतसई दोहा सं०- 515
(2) - वही - 461
(3) ना०शास्त्र - 25/12
(4) ना०शास्त्र - 25/9

## संदेश लेकर घर घर जाना -

राजधर सतसई में एक परकीया-नायिका की ननद जाग रही है एवं सास भी कान लगाये पड़ी है। ऐसे में दूती अटपटाती हुई फिर रही है, कि अब किस प्रकार उसके कर्म का निर्वाह होगा-

ननद निहारति नींद तजि, सासु लखत चित चाह।
अटपटात दूती फिरै, अब कस होगु निबाहु ॥[1]

दूती के 'अटपटात' फिरने से व्यंग है कि दूती 'प्रतिभावती' विचक्षणा नहीं है। इसीलिए दूती कभी-कभी निरुत्साहित हो जाती है (क्योंकि साहित्य दर्पण में 'उत्साह' दूती का गुण कहा गया है-[2]

ले आवै हम कौन विधि, नहीं इतै प्रिय चोहु।
निसि दिन हरि मो सौं करति, बिना दोष को रोषु ॥[3]

यहाँ दूती का दोष 'अनुत्साह' व्यंग है।

## छल प्रबंध -

कभी कभी दूतियाँ नायिकाओं को छल-प्रबंध पूर्वक नायक के समीप ले आती हैं।

एक दूती नायिका को वन-नदी (इत्यादि रमणीक स्थान) दिखाने के लिए कह कर, उसे भुलावा देकर अन्यत्र स्थान पर (जहाँ नायक छिपा होगा) ले जा रही है। नायिका को जब न बाग दिखाई दिए और न नदी दिखाई दी, तो वह दूती से पूछ बैठी-

न न दिखति वन ना नदी, नहिं है किहि धौं ठौर।
इत उत लावति रहति है, लाई और और ॥[4]

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 129
(2) [illegible] साहित्य दर्पण - 3/129
(3) राजधर सतसई दोहा संख्या- 121
(4) राजधर सतसई दोहा संख्या- 520

नाट्य शास्त्र में दूती के लिए नायिका को नायक से 'शून्यागार'[1] एवं 'सखी गृह'[2] में भी मिलाने का विधान है। रामसहाय सतसई की एक दूती प्रपंच पूर्वक नायिका को सूने घर में ले आई और नायक को संकेत से बता दिया है -

लै आई परपंच सौं, बहु बिधि रचि चतुराइ ।
सूने मन्दिर स्याम कौं, सैननि दई बताइ ॥[3]

एक दूती नायिका को ललिता (सखी) के गृह में ले आई -

सुबरन लतिका ललित यह, ललिता के घर माँहि ।
निहुटिन लाल लहाइयो, हिये लाई भरि बाँहि ॥[4]

तत्पश्चात् दूती तो नायिका को दगा देकर चली गई एवं नायिका सिर झुकाये बैठी रह गई -

लै आई भीतर भवन, रचन समीप सिंगारि ।
दगा गई उठि यह रही, नारि नवाई सुनारि ॥[5]

लेकिन नायक की आतुरता के कारण उसके (नायिका के) भागने का डर रहता है, अतः दूती नायक से भी धैर्य एवं चातुर्य पूर्ण व्यवहार के लिए कह रही है -

त्यौं त्यौं लैन मिलाइयै, भागि न पावै बाल ।
कीजै कछु न अतुरई, यह चतुरई निदान ॥[6]

---

(1) ना०शा० - 25/17

(2) ना०शा० - 25/16

(3) रामसहाय सतसई दोहा सं०- 259

(4) रामसहाय सतसई दोहा सं०- 115

(5) रामसहाय सतसई दोहा सं०- 470

(6) रामसहाय सतसई दोहा सं०- 140

नाट्य शास्त्र में व्याधि के बहाने ।व्याधिव्याजपदेशेन।[1] नायक-नायिका को मिलाने का विधान है । अतः एक दूती नायिका को ।झूठी। व्याधि का बहाना बनाकर वैद्य ।नायक। के पास ले गई ।वैद्य कोई रोग समझ नहीं पाया होगा, तब। दूती ने नायक को संकेत से बता दिया ।कि यह रोगिणी नहीं, यह तो वही नायिका है जिसे लाने के लिए उसने कहा होगा। -

पकर पकर अंगुरीनि सौं, नारी भेद बताइ ।
वैद पियरी मैं कर गह्यो, तो नहि छाँड्यो जाइ ।।[2]

प्रथम-प्रसंग हेतु उपाय करना -

नाट्य शास्त्र में दूती कर्म के अन्तर्गत ।नवोढा। नायिका का नायक से प्रथम प्रसंग में नाना उपायों द्वारा समागम कराने का विधान है[3], अतः राजधर सतसई की सखियाँ नवोढा को समागम हेतु रमण भवन में ले जा रही हैं -

संग आयसि है सखिन के, सौंकित सी उर माहि ।
चकित चित्त सी भवन मैं, निरखि नाह की छाँह ।।[4]

जब सखियाँ नायिका को रमण-भवन में अकेला छोड़कर चली आईं, तो नवोढा लज्जा एवं भय से पराधीन होने के कारण वापिस लौट आई, अतः सारी सखियाँ उसे पुनः जाने के लिए समझा रही हैं -

ज्यौं ज्यौं सिगरी कहत हैं, अबकैं फिरि तुम जाउ ।
त्यौं-त्यौं सिय हिय धकधकी, कीजे कहा उपाउ ।।[5]

---

।1। ना०शा० - 25/17
।2। राजधर सतसई दोहा सं०- 447
।3। नाट्य शास्त्र 25/15 एवं 17
।4। राजधर सतसई दोहा सं०- 485
।5। राजधर सतसई दोहा सं०- 313

नाट्य शास्त्र के अनुसार दूतियों को नायिका की नायक के प्रति अनुरक्ति एवं विरक्ति तुरन्त लक्षित कर लेनी चाहिए ।[1] अतः जब नायिका स्वयं ही समागमोत्सुक होती है, तब राजधर सतसई की सखियाँ (दूतियाँ) नायिका की नायक के प्रति अनुरक्ति उसकी अँखियों से ही भाँप लेती हैं -

प्रेम भरी रस रिस भरी, भरी सुरत के चाउ ।
लखि सखियाँ अँखियान कौं, रहति सबै सुख पाइ ।।[2]

शिक्षा -
======

भानुदत्त के अनुसार सखियाँ, नायिका को हित में प्रवृत्त करने के लिए और अहित से निवृत्त करने के लिए उपदेश दिया करतीं हैं ।[3] श्रृंगार रस में नायिका का हित रत्यानन्द में ही है, अतः सखियाँ नायिका को इसी में प्रवृत्त करतीं हैं । राजधर सतसई की एक प्रवत्स्यत्पतिका को सखियाँ नायक के प्रातः काल परदेश-गमन से पूर्व रात्रि-पर्यन्त (सम्भोग) सुख लूटने की शिक्षा दे रहीं हैं -

आस पास सिखवत सखी, अपनी अपनी ओर ।
सुख कीजो, जौं लौं ललनु, चलत चलाये भोर ।।[4]

एक सखी नायिका को यौवनावस्था में अवसर न चूकने के लिए कह रही है -

मेरी सिख यह मानि तू, समये को जनि चूक ।
ये सखि जोबनु धन गए, मानतु कौन सलूक ।।[5]

---

(1) ना0शा0- 25/18
(2) राजधर सतसई दोहा सं0- 297
(3)रसमंजरी (हिन्दी व्याख्या) पृ0- 262, 263
(4)राजधर सतसई दोहा संख्या- 314
(5)राजधर सतसई दोहा संख्या- 221

कभी-कभी नायक-नायिका में अनबन हो जाती है, तो सखियाँ नायिका को अहित से निवृत्त करने के लिए भी शिक्षा देती हैं-

1. समझि अबै तू सखिन सों, फिरि उपजैगो खेद ।
घर ही में घर होत है, जानति नाहीं भेद ।।[1]

2. भूलि न उपजनि दीजिए, आपहु माँहि विरोध ।
ऐसे नेह मनाइ पिय, और न पावै सोधु ।।[2]

## 'नायिका का मान भंग' के उपाय

नाट्य शास्त्र में दूती के लिए नायिका का मान भंग करने का भी विधान है ।[3]

मुग्धा मानिनी मुँह से नहीं बोलती है एवं घूँघट पट ताने बैठी हुई है, तो सखियाँ समझाती हैं -

बानि कहति नहि कानि किहि, आनन पट हठि तानि ।
जानति हानि न आपनी, अजहूँ मानिनि मानि ।।[4]

अतः सखियाँ नायिका से कहती हैं, कि नायक से इतना गुस्सा करके किस प्रकार निर्वाह होगा ? -

कौन भाँति निरबाहु यह, मोहि बड़ो है सोचु ।
पिय हिय में बसि रैनु दिनु, ए सौ करती रोसु ।।[5]

रामसहाय सतसई प्रौ की सखियाँ नायिका से कहती हैं, कि (नायक से) बिना बोले कहीं मन का दुख मिटता है ? अर्थात् उसे नायक से बोलना चाहिए -

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 58
(2) - वही - 316
(3) नाट्य शास्त्र- 25/15
(4) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 182
(5) रामसहाय सतसई दोहा संख्या- 436

बिनु बोले क्यौं मिलत है, आली मन को भेदु ।
हमहू जान्यौ जातु नहिं, यह नाहीं को भेदु ॥[1]

सम्भवतः, नायिका का मान भंग नहीं होता, तो सखियाँ कहती हैं, कि यदि 'मान' में ही ।संभोग से। अधिक रस है, तो कुछ मान करो -

रहु मानति यामैं अधिक, घटति कछु परमानु ।
प्यारी सों करियौ करौ, जो मन मान्यौ मानु ॥[2]

नायिका से सखियाँ कहती हैं, कि अभी ।मनाने पर। चलने में तेरा सम्मान है -

चलौ स अति सनमानु है, ना तर है अपमानु ।
बार बार यातें कहति, मानु कह्यौ सखु मानु ॥[3]

यदि नायिका मनाने परभी नहीं मानी तो नायक लौट जायेगा-

पलकु न छाड़्यौ संगु सखि, बलि करि लीनौ बीउ ।
मानति नाहीं मनायवे, फिरि सो परि है पीउ ॥[4]

'नायक के लौटने पर उसे पछताना पड़ेगा और उसका अपमान भी होगा' यह व्यंग है । जब किसी भी उपाय से नायिका नहीं मानती तो उसका मान भंग करने के लिए सखियाँ हा हा खा रही हैं -

हा हा करि हारी सखी, हरि हारे परि पाइ ।
ऐसी मेरी बीर ये सठ, छुटेव न जाइ ॥[5]

'गुरुमान' को भंग करने के लिए नायक अंतिम उपाय 'नति'[6] अपनाता है, किन्तु नायिका का 'नति' से भी मान भंग नहीं हुआ, अतः रसाभास है ।[7]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। राजधर सतसई दोहा सं०- 445
।2। - वही - 446
।3। - वही - 283
।4। - वही - 222
।5। - वही - 242
।6। रस मंजरी- पृष्ठ 130
।7। रस मंजरी- पृष्ठ 130 - 'असाध्यस्तु रसाभासः' ।

## विरहावस्था में देखरेख -

भानुदत्त ने सखी को 'विश्वास विश्रम्भकारिणी माध्यंधारिणी' कहा है ।[1] प्रोषित भर्तृका की सखियाँ कामशमनोपचार करती हुई उसकी देखभाल करती हैं -

(1) सो विरहिन लखि सखि सकल, चित में अधिक डरात ।
आतन ताप ब्यापै नहीं, जतन करत दिन रात ।।[2]

(2) जतन करति ज्यावति अली, ध्यावति पिय गुन गाय ।
नितु दिनु सखि लालति रहति, जीउ लिये ही हाथ ।।[3]

सखियाँ नायिका के लिए 'जतन' (विश्राम के लिए प्रयत्न) तो करती ही हैं, साथ ही सखी नायिका की विश्वास पात्रा होती है, अतः नायिका उससे अपने मन की बात भी कह देती है -

(1) इन जतननि सौं तन जरै, जिनि सुगंध अंग पोहु ।
बोरी हौंरी बिनु पिया, जतनु आन को होहु ।।[4]

(2) तनु अति पीड़ित होतु है, लगि सुगंध को लोड़ ।
आन ताप तबही मिटै, पिउ धन्वन्तरि होड़ ।।[5]

(3) तै बहरि बरहूँ करति, मैं बरजति यह जानि ।
सूखे तन पर बिरह की, आगि लगै जनि आनि ।।[6]

---

(1) रस मंजरी, कारिका 29- पृ०- 262
(2) राजधर सतसई दोहा संख्या- 366
(3) - वही - 367
(4) - वही - 294
(5) - वही - 25
(6) - वही - 119

**दूती के प्रति चेतावनी -**

दूती की पर्याप्त उपयोगिता होते हुए भी राजधर ने नायक एवं नायिका को दूती से सावधान रहने के लिए निर्देश किया है। क्योंकि दूती दोनों ओर मिली होती है। नायक नायिका की हृदयस्थ गुप्त बात जानकर वह उसका अनुचित लाभ भी उठाया करती है, अतः राजधर ने दूती को भूल कर भी कभी अपने हृदय का भेद न बताने के लिए निर्देश दिया है -

इत ते उत उतते इतै, पारति आगि उमैठ।<br>
भूलि न दीजै भेद कछु, दूती होति दुमैंठ ।।[1]

यहाँ यह द्रष्टव्य है, कि राजधर ने 'दूती' से सावधान रहने के लिए निर्देश दिया है, 'सखी' से नहीं, सम्भवतः उन पर भानुदत्त की रस मंजरी का प्रभाव है, क्योंकि भानुदत्त ने दूती से सखी का स्तर ऊँचा माना है।[2]

---

(1) राजधर सतसई दोहा संख्या- 85

(2) रस मंजरी (हिन्दी व्याख्या) पृष्ठ- 272

**निष्कर्ष -**

नायिका की सहायिकाओं में राजधर ने विशेष रुचि प्रदर्शित की है ।

राजधर सतसई में मात्र 'सखी' एवं 'दूती' का ही उल्लेख है ।

'सखी' द्वारा नायिका को शिक्षा देना, प्रथम-प्रसंग में समागम हेतु ले जाना, उसका मान भंग करना तथा विरहावस्था में उसकी देख-रेख करना वर्णित है ।

छन्द-प्रबंध द्वारा नायिका को नायक के पास ले जाने का कार्य दूती को सौंपा गया है । नायिका को अभिसारण की प्रेरणा देना भी दूती का कार्य है ।

इस प्रकार 'सखी' का स्तर 'दूती' की अपेक्षा उच्च दिखाया गया है । सम्भवतः यहाँ राजधर पर भानुदत्त की रस मंजरी का पर्याप्त प्रभाव है ।

---

## :-- नायक भेद --:

भरत से लेकर अकबर शाह तक, सभी आचार्यों ने विभिन्न आधारों पर नायक के भेदों का उल्लेख किया है ।

**भरत -**

(1) प्रकृति के आधार पर - (1) उत्तम (2) मध्यम (3) अधम[1]

(2) शील के आधार पर - (1) धीरोद्धत (2) धीर ललित (3) धीरोदात्त (4) धीर प्रशांत[2]

(3) नारी के प्रति रति सम्बन्धी तथा अन्य व्यवहार के आधार पर - (1) चतुर (2) ज्येष्ठ (3) मध्यम (4) अधम (5) संप्रवृद्ध[3]

**धनंजय - और धनिक[4] -**

नायिका के प्रति व्यवहार के आधार पर नायक के चार भेद - (1) अनुकूल (2) दक्षिण (3) शठ (4) धृष्ट

**भोज राज -**

(1) कथावस्तु के आधार पर - (1) नायक (2) प्रति नायक (3) उप नायक (4) नायकाभास (5) अधमाभास (6) तिर्यगाभास ।

(2) प्रकृति के आधार पर - (1) सात्विक (2) राजस (3) तामस ।

---

(1) नाट्य शास्त्र, भरत मुनि - 34/2

(2) - वही - 34/17

(3) - वही - 25/56-63

(4) दशरूपक - 2/7

(3) परिग्रह के आधार पर - (1) साधारण (अनेकानुरक्त)
(2) अनन्य जाति(अनन्यानुरक्त)

इसके अतिरिक्त भरत सम्मत उत्तम आदि तीन तथा धीरोद्धत आदि चार भेदों का उल्लेख किया ।

**विश्वनाथ -**

इनके नायक भेदों में कोई नवीनता नहीं है, किन्तु विषय की सुव्यवस्था के लिए अवश्य उल्लेखनीय है ।[1]

**भानुदत्त -**

तीन नूतन भेद उपस्थित किए- (1) पति (2) उप पति
(3) वैशिक ।

यद्यपि इन भेदों का स्वरूप पूर्वाचार्यों ने किसी अन्य रूप में प्रस्तुत किया था, पर इनका नाम-करण सर्वप्रथम भानुदत्त ने किया ।

पति और उपपति के नायिका के प्रति व्यवहार के आधार पर चार प्रकार के होते हैं - (1) अनुकूल (2) दक्षिण (3) धृष्ठ (4) शठ ।[2]

**रूप गोस्वामी -**

इन्होंने धीरोदात्त आदि चार तथा अनुकूल आदि चार भेदों के अतिरिक्त पति और उपपति दो भेदों तथा पूर्णतम, पूर्णतर और पूर्ण नायक भेदों की गणना की । वैशिक को इन्होंने नहीं लिया ।[3]

**अकबर शाह -**

इन्होंने कुछ नए नायक भेद माने हैं- (1) प्रछन्न (2) प्रकाश । ये दो भेद शठ नायक के हैं । इनके अतिरिक्त इन्होंने दो वर्ग और बनाए- प्रोषित, अभिमानी और विरही, ये तीन भेद एक वर्ग में हैं और भद्र, दत्त, कुचमार और पांचाल ये चार भेद द्वितीय वर्ग में । पहले वर्ग का आधार नायिका वियोग है और दूसरे वर्ग का आधार कामशास्त्रीय मान्यता ।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) सा०द०- 3/30-38 (2) रस० पृ०- 278-280
(3) हि०सा० का इति० भाग-6 पृ०- 104
(4) - वही -

## रसमंजरी सतसई में नायक भेद -

भानुदत्त के अनुसार नायक के तीन भेद हैं -

(1) पति (2) उप पति (3) वैशिक[1]

इन्होंने नायक के भेद निरूपण में नायिका के समान क्रम रखा है। जैसे, नायिका-स्वीया, परकीया और सामान्या होती है, उसी प्रकार नायक-पति, उप पति और वैशिक होता है।

### (1) पति -

विधि पूर्वक पाणि ग्रहण करने वाला नायक पति है।[2]

### (2) उप पति -

जो पति स्त्री के आधार अर्थात् धर्मानुष्ठान के नाश का कारण बन जाता है, उसे उप पति कहते हैं।[3]

### (3) वैशिक -

वेश्या के उपभोग में अत्यन्त रसादि नायक को 'वैशिक' कहते हैं। वैशिक अनेक वेश्याओं का भी उपभोग करता है अथवा एक वेश्या के साथ अत्यन्त उपभोग करता है।[4]

पति एवं उप पति के नायिका के प्रति व्यवहार के आधार पर चार-चार भेद हैं -

(1) अनुकूल (2) दक्षिण (3) धृष्ट (4) शठ[5]

यद्यपि दशरूपक कार को यह मत मान्य है कि 'जो नायक दूसरी (नायिका) के द्वारा हर लिया जाता है, वह पहली (नायिका) के प्रति दक्षिण, शठ या धृष्ट कहलाता है।[6] साहित्य दर्पणकार ने भी शृंगार प्रबंध की दृष्टि से इनका वर्गीकरण किया है।[7] प्रता० को भी यही मत मान्य है।[8]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रस मंजरी (हि०व्या०) पृ०- 278 (2) रस मंजरी (हि०व्या) पृ-278
(2) - वही पृ०- 289 (4) - वही पृ-291
(5) - वही पृ०-280, 291 (6) दशरूपक 2/6
(7) सा०द० सूत्र 3/35 (8) प्रता० 9/35

### (1) अनुकूल नायक -

दशरूपक कार ने 'एक नायिक' (जिसकी एक नायिका हो) को 'अनुकूल' कहा है ।[1] साहित्य दर्पणकार ने 'एक निरत' (अर्थात् जो एक ही नायिका में निरत हो) कहकर उसका समर्थन किया है ।[2] प्रताप रूद्रीकार का भी यही मत है[3]। भानुदत्त ने इसे और स्पष्ट कर दिया कि पराई स्त्री से सर्वदा पराङ्मुख रहने वाला (और अपनी में) सर्वदा अनुरक्त नायक, को 'अनुकूल' नायक कहा है ।[4] राजकर सतसई का एक नायक, जिसका चित्त नायिका के मुखचन्द्र के लिए चकोर है -

अंबर माँझ उजागरे, मुख ससि सोभा देत ।<br>
मन दृग संयुत पत करन, पिय चकोर चित देत ।।[5]

चकोर एक-निष्ठता का प्रतीक है, अतः नायक (पति) 'अनुकूल' है ।

स्वाधीन भर्तृका के नायक को भूल कर भी दूसरी स्त्री नहीं भाती है -

रस बसि करि राख्यो रसिक, भली रसीली बाम ।<br>
भूलि न भावत और तिय, निसुदिन अति अभिराम ।।[6]

यहाँ भी नायक (पति) 'अनुकूल' ही है ।

---

(1) दश० 2/7<br>
(2) सा०द० 3/37<br>
(3) प्रताप- 1/35<br>
(4) रस० पृष्ठ 281<br>
(5) राजकर सतसई दोहा सं०- 15<br>
(6) राजकर सतसई दोहा सं०- 354

(2) दक्षिण नायक -

दश० के अनुसार इस (पूर्व नायिका) के प्रति सहृदय रहने वाला दक्षिण नायक है ।[1] सा०द० के अनुसार दक्षिण नायक वह है, जिसे एक से अधिक रमणी जन के साथ समान अनुराग रखने वाला कहा गया है ।[2] यही मत प्रता० के अनुसार 'तुल्यो नेकत्र दक्षिणः'[3] तथा भानुदत्त ने समस्त नायिकाओं में बराबर और 'सहज' अनुराग करने वाला दक्षिण नायक कहा है ।[4]

राजधर सतसई में होली के अवसर पर किसी (नायिका) पर गुलाल की मूठ फेंकते हैं, किसी पर पिचकारी की धार चलाते हैं । इस प्रकार सब नायिकाओं से 'रस रास' करते हुए श्री कृष्ण (नायक) 'फाग' (होली) खेल रहे हैं -

काहू मूठ गुलाल की, काहू की पिचकारि ।
सबही सौं रस रास करि, खेलत फाग मुरारि ।।[5]

यहाँ समस्त नायिकाओं पर समान अनुराग रखने वाला नायक 'दक्षिण' है ।

(3) धृष्ट नायक -

दश० के अनुसार 'जिस (नायक) के अंगों में विकार (अन्य नायिका के प्रति किए गए प्रेम चिन्ह) स्पष्ट प्रकट होते हैं वह धृष्ट नायक है ।[6] सा०द० ने कुछ और स्पष्ट किया है- जो प्रेम में अपराधी होने पर भी अपनी प्रेमिका के कोप की चिन्ता नहीं करता, प्रेमिका की झिड़कियाँ खाने पर भी लज्जित नहीं होता और स्पष्टतया अपने दोषों के प्रकट हो जाने पर भी झूठ बोलकर उन्हें छिपाने को ही तैयार रहता है ।[7]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) दश० 2/7 (2) सा०द० 3/35

(3) प्रता० 1/35 (4) र०म० पृष्ठ 282

(5) रा०स०- दो०सं०, 254 (6) दश० 2/7

(7) सा०द०- 3/36

जबकि भानुदत्त ने बार-बार अपराध करके भी निडर रहने वाला, बार-बार रोके जाने पर भी अनुनय विनय में लगा हुआ नायक 'धृष्ट' कहा है।[1]

किन्तु राजधर सतसई में अन्य नायिका के उपभोग चिन्ह धारण करने वाला (खण्डिता के सामने आने वाला) नायक दशरूपक के लक्षण के अनुसार 'धृष्ट' ही कहा जा सकता है -

(1) अलसौहैं सौहैं दृगनि, बिथुरे पेचनि पाग ।
लटपटई आये इहाँ, भैरे भले सभाग ।।[2]

(2) भली भाँति भूषित भई, टिकुली भौं सुखदैन ।
अबौं काम करी नहीं, लागत भव मिमैन ।।[3]

**निष्कर्ष -**

राजधर सतसई नायिका प्रधान होने से नायक से सम्बन्धित दोहे अत्यल्प हैं ।

राजधर ने अनुकूल, दक्षिण एवं धृष्ट नायकों का वर्णन किया है । अधिकांश दोहे पति से सम्बन्धित हैं, कुछ दोहे उपपति से । वैशिक का वर्णन नहीं है ।

शठ नायक एवं वैशिक का वर्णन न करने का कारण संभवतः राजधर का आदर्शवादी दृष्टिकोण ही है ।

---

(1) रस0 पृ0285
(2) राजधर सतसई दोहा सं0- 42।
(3) राजधर सतसई दोहा सं0- 201, विस्तृत विवरण के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का शीर्षक- 'खण्डिता की व्यंग्योक्तियाँ' देखिए ।

## नायक के दूत

'दूत' उसे कहते हैं, जिसे विविध कार्यों के लिए यहाँ वहाँ भेजा जाया करता है।[1]

दूत तीन प्रकार के होते हैं -

(1) निःसृष्टार्थ (2) मितार्थ (3) संदेशहारक[2]

### संदेशहारक -

संदेशहारक दूत उसे कहते हैं, जो कि उतनी ही बात करे, जितनी उसे बताई जाये।[3] नायक नायिका का पत्र वाहक भी संदेशहारक ही है।

राजधर सतसई में एक नायिका अपने देवर के द्वारा पत्र भेजती हुई कहती है, कि नायक से कह देना, कि अवधि बीतने के साथ ही उसकी स्वांस चली जायेगी -

दीजो देवर जात ही, पाती पति के हाथ।
सुनि लीजो मेरी चली, स्वांस अवधि के साथ॥[4]

यहाँ देवर को 'सन्देशहारक' दूत बनाया गया है।

जैसे 'उद्धव गोपी सम्वाद' में उद्धव जी को 'निःसृष्टार्थ दूत की श्रेणी में रख सकते हैं, क्योंकि वे स्वयं ही तो नायक श्री कृष्ण की मनः स्थिति समझकर उन्हें समझाते हैं तथा गोपियों (नायिकाओं) को भी अपनी ओर से सन्देश देते हैं।

---

(1) सा०द० - 3/47
(2) सा०द० - 3/47
(3) सा०द० - 3/49
(4) राजधर सतसई- दोहा सं०- 154

किन्तु रामधर सतसई में उद्धव जी को सन्देशहारक तक ही सीमित रखा है -

(1) कीनों कहा विवेक हरि, छाँड़ी बिनु अपराध ।
अब ऊधौ प्रभु वचन की, रही न मन में साध ।।[1]

(2) अपनी हरि हरि मों लयो, मैं हरि हाथ बिकान ।
अब कीनी निरधार हौं, पिय न विचारी आन ।।[2]

यहाँ गोपियों की उद्धव से विरह निवेदन हेतु प्रार्थना की गई है, अतः उद्धव संदेशहारक ही कहे जायेंगे ।

**निष्कर्ष -**

चूँकि, रामधर सतसई नायिका प्रधान है, अतः नायक का वर्णन अत्यल्प हुआ है ।

नायक के सहायकों का वर्णन भी नगण्यप्राय ही है ।

शृंगारी नायक के सहायक- (1) विट (2) चेट (3) विदूषक इत्यादि[3] का वर्णन नहीं है । क्योंकि ये प्रायः रूपकों में ही बाहुल्य में देखने में आते हैं ।

नायक के दूत मात्र उद्धव एवं टेसर हैं, जो गुणों की दृष्टि से मात्र 'संदेशहारक' हैं ।

---

(1) रामधर सतसई दोहा संख्या- 417
(2) रामधर सतसई दोहा संख्या- 333
(3) साहित्य दर्पण - 3/40

अध्याय - 5

# राजधार सतसई में प्रकृति - चित्रण

# राजधर सतसई में प्रकृति - चित्रण

## रीतिकालीन कवियों का प्रकृति-चित्रण :-

" इन (रीतिकालीन) कवियों का मुख्य विषय शृंगार वर्णन ही था । राज प्रसादों के विलासपूर्ण वातावरण में नायिकाओं के हाव-भाव और सौन्दर्य का वर्णन करना ही इनका उद्देश्य था, अतः इस काल में हमें मानव सौन्दर्य के उपमान के रूप में प्रकृति का सबसे अधिक उपयोग प्राप्त होता है । शृंगार रस के आलम्बन नायक-नायिका के भावों को उद्दीप्त करने के लिये ऋतु वर्णन और बारहमासे के रूप में भी प्रकृति का पुयोग प्राप्त होता है । स्वतंत्र प्रकृति वर्णन का इस काल में अभाव है । राज प्रासादों के विलासपूर्ण जीवन तक इस काल के कवियों की दृष्टि सीमित थी, प्रकृति के उन्मुक्त क्षेत्र से वे बहुत दूर थे । अतएव जहाँ कहीं आखेट अथवा उपवन आदि के वर्णन हैं, वे भी रीतिबद्ध । आचार्य केशव ने कुछ इस प्रकार के नियम से प्रतिपादित कर दिये थे, जिनके अनुसार कविगण काव्य में प्राकृतिक दृश्यों का मेल बैठा करके वर्णन कर देते थे । उन्हें स्वतः निरीक्षण की आवश्यकता का अनुभव नहीं होता था और प्रायः वर्णन देश-काल के दोष से पूर्ण होते थे ।[1] अधिकतः इन कवियों ने प्रकृति का उपभोग अलंकार और उद्दीपन के रूप में ही किया है, प्रकृति के स्वच्छंद क्षेत्र में इन्होंने पदार्पण नहीं किया है ।[2]

## राजधर सतसई में प्रकृति के विविध रूप

राजधर सतसई के प्रकृति-चित्रण का निम्नलिखित रूपों के अन्तर्गत विवेचन किया जा सकता है --

(1) आलम्बन रूप (2) पृष्ठ-भूमि - वस्तु आलम्बन एवं भाव आलम्बन रूप में
(3) उद्दीपन रूप (4) अप्रस्तुत विधान अथवा अलंकार रूप
(5) उपदेश और नीति का माध्यम (6) कवि-समय ।

---

(1) हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, डा० किरण कुमारी गुप्त, पृ० - 186, 187
(2) ------------ वही ------------------ पृ० - 268

राजधर सतसई में प्रकृति-चित्रण प्रायः षड् ऋतु अथवा बारहमासा सापेक्ष है, अतः इनका संक्षिप्त परिचय देना भी उचित होगा ।

**भारतीय ऋतुएँ एवं मास**

भारतीय ऋतुएँ सूर्य के क्रमशः दो-दो राशियों में रहने के अनुसार होती हैं । "मकर से दो-दो राशियों में सूर्य के रहने से शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और हेमन्त ऋतुएँ होती हैं।"[1] जबकि चन्द्रमास एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा तक होता है । इस प्रकार एक ऋतु में दो चन्द्रमास होते हैं ।

विभिन्न ऋतुओं (अथवा मासों) में प्रकृति के पर्यावरण तथा व्यक्तियों के तन-मन पर पड़ने वाले प्रभाव में परिवर्तन होता है । अतः, प्रत्येक ऋतु (अथवा मास) की अपनी-अपनी विशेषता है । इसी तथ्य को आधार मानकर कवियों ने प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत "षड् ऋतु वर्णन" तथा " बारहमासा " परम्परा का श्रीगणेश किया होगा ।

## आलम्बन - रूप

" आलम्बन के रूप में प्रकृति कवि के लिये (भाव प्रकाशन का अप्रस्तुत) साधन न बनकर (प्रस्तुत रूप में) साध्य बन जाती है । कवि प्रकृति का निरीक्षण करता है और उसके सूक्ष्म तत्वों के प्रति आकर्षित होता है । प्रकृति की प्रत्येक वस्तु का पृथक-पृथक परिगणन न कराकर वह सबको एकत्रित करके संश्लिष्ट वर्णन करता है । उसका मन प्रकृति-दर्शन में रम जाता है, वह आत्म विभोर हो उठता है और अपनी तल्लीनता में हृदय की मुक्तावस्था को प्राप्त होता है । उसके प्रकृति-चित्रण की यह विशेषता होती है कि पाठक को प्रकृति के प्रत्यक्ष-दर्शन का सा आनन्द प्राप्त होता है ।[2]

राजधर ने युगानुसार कतिपय दोहे ही प्रकृति के आलम्बन रूप के अन्तर्गत लिये हैं, ये भी प्रायः "षड ऋतु" एवं "बारहमासा" की परिपाटी से युक्त हैं ।

---

(1) मानसागरी पद्धति (भाषा टीका), ऋतु ज्ञान (अध्याय), पृ० - 31

(2) हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, डा० किरण कुमारी गुप्ता - पृ० - 27

**ग्रीष्म**

ग्रीष्म ऋतु के प्रभाव से सरिताओं का जल उष्णता के कारण छुआ तक नहीं जाता है । स्नान करते समय पीड़ा व्यक्त है -

सीतल अति सरितान के, होति अगनि सम नीर ।
छुवे न जात अन्हात लगि, बढ़ावत तनहि पीर ।।[1]

रवि-रथ अंग - प्रत्यंगों को व्याकुल कर देती है । ऐसा लगता है, मानो मग में अंगार बिखरे हुये हों और वन में दावानल परिव्याप्त हो -

लागति रज मग पगनि मैं, अंग अंग अकुलाय ।
बगरे मनो अंगार मग , लगी अगनि अति दाव ।।[2]

**वर्षा**

वर्षा ऋतु में वन-सौन्दर्य की रमणीय छटा एवं प्रवाहयुक्त सरिताओं का वर्णन देखिये -

(1) परि झमकों झ हरि बुंद बुन, बन तरु पात नहात ।
बरसे घन झर मेर के, मनु सीतल जलजात ।।[3]

(2) परि बूंदें सरितान जल, उछलत बुंदन जाल ।
मति प्रवाह सौं मिलि मनो, बहिरे मुकता - माल ।।[4]

काली घटायें आच्छादित हैं एवं पंक्तिबद्ध बगुले उड़ रहे हैं । ऐसा प्रतीत होता है, मानो जलधि में तारे प्रतिबिम्बित हो रहे हों -

सोहति स्याम घटानि मैं, उड़ी बगनि की पाँति ।
प्रतिबिम्बित ज्यों जलधि जल, तारनि सोभ समाति ।।[5]

---

(1) रायधर सतसई - दो०सं० - 574
(2) --- वही - - दो० सं० - 576
(3) --- वही - - दो०सं० - 600
(4) --- वही - - दो० सं०- 601
(5) ---वही - - दो०सं० - 605

**शरद**

शरद ऋतु में आकाश निर्मल हो गया है और चंद की द्युति अत्यन्त कोमल प्रतीत हो रही है -

आई शरद सुहावनी, निरमल भयौ अकासु ।
द्युति कोमल अति चंद की, जिहि कीनी हरि रासु ।।[1]

वन में खड़े हुए वृक्ष दीर्घ कालीन तपस्या में निरत मुनियों की भाँति प्रतीत हो रहे हैं । जिनमें से विकसित कलियाँ उनके नखों जैसी प्रतीत हो रही हैं -

मुनि तरुवर तपु सौं करत, बसि बन मैं बहु काल ।
लखियतु कुटिल कलीन मिस, बढे करनि नख जाल ।।[2]

मार्ग में विकसित केवड़े के श्वेत एवं कंटक युक्त दलों से निकलते हुए भ्रमर चन्द्रमा की किरणों सदृश प्रतीत हो रही है -

अलि भर संयुत विकसि दल, कढे केवरे माह ।
प्रकटे कर ससि बिम्ब ते, सो निकसे जनु राह ।।[3]

**हेमन्त**

हेमन्त ऋतु में नदियों के शीतल जल कण मलय बयार से युक्त होकर स्फुलिंग समान शरीर पर प्रभाव डालते हैं -

शीतल कन जल नदिन तैं, लै लै मलय बयारि ।
डारत तनन मैं लगत परि, ते फुलिंग अनुहारि ।।[4]

तुषार के कारण सब जीव-जन्तु वैसे ही विकल हो रहे हैं, उस पर से शीतल बयार तो अपार पीड़ा वर्धक है -

विकल होत सब जंतु तनु, निसु दिन लगति तुषार ।
तैसी सीत बयारि तै, बाढति पीर अपार ।।[5]

---

1। राजधर सतसई - दो० सं० - 616
2। राजधर सतसई - दो० सं० - 622
3। राजधर सतसई - दो० सं० - 621
4। राजधर सतसई - दो० सं० - 639
5। राजधर सतसई - दो० सं० - 642

शीतल सरिताओं का जल अत्यधिक शीतल हो जाता है, जिसमें स्नान करने पर अंग-प्रत्यंग पाषाण - सम जड़ हो जाते हैं -

जल सीतल सरितान के, यौं सीतल ह्वै जात ।
न्हात होत जड़ अंग सब, पाथर सम दरसात ॥[1]

राजधर ने विविध ऋतु जन्य प्रकृति पर प्रभाव एवं पर्यावरण का आलम्बन रूप में चित्रण किया है । रीतिकालीन कवि होने के नाते इन्होंने आलम्बन रूप में प्रकृति का पर्याप्त सूक्ष्म निरीक्षण किया है ।

## पृष्ठ - भूमि

### ( वस्तु आलम्बन और भाव आलम्बन रूप में )

कभी-कभी कवि किसी घटना या परिस्थिति के आधार में भी प्रकृति-चित्रण करता है । घटना के समय और स्थान की अभिव्यक्ति प्रकृति के परिवर्तित रूपों द्वारा इतने मनोरम और स्वाभाविक रूप में हो जाती है, कि पाठक कुछ कहे सुने बिना भी सब कुछ समझ लेता है । वह मानसिक रूप से स्वयं घटना स्थल पर उपस्थित होकर प्रत्यक्ष-दर्शन का आनन्द लाभ करता है । इस रूप में प्रकृति .. स्वतंत्र आलम्बन तो नहीं होती, किन्तु घटनाओं के विकास और परिस्थितियों के प्रसार से उसका समवाय संबंध होने के कारण समवेत-आलम्बन अवश्य कही जा सकती है ।

जब नायक अथवा प्रिय नायिका के द्वारा प्रकृति वर्णन मात्र पृष्ठ भूमि होकर उपस्थित होता है, किन्तु व्यंग्य अर्थ ही ( कवि का अथवा नायक-नायिका का ) अभिप्रेत होता है, तब प्रकृति वर्णन दो प्रकार का हो जाता है ---

1- वस्तु आलम्बन के रूप में

2- भाव आलम्बन के रूप में[2]

---

(1) राजधर सतसई - दो0 सं0 - 643

(2) गाथा सप्तशती- डा0 परमानन्द शास्त्री - पृ0 - 161

**(1) वस्तु आलम्बन**

एक नायिका सरोवर तक जल भरने गई थी । उस स्थान की परिस्थिति देखकर वहाँ से लौट आई और पुनः जल भरने हेतु सरोवर जाते समय रास्ते में नायक मिल गया, तो वह वचन-विदग्धा नायिका उस स्थान ( सरोवर तट ) का वर्णन करती है -

धर्यो मौनु बक बूड़ि तट, हंस धवल सब सेत ।
भ्रमर - पुंज धरि माल मनु, तपत कमल रवि हेत ।।[1]

बकों ने मौन धारण कर लिया है । यहाँ एकान्त व्यंग्य है । सब श्वेत हंस हैं । भ्रमर-पुंजों की माला धारण किये कमल सूर्य के हेतु तपस्या कर रहे हैं अर्थात रमणीक स्थान व्यंग्य है ।

व्यंग्य यह है कि वह स्थान ( सरोवर तट ) एकान्त एवं रमणीय होने से रमण के लिये उपयुक्त है । नायिका का नायक से कहने का तात्पर्य यह है, कि मैं वहाँ जा रही हूँ, तुम भी पीछे से आ जाना ।

इस दोहे में वस्तु व्यंग्य के आलम्बन रूप में ही प्रकृति का वर्णन हुआ है ।

**(2) भाव आलम्बन**

राजधर सतसई में एक वाग्विदग्धा नायिका नायक से ( अथवा नायक-नायिका से ) कहती है -

ललित लता लपटी तरुनि, तरुनि तरुन छिवि अंग ।
नूतन कलिका तन बनी, पुलकित व्यापि अनंग ।।[2]

तात्पर्य यह है, जिस प्रकार लता तरु से लिपट कर, तन में अनंग व्याप्त होने से पुलकित हो रही है, उसी प्रकार नायिका नायक से अपेक्षा करती है ।

यहाँ नायिका की नायक के प्रति उत्सुकता व्यंग्य है, प्रकृति का वर्णन तो उसकी पृष्ठ भूमि मात्र है ।

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 625

(2) राजधर सतसई - दो० सं० - 552

## उद्दीपन रूप

प्रकृति वर्णन के इस रूप में प्रकृति कवि के अनुराग का विषय न होकर नायक और नायिका के अनेक भावों का उद्दीप्त करने का साधन मात्र बन जाती है ।

### ऋतु वर्णन

संस्कृत के रस शास्त्रियों ने ऋतु वर्णन को उद्दीपन के अन्तर्गत रखा है । रीति काव्यों में जो संस्कृत के नायिका भेद परम्परा में आते हैं, ऋतु वर्णन को उद्दीपन के ही भीतर रखा गया है ।[1]

### सापेक्ष ऋतु वर्णन

ऋतु वर्णन को उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत डाल देने का परिणाम यह हुआ, कि रीति काव्यों में यह नायिका के संयोग और वियोग के साथ संबद्ध हो गया । संयोगावस्था में जो ऋतुएं प्रेम को उद्दीप्त ऋतु करने में सहायता पहुँचाती हैं, वे ही वियोगावस्था में अत्यन्त कष्टकर सिद्ध होती हैं । इसलिये एक ही ऋतु को दोहरी दृष्टि से देखा गया है ।[2]

## ऋतु और संयोग वर्णन

### बसन्त

षड् ऋतुओं में बसन्त सर्वश्रेष्ठ है । इसे ऋतुराज भी कहा गया है । बसन्त अपनी अलौकिक श्री सुषमा को दिग्दिगंत में बिखेर कर समस्त वातावरण को सुरभित और मादक बना देती है ।

राजधर ने सरस बसन्त आने पर नर-नारियों का मदन मति हो जाना कहा है -

धरि रसाल सिर मंजरिन, गीत सुधा बरसंत ।<br>
फिरत मदन मति नारि नर, आये सरस बसंत ।।[3]

यहाँ प्रथम पंक्ति में बसंत वनिता उन्माद व्यक्त किया गया है तथा द्वितीय पंक्ति में बसंत को कामोद्दीपक कहा गया है ।

---

(1) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - भाग -6, डा० नगेन्द्र - पृ० - 157

(2) ---------- वही ---------------------------- - पृ० - 159

(3) राजधर सतसई - दो० सं० - 564

## वर्षा

वर्षा ऋतु में घटा घुम-घुम कर बरस रही है । ऐसे ।उद्दीपक वातावरण। में "घनश्याम जू" । नायक । स्नेह मानने के कारण नायिका के पास आ गए हैं -

झूमि झूमि घन की घटा, झमकों बरसत मेहु ।
आए श्री घनश्याम जू, भीती मान्यौ नेहु ।।[1]

## शरद

शरद ऋतु की रात्रि में, चन्द्रमा के उदय होने पर, समस्त अंगों में कामोद्दीपन होने से मानिनी नायिका मान छोड़ रही है -

उदित भयौ ससि सरद निसि, कमतु होतु अभिराम ।
छूटत मानिनि मानु लखि, व्यापि अंग सब काम ।।[2]

## शिशिर

शिशिर ऋतु शिशिर ऋतु में जाड़ा समाप्तप्राय होता है, अतः कवि ने शीत को अतिथि कहा है । ऐसी ऋतु के फागुन माह में नर और नारी फागुन गीत गा रहे हैं अर्थात यह ऋतु उन्माद कारक है -

आई सिसिर छुटेत लखि, भयौ पाहुनो सीत ।
आनँद मन सब नारि नर, गावत फागुन गीत ।।[3]

## हेमन्त

हेमन्त ऋतु में शीत जन्य कम्प के कारण मानिनी स्वतः ही मान छोड़कर नायक का आलिंगन कर लेती है -

उठतु कंपु तन सीत लगि, मिलति आपहु कंत ।
मान छुड़ावन कौं तियन, भयौ चतुर हेमंत ।।[4]

यहाँ हेमन्त ऋतु को अत्यधिक कामोद्दीपक वर्णित किया गया है ।

---

।1। राजधर सतसई - दो0 सं0 - 90
।2। राजधर सतसई - दो0 सं0 - 628
।3। राजधर सतसई - दो0 सं0 - 646
।4। राजधर सतसई - दो0 सं0 - 640

## ऋतु और वियोग वर्णन

संयोग वर्णन में जो वस्तुएँ सुखप्रद होती हैं वे ही वियोग वर्णन में दुःखप्रद हो जाती हैं।

### बसन्त

बसन्त ऋतु में प्रफुल्लित वन एवं तालाबों में तमाल प्रोषित भर्तृका के लिए विरहोद्दीपक है -

क्यों रहिए सखि निरखि वन, फूले ताल तमाल ।
माधव नहिं आए यदपि, आयो माधव काल ।।[1]

यहाँ विरह की "उद्वेग" काम दशा का वर्णन है।

बसन्त आने पर प्रोषित भर्तृका, नायक को विरह निवेदन प्रेषित कर रही है -

जानी जात न हेम ऋतु, विरह ज्वाल नहिं और ।
कौ कवर लीजौ भी, आवत नहीं बसंत ।।[2]

कवि समय के अनुसार कौआ कोयल का पालन करता है। चूंकि, संगत का प्रभाव प्रत्येक पर पड़ता है, अतः काक-पालिता कोयल (बसन्त में) नायिका को क्रूर प्रतीत होती है, क्योंकि वह कूक - कूक कर उसका हृदय दग्ध कर रही है -

ज्यों - ज्यों सुनि हिय दहत त्यों, करत कूक सम तीर ।
आली, पाली काक की, कह जाने पर पीर ।।[3]

किन्तु, कभी नायिका को वही कोयल कुहू - कुहू करके, नायक को बुलाती जान पड़ती है -

सखि वियोग वन पैठ रितु, अलि कोकिल हित मान ।
कुहू बुलावत करि कुहू, प्रीतम कर तन कान ।।[4]

---

।1। रामधर सतसई - दो०सं० - 551
।2। रामधर सतसई - दो० सं०- 285
।3। रामधर सतसई - दो०सं० - 560
।4। रामधर सतसई - दो० सं०- 561

**ग्रीष्म**

बसन्त ऋतु के समाप्त होने तक जब नायक नहीं आया, तो ग्रीष्म ऋतु में प्रोषित भर्तृका के मन की आशा टूट गई । वह सखी से कहती है कि सभी निर्जीव वस्तु इस ऋतु में प्रबल त्रास पाते हैं -

प्रीतम आवन की अली, अब टूटी मन आस ।
प्रबल जन्तु निरबल बिकल, इहि रितु पावत त्रास ।।[1]

व्यंग्य यह है, कि वह (नायिका) विरह के कारण बिना नायक के अत्यन्त निर्बलता एवं त्रास की अनुभूति कर रही है ।

ग्रीष्मकाल में सूर्य की तीक्ष्णता में वृद्धि होने लगती है किन्तु प्रोषित भर्तृका को ऐसा प्रतीत होता है, कि सूर्य भी उसे संभवतः अकेली (बिना नायक के) देखकर, अपनी तीक्ष्णता के द्वारा ग्रसित कर रहा है -

ग्रीष्म आई कंत बिनु, धरी तिग्म द्युति भान ।
होन लगी दिन एक में, बैरन को परमान ।।[2]

प्रोषित भर्तृका को "लपट" अत्यन्त तीक्ष्ण अनुभूत हो रही है । नायक के बिना, लपट नायिका पर तलवार की धार के समान झपट रही है और उसका तन लपट रही है -

लपटे तन तन कंत बिन, झपटे ज्यों असिधार ।
लपटे अगि चहुँ ओर तें, लपटे तिग्म अपार ।।[3]

यहाँ ग्रीष्मकालीन लपटों को अत्यधिक विरहोद्दीपक रूप में चित्रित किया गया है ।

**वर्षा**

पावस ऋतु विरहिणी को पावक के समान दाहक होती है अर्थात वर्षा में कामाग्नि उद्दीप्त हो उठती है -

नाम सखे पावस ऋतु, बरसत भरि घन सीत ।
पावक सम दाहक अग्नि, विरहिन कौं विपरीत ।।[4]

---

(1) राजधर सतसई- दो०सं० - 571
(2) राजधर सतसई- दो०सं० - 570
(3) राजधर सतसई- दो० सं०- 575
(4) राजधर सतसई- दो०सं० - 598

मेघ की गर्जना प्रोषित पतिका में काम की तर्जना करती है -

गरज्यतु सुनि घनु घुमड़ि कै, तरज्यतु ताप अनंग ।
थरिज्यतु तन मन धीर क्यों, थरिज्यतु बिनु प्रिय संग ।।[1]

जब नायिका के विरह तप्त तन पर वर्षा की जलधार पड़ती है तो उसका हृदय ही फटने लगता है ।[2] वर्षा के कारण उसका विरह द्रौपदी के चीर की तरह (कभी समाप्त न होने वाला) प्रतीत होता है ।[3] कहीं पावस ऋतु में मोर की कूकें प्रोषित पतिका के मन में हूक उठाती हैं ।[4] कभी-कभी चातक उसे पीउ (नायक) का नाम रटता हुआ प्रतीत होता है ।[5] इस प्रकार वर्षा ऋतु प्रोषित भर्तृका के लिए अत्यधिक रत्युद्दीपक है ।

<u>शरद</u>

शरद ऋतु में केवड़े के कंटक युक्त पत्र विरही जनों को आरे के समान दिखाई पड़ते हैं -

फूले उपवन केवुरे, कंटक संयुत पात ।
हुआ करन कौं विरहि जन, मनु आरे दरसात ।।[6]

प्रफुल्लित कमलों से निकलती हुई भ्रमरों की श्रेणी ऐसी प्रतीत होती है, मानों कामदेव विरहिणी को मारने के लिए करवाल लेकर आ रहा हो -

प्रफुल्लित कुमुदिन से कढ़ी, अलि सैनी इक बार ।
विरहिन मारन मार मनु, कर लीनी करिवार ।।[7]

उड़ते हुए पराग कण ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानों कामदेव खरसान (धार करने वाली मशीन) पर अपने बाण पैने कर रहा हो -

पैनावत कौ मदन सर, लिय केतक खरसान ।
परि पराग मिस अनल कनु, धाति के झरत निदान ।।[8]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 594
(2) " " - दो० सं० - 650
(3) " " - दो० सं० - 293
(4) " " - दो० सं० - 599
(5) " " - दो० सं० - 592
(6) " " - दो० सं० - 617
(7) " " - दो० सं० - 629
(8) " " - दो० सं० - 620

### हेमन्त

हेमन्त ऋतु में शीत के आगमन के कारण रात्रि में नायिका बिना नायक के काम विह्वल हो रही है -

आई रितु हेमन्त, भयौ आगमनु सीत कौ ।
तन संयोग बिन कंत, कटै कौन बिधि जामिनी ।।[1]

यहाँ द्वितीय पंक्ति में नायिका की "उद्वेग" काम दशा का वर्णन है ।

तुषार एवं शीतल समीर के लगने से नायिका हेमन्त ऋतु में परिरंभ का स्मरण आने से, अधीर हो रही है -

लगि तुषार कर कंद तन, सीतल अधिक समीर ।
आवति पिय परिरंभ सुधि, छोड़ति मानिनि धीर ।।[2]

यहाँ "स्मरण" संचारी से नायिका की काम दशा का मार्मिक चित्रण है ।

नायिका अपनी सखी से कहती है कि विरही जनों की पीड़ा को देखते हुए, ईश्वर ने यह विवेकपूर्ण कार्य नहीं किया कि हेमन्त में दिन छोटे एवं रात्रियाँ दीर्घ कर दीं -

बिधि मैं कियो बिबेकु अलि, लखि बिरही जन पीर ।
लघु बासर हेमन्त किय, छुटै न मन की धीर ।।[3]

## बारहमासा

जैसा कि हम पहले विवेचन कर चुके हैं कि छह ऋतुओं के अन्तर्गत ही बारह मास आते हैं, जिनका अस्तित्व ऋतुओं से पृथक नहीं है । न ही मास विशेष के कारण सापेक्ष प्रकृति में परिवर्तन का विशेष महत्व है । परन्तु, कवियों ने प्रकृति चित्रण में बारहमासा की परिपाटी को स्वीकार्य किया है, अतः यहाँ हम राजधर सतसई में "बारहमासा" के वर्णन को पृथक से विवेचित कर रहे हैं ।

---

(1) राजधर सतसई - सोरठा सं0 - 631
(2) राजधर सतसई - दोहा सं0 - 635
(3) राजधर सतसई - दोहा सं0 - 645

## राजधर सतसई में बारहमासा

**ज्येष्ठ**

नायिका ने नायक के वक्ष से लगकर अपने तन की तपन (काम-तपन) दूर कर ली है । जिस प्रकार ज्येष्ठ मास की दोपहरी में (किसी यात्री ने) घन की सुखद-शीतल छाया प्राप्त कर ली हो -

पिय हिय लगि तिय तन तपनि, दूरि करि पल माँहि ।
जेठ मास की दुपहरी, ज्यौं पैयत घन छाँह ।।[1]

**श्रावण**

श्रावण मास को तो राजधर ने बधिक के समान कहा है, जो विरही जन रूपी मृगों को, पीड़ा पहुँचाने हेतु वर्षा-नीर रूपी तीरों का लक्ष्य बना रहा है -

आयौ सावनु बधिक सम, बरसावन सर नीर ।
तकि बिरही जन मृगनिकौं, उपजावन तन पीर ।।[2]

यहाँ "तक-तक" कर विरही जनों को ही सावन बधिक अपने तीरों का लक्ष्य बना रहा है । व्यंग्य यह है कि सावन विरही जनों के लिए अत्यधिक कामोद्दीपक होता है ।

यहाँ श्रावण मास का प्रकृति के उद्दीपन रूप में वर्णन किया गया है । इसी सावन के माह में एक त्योहार सावनी-तीज (श्रावण तृतीया) भी ब्रज (आदि प्रदेशों) में महिलायें मनाया करती हैं । इस दिन भगवान को झूला झुलाया जाता है।इसी दिन से झूले पड़ जाते हैं । इस अवसर पर राजधर को हरी-हरी ब्रज भूमि में लाल-लाल इन्द्रवधुयें (बीर बहूटियाँ) अनुराग के बीज समान प्रतीत हो रही है -

हरी हरी ब्रज भूमि लखि, सुखद सावनी तीज ।
इन्द्र वधू थिय थिय लसति, मनु अनुरागन बीज ।।[3]

अनुराग का रंग काव्य शास्त्र में लाल कहा गया है । बीर-बहूटियों को अनुराग का बीज कहकर कवि श्रावण तृतीया को सर्वत्र ब्रज में व्याप्त अनुराग को लक्षित करना चाहता है ।

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 336
(2) " " - दो०सं० - 593
(3) " " - दो०सं० - 355

भाद्रपद

भादों की रात है । घनघोर अंधकार है । मूसलाधार वर्षा हो रही है । नायिका अपने सखी से कह रही है," बिना नायक(पिया) के रात्रि कैसे कटेगी", मुझको तो यह अत्यधिक भयद दिखाई पड़ती है -

पिय बिनु कैसे कटति है, मो अति भयद दिखात ।
झमकाँ झरि बरसन लगि, भर भादों की रात ।।[1]

यहाँ मुग्धा प्रोषित भर्तृका की उद्वेग काम दशा का चित्रण है ।

अगहन

राजधर कहते हैं कि "अगहन" मास ने तो अपने नाम को सार्थक कर ही दिया है । क्योंकि, विरही जन जो पहले से ही काम के वशीभूत होकर अंग(जड़) होते हैं अर्थात "जड़ता काम दशा को प्राप्त होते हैं, उन "अंग" विरहीजनों का हनन करने के कारण ही इस माह का नाम "अगहन" पड़ा है -

प्रथम मास हेमन्त को, नामु सफल करि दीन ।
विरही जन अंग हनतु नित, तातें अगहन कीन ।।[2]

आशय यह है कि विरहीजनों के लिए अगहन मास अत्यधिक कामोद्दीपक है ।

यहाँ श्लेष पद श्लेष द्वारा "अगहन" शब्द की राजधर के द्वारा व्याख्या मौलिक एवं श्लाघनीय है ।

पौष

पौष माह में दिन छोटे एवं रात्रियाँ दीर्घ होती हैं, अतः सखी मानिनी नायिका का मान भंग करने हेतु उसे समझा रही है-

दिन छोटे रातें बड़ी, जाड़े विकल शरीर ।
पिय धीरजु रहिहै नहीं, फूल कलि धनि वीर ।।[3]

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 425
(2) " " - दो० सं० - 633
(3) " " - दो० सं० - 323

माघ

एक तो इस माह में रात्रियाँ दीर्घ होती हैं, दूसरे नायक घर पर नहीं है, ऐसी परिस्थिति में मुग्धा प्रोषित भर्तृका अपनी सखी से कह रही है, कि वे माघ के "कपटी" दिन किस प्रकार काटे जायँ -

राति बड़ी प्यौ घर नहीं, नहीं बनत कछु बात ।
ए कपटी दिन माह के, क्यौं करि काटे जात ।।[1]

वैसे तो "कपटी" शब्द का अर्थ (मन में) "कपट रखने वाला" होता है, किन्तु "कपटी" का अर्थ "कपट देने वाला" माना जाय तो काव्य सौन्दर्य बढ़ जाता है । "कपट देने" से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे गंडासा आदि से किसी पत्थर पर रखकर नायिका का शरीर टुकड़े-टुकड़े किया जा रहा है। यह अर्थ मानने से "कपटी" शब्द से नायिका की तीव्र काम वेदना व्यंजित होती है । यदि "कपटी" का अर्थ "कपट रखने वाला" मानें तो नायिका को माघ के दिन नायक की तरह ही कपटी प्रतीत हो रहे हैं, जो ऐसे में उसे धोखा दे गया है ।

यहाँ भी माघ के माह को कामोद्दीपक रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

फाल्गुन

फाल्गुन माह भी नर-नारियों में आनन्द का संचरण करता है, अतः वे उल्लास पूर्वक "फागुन गीत" गा रहे हैं -

आई सिसिर सुदेस तजि, भयौ पाहुनौ सीत ।
आनंदि मन सब नारि नर, गावत फागुन गीत ।।[2]

यहाँ भी प्रकृति का उद्दीपक रूप ही है ।

निष्कर्षतः, कहा जा सकता है कि रामधर ने बारहमासा के अन्तर्गत प्रकृति के उद्दीपन रूप का ही चित्रण किया है ।

---

।1। रामधर सतसई - दो० सं० - 190

।2। रामधर सतसई - दो० सं० - 646

अलंकार रूप

"भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण क्रिया का अधिक तीव्र रूप अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति का नाम अलंकार है ।"
-- आचार्य राम चन्द्र शुक्ल" ।

वस्तुतः, जब कवि को भिन्न - भिन्न प्रकार से सौन्दर्यानुभूति व्यक्त करने पर परितृप्ति नहीं होती तो वह अपने हृदय के उत्साह और ओज को अलंकारों द्वारा प्रकट करता है । अतः प्रकृति वर्णन के "अलंकार रूप में, कवि प्रकृति को अप्रस्तुत रूप में अलंकारों- उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि - के द्वारा प्रस्तुत करता है ।[1]

राजधर ने उपमानों का अध्ययन प्रायः प्रकृति के क्षेत्र से ही किया है । नायिका के नखशिख, वस्त्राभूषण एवं विविध सन्दर्भों के लिये प्राकृतिक उपमानों को राजधर सतसई में, प्रयुक्त किया गया है, जिनके उदाहरण प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के "सौन्दर्य निरूपण" अध्याय में देखे जा सकते हैं ।

राजधर ने प्रकृति को अप्रस्तुत रूप में विभिन्न अलंकारों - रूपक, उत्प्रेक्षा सन्देह, हेत्वपह्नुति, संकर आदि - द्वारा प्रस्तुत किया है ।

सांग रूपक

सांग रूपक के द्वारा राजधर ने नायिका के तन को बाग कहा है । जिसमें उसके कर रूपी पल्लव, दृग रूपी कुसुम, कुच रूपी फल एवं नाभि रूपी कूप सुशोभित है-

कर - पल्लव, दृग कुसुम भर, कुच-फल सोभित सेवि ।
नाभि - कूप, सिय तनु सकल, लगी बगाइति देखि ।।[2]

उत्प्रेक्षा

राजधर ने प्रायः उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा प्राकृतिक उपमानों का अप्रस्तुत रूप में वर्णन किया है । लाल साड़ी में नायिका की तन द्युति मानों लाल बादल में विद्युत प्रतीत हो रही है -

पहिरे सारी कुसुम हूँ, सिय तन पैती चोति ।
मनो लाल बादर छपी, तड़ित महा द्युति होति ।।[3]

---

(1) हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण - डा० किरण कुमारी गुप्ता - पृ० - 250
(2) राजधर सतसई - दो० सं० - 487
(3) राजधर सतसई - दो० सं० - 237

**संदेह**

इधर राकेश का उदय हुआ और उधर नायिका आई । नायक इधर-उधर चकित होकर दोनों ओर देख रहा है अर्थात उसे सन्देह है कि कौन चन्द्र है और कौन नायिका -

इतै उदौ राकेस किय, तिय आई इहि ओर ।
इत उत चित मैं चकित ह्वै, पिय चितवत दुहुँ ओर ।।[1]

यहाँ सन्देह अलंकार के द्वारा नायिका को शशि-मुखी दर्शाना कवि का अभिप्रेत है ।

**हेत्वपह्नुति**

राजधर कहते हैं कि यह सीताजी के सिर पर जूड़ा नहीं है, अपितु सीता जी के मुख चन्द्र को जीतने के लिए राहु आ गया है -

जतन करे बहु भाँति जिय, जीतन कों मुख सोमु ।
सिय सिर जूरो जानि नहि, जुरि आयौ तम तोमु ।।[2]

यहाँ हेत्वपह्नुति अलंकार है । चन्द्र और राहु को अप्रस्तुत रूप में प्रयुक्त किया गया है ।

**संकर अलंकार**

कहीं-कहीं राजधर ने अनेक अलंकारों को एक साथ प्रयुक्त किया है ।

सावन वधिक के समान आ गया है (उपमा) । जो विरही जन रूपी मृगों को विशेष रूप से लक्ष्य करके, जल रूपी तीर बरसा रही है । रूपक एवं गम्योत्प्रेक्षा । -

आयौ सावन वधिक सम, बरसावन सर नीर ।
ताकि विरही जन मृगनि कौं, उपजावन तन पीर ।।[3]

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 260
(2) " " - दो० सं० - 457
(3) " " - दो० सं० - 593

## नायिका में षड् ऋतु की योजना

राजधर ने प्रोषित पतिका नायिका के शरीर में षड् ऋतु के लक्षणों की योजना की है -

।1। बसन्त

नायक के परदेश स्थित होने पर प्रवास काल में नायिका के मन रूपी कुसुम तन से चले गये । अर्थात उसने प्रस्थान कर दिये ।। इस प्रकार बिना प्रिय के नायिका के शरीर में ही बसन्त ऋतु देखी जा सकती है -

मन कुसुमन तन गए, आगम बैठ अनीत ।
देहि प्यारी पिय बिना, देखी भई बसंत ।।[1]

।2। ग्रीष्म

काम की तपन से प्रोषित पतिका का तन तप रहा है विरह की लपटों का जोर है । इस प्रकार तपन एवं लपटें होने से । साक्षात । ग्रीष्म ऋतु नायिका के शरीर में बसी हुई है और वह बिना नायक के शरीर बाकर भर रही है -

काम तपन तिय तपन तनु, लपट विरह की जोर ।
तिय तन ग्रीष्म रितु बसी, पिय बिनु भरति भरोर।।[2]

।3। वर्षा

प्रोषित पतिका की अँखियों से निरन्तर अश्रुओं की वर्षा हो रही है ।उसके शरीर में काम । की लपटन । रूपी तड़ित चमक उठती है अर्थात् नायिका काम के कारण तड़प-तड़प उठती है । इस प्रकार नायिका के शरीर में ही वर्षा ऋतु दिखाई पड़ रही है -

बरसत नैन अखण्डित अंबु, काम तड़ित के भाई ।
पिय वियोग तिय तन महा, बरसा ऋतु दरसाई ।।[3]

।4। शरद

प्रोषित पतिका के शरीर में काम तपन की कुछ ताप है, जिसके कारण उसका तन फूल की भाँति सूख गया है । इस प्रकार नायिका के शरीर में बिना नायक के शरद ऋतु दिखलाई पड़ रही है -

काम तपनि सूरज तपत, तनु सूखि फुन भाई ।
पिय बिनु तिय तन शरद ऋतु,इनि भांतिन दरसाई।।[4]

---

।1। राजधर सतसई - दो0 सं0 - 531
।2। राजधर सतसई - दो0 सं0 - 532
।3। राजधर सतसई - दो0 सं0 - 533
।4। राजधर सतसई - दो0 सं0 - 534

(5) <u>हेमन्त</u>

नायिका के शरीर में रोमांच उठता है। उसके हाथ-पैर जड़ हो गये हैं। अथवा हिम की भाँति जम गये हैं।। इस प्रकार प्रोषित पतिका के शरीर में हेमन्त का प्रति का दिखाई पड़ रही है --

उठत तनूरुह हिय कम्पु, चलत न अब हाथी पाइ।
सीत बिना हेमन्त ऋतु, छन-छन तिय दरसाइ॥[1]

(6) <u>शिशिर</u>

शिशिर ऋतु में कभी-कभी धूप निकल आती है, जिससे थोड़ी देर के लिए ताप प्राप्त हो जाता है एवं पुनः धूप चली जाने पर शीत व्याप्त हो जाता है। इसी प्रकार नायिका की व्याधि काम दशा में कभी-कभी हाथ-पैर ठंडे पड़ जाते हैं, कभी काम तपन से तप्त हो उठते हैं। अतः नायिका के शरीर में ही शिशिर ऋतु ने स्थान बना लिया है -

कम्पु सीत तनु तपत छनु, छन-छन औरै और।
काम तपन बढ़ती घटी, करी सिसिर तिय ठौर॥[2]

## <u>प्रकृति में मानवीकरण</u>

<u>शास्त्रीय विवेचन</u>

प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप ही मानवीकरण है। पाश्चात्य काव्य शास्त्र में इसको (Personification को) अलंकार के अन्तर्गत रखा गया है किन्तु भारतीय काव्य में इसका कोई निर्देश नहीं किया गया है।

डा० परमानन्द शास्त्री के अनुसार "प्रकृति का यह रूप जो साहित्य में मानवीकरण के नाम से प्रसिद्ध है, उद्दीपन के अन्तर्गत लिया जा सकता है, क्योंकि प्रकृति को भी अपने जैसे भावों से व्याप्त देखकर मनुष्य जिस एक बार अपनी स्थिति को देखता है, तो उसके भावों में सान्द्रता आ जाती है, फिर भी इसमें भावों का प्राधान्य होता है।[3]

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 535
(2) राजधर सतसई - दो० सं० - 536
(3) गाथा सप्तशती, डा० परमानन्द शास्त्री - पृ० - 162

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि भारतीय काव्य शास्त्र में किसी चेतन की (मानसिक क्रियाओं पर) अथवा अचेतन वस्तु की क्रियाओं पर चेतन की क्रियाओं का आरोप गम्य उत्प्रेक्षा के अन्तर्गत आयेगा क्योंकि क्रिया के साथ उपमा नहीं होती "नोपमानं तिङन्तेन - उत्प्रेक्षा", अतः हमने राजधर सतसई के कुछ तथाकथित प्रकृति में मानवीकरण वाले दोहों को "अंलकार खण्ड" के अन्तर्गत ही रखा है। फिर भी कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

<u>ध्यातव्य</u> :- यहाँ एक बात और स्पष्ट करना चाहता हूँ कि रीतिकाल तक कवियों के मस्तिष्क में "मानवीकरण की रूप - रेखा थी ही नहीं"।

<u>राजधर सतसई में प्रकृति का मानवीकरण (बनाम गम्य उत्प्रेक्षालंकार)</u>

ऋतुराज (बसन्त) को आता देखकर वन की प्रजा मांगलिक नृत्य कर रही है। तरु पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं एवं पक्षी समाज (मंगल गीत) गा रहे हैं -

तरु पुहुपनि बरसा करति, गावत बिहग समाज।
बन प्रजानि मंगल किये, आवत लखि रितुराज ।।[1]

यहाँ राजधर ने ऋतुराज बसन्त को (युद्ध में विजित होकर अपने देश में लौटने पर) प्रजा द्वारा स्वागत होते चित्रित किया है।

यहाँ बसन्तादि का मानवीकरण किया गया है।

वियोगी जनों को देखकर चन्द्र शत्रुवत व्यवहार करता है, लेकिन कोयल हित मानती हुई, कुहू-कुहू करके प्रीतम को बुलाती है -

लखि वियोग जन चन्द्र रिपु, अलि कोकिल हितु मानि।
कुहु बुलावति कर कुहू, प्रीतम कर तन तानि ।।[2]

यहाँ चन्द्रमा एवं कोयल का मानवीकरण किया गया है।

इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं।[3]

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 553
(2) " " - दो० सं० - 561
(3) " " - दो० सं० - 625, 640, 646

## उपदेश और नीति का माध्यम

इस प्रकार के प्रकृति वर्णन में प्रकृति को उपदेश और नीति व्यक्त करने का माध्यम बनाया जाता है । अतः, उपदेशात्मक भावना का प्राधान्य रहता है और प्रकृति का स्थान गौण हो जाता है ।

बड़ों की संगति (सत्संगति) गुणकारिणी होती है । इस बात को राजधर ने इस प्रकार कहा है कि बड़ों की संगति से कमों का शरीर (उसी प्रकार) पावन हो जाता है (जिस प्रकार) जलद खार-जलधि का जल भर कर जगत की पीड़ा को हरण करते हैं अर्थात् जलद की संगति से जलधि जल की खारीयता समाप्त हो जाती है -

बड़ संगति से कमन कौ, पावन होत सरीर ।
खारउ जलधि जलु तुरत भरि, जलद हरत जग पीर ।।[1]

इसी बात को राजधर ने यों भी कहा है कि बड़ों की संगति गंगा के समान है जिसमें छोटी-बड़ी सभी नदियाँ मिलकर भी गंगा हो जाती हैं -

प्रीति बड़िन की जगत में, गंगा जल सम देखि ।
होत सुरसुरी सरित मिलि, छोटी बड़ी विसेखि ।।[2]

फले वृक्ष पर सुख मानकर बहुत से पक्षी आकर निवास करते हैं । वहाँ कोलाहल करते हैं । क्या कोई उनको निमंत्रण देने गया था ? (अर्थात पक्षी स्वतः ही बिना कि निमंत्रण के फले वृक्ष पर आ जाते हैं । अन्योक्ति का तात्पर्य है कि सम्पत्ति होने पर दानी मनुष्य के पास बहुत से लोग (स्वार्थवश) आ जाते हैं ।

फले वृच्छ पै पच्छि बहु, बसत महा सुखु मानि ।
को तिनकौं न्यौतन गयौ, करत कुलाहलु आनि ।।[3]

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 603
(2) " " - दो० सं० - 44
(3) " " - दो० सं० - 268

निर्मल-मन-जन समृद्धि प्राप्त करके करके निरभिमान बने रहते हैं। जिस प्रकार सरिता थोड़ा ही जल बढ़ने पर मलिन दिखाई देती है, किन्तु सागर सदैव अथाह होने के कारण स्वच्छ बना रहता है -

निरमल पाइ समृद्धि मन, रहत धीर जन माँह ।
पावस सरिता मलिन मन, सागर स्वच्छ अथाह ॥[1]

यहाँ राजधर ने 'छुद्र नदी जल भरि इतराई' वाली बात कही है।

(शरद ऋतु में) नदियों के जल में मलिनता समाप्त हो जाती है और जल निर्मल दिखाई पड़ता है। जिस प्रकार सत्कर्मों द्वारा प्राप्त अल्प धन ही सत्कर्मी के गृह में ही समाता है -

मलिन प्रवाह गए नदिनि के, निरमल जल दरसात ।
थोरो धनु ज्यों सुकृत को, सुकृती गेह समात ॥[2]

अनऋतु के घन अकस्मात में आकर विच्छिन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार नीच व्यक्ति की प्रीति क्षणिक होती है। अतः राजधर कहते हैं, कि अनऋतु के घन की छाँह एवं नीच व्यक्ति की प्रीति पर विश्वास नहीं करना चाहिये -

घुरि आवत छन पलक में, उघरि जाति घन माँह ।
नीच प्रीति अनरितु जु घन, पतीये नहिं छाँह ॥[3]

जिस प्रकार हेमन्त ऋतु में दिन उदय होते ही समाप्त हो जाते हैं (अर्थात अत्यधिक अल्पकालीन होते हैं) उसी प्रकार चोर की सम्पत्ति आती और तुरन्त चली जाती है -

लघु बासर हेमन्त रवि, होतहि इह उदो समात ।
पैसे संपति चोर की, है आवति है जात ॥[4]

तात्पर्य है कि चौर्य द्वारा प्राप्त धन ठहरता नहीं है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई- दो० सं० - 594
(2) राजधर सतसई- दो० सं० - 624
(3) राजधर सतसई- दो० सं० - 236
(4) राजधर सतसई- दो० सं० - 632

## कवि - समय

"प्रकृति चित्रण में तथ्य और वैज्ञानिकता का महत्व असन्दिग्ध है, परन्तु फिर भी स्वदेश-विदेश के कवि आदि काल से ही अपने काव्य में अनेक प्रकार की स्वतंत्रता का उपयोग करते रहे हैं। कवि सम्प्रदाय की स्वतंत्रता पारस्परिक समझौते से उत्पन्न प्राकृतिक तथ्य स्वतंत्रता है। इस स्वतंत्रता को संस्कृत में "कवि - समय" और अंग्रेजी में "पोइटिक - कन्वेन्शन" कहते हैं।

"कवि - समय" का राजशेखर ने अपनी "काव्य-मीमांसा" अत्यन्त स्पष्ट निर्देश किया है। कवि समय का अर्थ है - कवियों का आचार अथवा सम्प्रदाय। राजशेखर का कथन है, कि कुछ ऐसी बातें हैं जो देश काल के सर्वथा प्रतिकूल हैं, किन्तु उन्हें प्राचीन विद्वन्मंडली ने अपने काव्य में स्थान दिया है और तभी से वे बातें कवि सम्प्रदाय में चली आ रहीं हैं। अतः इस प्रकार के प्रयोग देश और काल के विचार से सदोष होने पर भी कवि समाज में मान्य हैं।"[1]

### कोयल

कोयल के विषय में कवि प्रसिद्धि है कि वह अपने बच्चे कौए के घोसले में रख आती है और कौए के बच्चों को निकालकर फेंक आती है। कौआ, वर्ण - आकार साम्य होने के कारण पहिचान नहीं पाता और इसके बच्चों को अपने बच्चे समझकर पालता है। बड़े होकर काग द्वारा पालित बच्चे अपने समुदाय में जाकर मिल जाते हैं।

कौआ क्रूर होता है। अतः राजधर सतसई की प्रोषितपतिका को काक-पालित कोयल भी क्रूर प्रतीत हो रही है, क्योंकि उसकी कूक से उसका हृदय दग्ध हो रहा है -

ज्यों - ज्यों सुनि हिय दहत त्यों, करत कूक सम तीर।
आली पाली काक की, कह जाने पर पीर ॥[2]

---

[1] हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण - डा० किरण कुमारी गुप्ता - पृ० - 20-21

[2] राजधर सतसई - दो० सं० - 560

## चकवा - चकवी

कवि प्रसिद्धि है कि यह पक्षी दम्पति दिन में साथ रहते और रात्रि में वियुक्त हो जाते हैं । ये दोनों एक दूसरे के विरह में रात्रि व्यतीत करते हैं और प्रभात होने पर पुनः मिल जाते हैं । किन्तु राजधर सतसई में वर्षा ऋतु में नदियों के बढ़ जाने से चकवा-चकवी दिन में भी नहीं मिल पाते हैं अतः राजधर ने चक्रवाक को अति दीन कहा है -

> होतु बिछोही रैनि सब, चकवाक अति दीन ।
> प्रात मिलन में नदिन बढ़ि, आवत अंतर कीन ।।[1]

## चन्दन

कवि प्रसिद्धि के अनुसार चन्दन के वृक्ष पर सर्प लिपटे रहते हैं । राजधर ने इसका प्रयोग किया है -

> लपटे चन्दन तरुनि सौं, कियो मलय अहि वास ।
> सुख समीर मिलि तिनहि के, लगैं तन करत बिहाल ।।[2]

## निष्कर्ष

राजधर का समस्त ऋतु वर्णन प्रायः ऋतु - सापेक्ष है । इन्होंने अन्य रीतिकालीन कवियों की भाँति प्रकृति को उद्दीपन एवं अलंकार रूप में प्रमुख रूप से गृहीत किया है ।

उद्दीपन रूप में प्रायः विरह की दस काम दशाओं के अन्तर्गत ही, विभिन्न ऋतुओं का उद्दीपन प्रभाव प्रोषितपतिका पर दिखाया है ।

प्रकृति के अलंकार रूप । अथवा अप्रस्तुत रूप । के अन्तर्गत, राजधर ने परम्परागत प्राकृतिक उपमानों को ही लिया है । प्रायः उत्प्रेक्षा अलंकार का ही अधिक प्रयोग किया है । वैसे, उपमा, रूपक, संदेह आदि अलंकार भी देखे जा सकते हैं ।

---

।1। राजधर सतसई- दो० सं० - 597
।2। राजधर सतसई- दो० सं० - 573

कतिपय दोहों में पु........ प्रोषितपतिका में षड्ऋतुओं की योजना की गई है, किन्तु इनमें राजधर को पर्याप्त साफल्य प्राप्त नहीं हुआ है।

प्रकृति के आलम्बन रूप वर्णन में राजधर को अन्य रीतिकालीन कवियों की अपेक्षा अधिक सफल कहा जा सकता है। क्योंकि, ओरछा के चारों ओर वन एवं वेत्रवती (बेतवा नदी) के तट पर प्राकृतिक सुषमा होने के कारण इन्हें प्रकृति के निरीक्षण का सुअवसर प्राप्त होना स्वाभाविक ही था। अतः, इन्होंने रीतिकालीन दरबारी कवि होने के नाते प्रकृति का आलम्बन रूप में पर्याप्त वर्णन किया है। फिर भी, इनका मन प्रकृति के सूक्ष्म - निरीक्षण की अपेक्षा ऋतुओं का वातावरण उपस्थित करने में अधिक रमा है, जिसमें ऋतुओं का वस्तुओं एवं व्यक्तियों पर प्रभाव दिखाया गया है।

प्रकृति का मानवीकरण, प्रकृति की पृष्ठभूमि - वस्तु आलम्बन एवं भाव आलम्बन - रूप में, फुटकर दोहों में देखा जा सकता है। प्रकृति को नीति एवं उपदेश का माध्यम बनाने से भावाभिव्यक्ति तीव्रतर हो गई है। कतिपय "कवि-समयों" को भी प्रयुक्त किया गया है।

सारांशतः, प्रकृति वर्णन के क्षेत्र में, रीतिकालीन परिपाटी को ग्रहण करते हुए भी, राजधर सामान्यतः श्रेष्ठ कवि हैं।

## अध्याय - 6

# रामधर सतसई : कलापक्ष

## रामधार सतसई : कला - पक्ष

काव्य के दो पक्ष - भाव पक्ष और कला पक्ष - माने गये हैं । इनमें पहला अनुभूति पक्ष है और दूसरा अभिव्यक्ति पक्ष । इन्हें आन्तरिक एवं बाह्य पक्ष भी कह सकते हैं ।

भारतीय काव्य शास्त्र में काव्य के स्वरूप को उद्घाटित करने के लिए उसकी "काव्य पुरुष" के रूप में कल्पना की गई है । सुप्रसिद्ध आचार्य राजशेखर ने अपनी " काव्य मीमांसा " में उस काव्य पुरुष की कल्पना निम्न प्रकार से की है -

" शब्द और अर्थ शरीर हैं । संस्कृत भाषा मुख है । प्राकृत भाषाएँ तेरी भुजाएँ हैं । अपभ्रंश भाषाएँ जंघाएँ हैं । पिशाच भाषा चरण है और मिश्र भाषाएँ वक्ष स्थल । तू सम, प्रसन्न, मधुर, उदार और ओजस्वी है । तेरी वाणी उत्कृष्ट ही है । रस तेरी आत्मा है । छन्द तेरे रोम हैं, प्रश्नोत्तर, पहेली, समस्या आदि तेरे वाग्विनोद है और उपमा, अनुप्रास आदि तुझे अलंकृत करते हैं । भावी अर्थों को बताने वाली श्रुति भी तेरी स्तुति करती है ।"

उपर्युक्त, काव्य पुरुष के लक्षणों से स्पष्ट है कि रस (आत्मा) भाव पक्ष का प्रतीक है एवं अलंकार गुणादि अभिव्यक्ति पक्ष के ।

"भारतीय साहित्य शास्त्र में यद्यपि रस को काव्य की आत्मा माना गया है, तथापि काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष की उपेक्षा नहीं की गई । रस की स्थिति श्रोता या पाठक में मानी गई है । इस कारण से अभिव्यक्ति पक्ष को विशेष महत्त्व मिला है ।"[1]

साहित्य दर्पणकार का यह तथ्य ध्यातव्य है कि "गुण अलंकार (वे काव्य तत्त्व हैं जो रसात्मक वाक्य रूप की) उत्कृष्टता के कारण हुआ करते हैं । साथ ही रस के अपकर्षक (सभी कारण) दोष कहे गये हैं ।"[2]

इस प्रकार भारतीय काव्य शास्त्रानुसार जब रस के अपकर्षक दोष हैं, तो निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि भावाभिव्यक्ति के सभी साधनों का प्रयोग रस के उत्कर्ष में ही सन्निहित है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) [illegible] सिद्धान्त और अध्ययन - बाबू गुलाब राय - पृ० - 226

(2) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 1/3

अतः भावाभिव्यक्ति के समस्त साधन - गुण, रीति, अलंकार, शब्द शक्तियाँ, छन्द एवं भाषा - किस प्रकार औचित्यपूर्ण ढंग से प्रयुक्त होने पर रसोत्कर्ष में सहायक हैं, विवेचन करते हुए, तत्तत् शीर्षकों के अन्तर्गत ही स्पष्ट करेंगें ।

राजधर सतसई के कला पक्षीय विवेचन हेतु हमने सर्व प्रथमतः काव्य-कला पक्ष के अंगों - गुण अलंकार रीति आदि-का तत्तत् शीर्षकों के अन्तर्गत शास्त्रीय निरूपण ( परिभाषा, भेद आदि ) किया है ।

यतः, साहित्यकार तद्युगीन परिस्थितियों एवं परम्पराओं से प्रभावित होता है और युगीन परम्परायें भी कोई आकस्मिक घटना नहीं होती हैं, प्रत्युत पूर्व काल से प्रवहमान परम्पराओं का ही विकसित रूप होती हैं, अतः हमने राजधर सतसई में विवेच्य कला पक्ष के अंगों का पूर्व काल से चली आ रही परम्पराओं का रीतिकाल में क्या स्वरूप हो गया, स्पष्ट करते हुए, शास्त्रीय अध्ययन आवश्यक समझा है ।

देश काल परिस्थितियों से प्रभावित होने के अतिरिक्त साहित्यकार का वैयक्तिक वैशिष्ट्य भी होता है, जिसको स्पष्ट किए बिना किसी भी साहित्यकार का अध्ययन अधूरा ही रहता है, अतः राजधर की वैयक्तिक विशेषताओं का भी उद्घाटन किया गया है ।

वैसे तो, भारतीय काव्य शास्त्र के अनुसार "रीतियां" ही शैली का पर्याय हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त राजधर की काव्य शैली को स्पष्टतम करने के लिए राजधर सतसई में प्रयुक्त विभिन्न काव्य शैलियों का भी निर्देश कर दिया गया है ।

इस प्रकार हमने निम्न लिखित शीर्षकों के अन्तर्गत राजधर सतसई को विवेचित किया है -

(अ) राजधर सतसई : शैली
(ब) " " : गुण
(स) " " : रीति
(द) " " : अलंकार
(य) " " : शब्द शक्तियाँ
(र) " " : छन्द
(ल) " " : भाषा

# राजधर सतसई : शैली

काव्य के लिए दो वस्तुएँ अपेक्षित हैं - वस्तु ( Matter ) और उसकी अभिव्यक्ति का प्रकार ( Manner ) । वस्तु की अभिव्यक्ति के प्रकार को ही शैली कहते हैं ।[1]

" शैली शब्द की व्युत्पत्ति "शील" शब्द से हुई है । शील का अर्थ है स्वभाव, जो कुन्तक के मत से रीति का नियामक आधार है । जिस प्रकार स्वभाव की अभिव्यक्ति का मार्ग रीति है, उसी प्रकार शील ( स्वभाव ) की अभिव्यक्ति पद्धति शैली भी है और उसके व्युत्पत्ति अर्थ में भी वैयक्तिक तत्व मूलतः विद्यमान हैं । परन्तु फिर भी भारतीय काव्य व शास्त्र में इसका प्रयोग प्रस्तुत अर्थ में नहीं हुआ । शास्त्र में यह शब्द व्याख्यान पद्धति आदि के प्रसंग में ही प्रयुक्त हुआ है : यथा - प्रायेण आचार्याणामियं शैली यद् सामान्येनाभिधाय विशेषेण विवृणोति । ( कुल्लूक भट्ट की टीका - मनुस्मृति 1/41: बलदेव उपाध्याय - भारतीय सा०शा० से उद्धृत ) । अभिव्यक्ति की पद्धति के अर्थ में शैली का प्रयोग आधुनिक ही है, जो अंग्रेजी के "स्टाइल" शब्द का पर्याय है ।[2]

रीति काल शृंगार प्रधान काल है एवं इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियों में " अलंकरण की प्रवृत्ति " एक है । राजधर दरबारी कवि थे । दरबारों में चमत्कार प्रदर्शन के लिए अलंकारों का विशेष महत्त्व होता था । अतः, राजधर का अलंकरण की ओर झुकाव स्वाभाविक ही था । साथ ही, शब्द शक्ति की दृष्टि से राजधर सतसई में " अभिधा " का ही प्राधान्य है । इस प्रकार राजधर की प्रमुख शैली " अभिधा प्रधान अलंकृत शैली" ही है । किन्तु, अन्य शैलियों के भी यत्र-तत्र दर्शन होते हैं ।

सुविधानुसार राजधर सतसई में प्रयुक्त शैलियों का निम्न लिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचन किया जा सकता है -

---

(1) सिद्धान्त और अध्ययन - बाबू गुलाब राय - पृ० 222

(2) भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डा० [illegible] - पृ० - 40

-नगेन्द्र-

(1) अभिधा प्रधान अलंकृत शैली

(2) अभिधा प्रधान अनलंकृत शैली

(3) व्यंजना प्रधान अलंकृत शैली

(4) व्यंजना प्रधान अनलंकृत शैली

(5) हास्य व्यंग्य प्रधान शैली

(6) वाग्वैदग्ध्य पूर्ण शैली

(7) ऊहात्मक शैली

## अभिधा प्रधान अलंकृत शैली

जैसा कि हम निवेदन कर चुके हैं कि रामसहाय सतसई में अभिधा प्रधान अलंकृत शैली का ही प्राधान्य है । यथा -

(1) विमल सुधा रस धवल गृह, सित सारी तन सैन ।
उदित सरद की चाँदनि मैं, सुन्दरि देह लखैन ॥[1]

(2) श्री हरि कौं श्री राधिका, हेरत मन हर लेत ।
फिरि वाही मैं बसि सदा, घरी घरी सुख देत ॥[2]

(3) लघु वासर हेमन्त रवि, होतहि उदौ समात ।
जैसे संपति चोर की, कै आवत कै जात ॥[3]

प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय दोहे में क्रमशः मीलित, परिवृत्त एवं उदाहरण अलंकारों के दर्शन किए जा सकते हैं ।

इस प्रकार से रामसहाय ने अभिधा प्रधान अलंकृत शैली को प्रयुक्त किया है ।

---

(1) रामसहाय सतसई - दो० सं० - 631

(2) रामसहाय सतसई - दो० सं० - 490

(3) रामसहाय सतसई - दो० सं० - 632

## अभिधा प्रधान अनलंकृत शैली

राज्यधर जहाँ भावों को सीधे-सादे ढंग से व्यक्त करते हैं, वहाँ यह शैली दृष्टिगोचर होती है । उदाहरणार्थ -

(1) लागति मधु टारति तुमिन्, हरि आवन के हेत ।
लीके चाखति उरमी , मधु न होइ दधि लेत ।।[1]

(2) औंटि जमावति नित दही, धरति मढ़ौटे माँह ।
छवि देखन कौं लाल की, छपी छपावै छाँह ।।[2]

इन उदाहरणों में यथावस्तुवर्णन है जिसे स्वभावोक्ति अलंकार में रखा जा सकता है, किन्तु अतिशयोक्ति या वक्रोक्ति का अभाव होने से अनलंकृत कही गई है ।

## व्यंजना प्रधान अलंकृत शैली

धर्यो मौनु मुख मूँदि तट, हंस बसन सब सेत ।
भृंग पुंज धरि माल लघु, तपत कमल रवि हेत ।।[3]

इस दोहे में गम्य हेतूत्प्रेक्षा है, किन्तु वह व्यंग्य अर्थ की साधिका है, बाधिका नहीं ।

" तटों ने मौन धारण कर लिया है" से यह व्यंग्य निकलता है कि इस स्थान पर निःशंकता विराज रही है, जो वस्तुतः इस व्यंग्यार्थ का सूचक है कि यह स्थान ऐसा है, जहाँ किसी के आने की संभावना नहीं है, अतः अच्छा संकेत स्थान है । "लघु तपत कमल" से व्यंग्य है-दोपहर है, अतः किसी के आने की संभावना नहीं है अतः सुरत निर्विघ्न संभव है । "हंसों ने श्वेत वस्त्र धारण कर लिए हैं,कमलों पर भृंग-पुंज सुशोभित है ।" से व्यंग्य है, कि स्थान रमणीय है ।

वाच्य, काल एवं स्थान वैशिष्ट्य से नायिका की इस उक्ति से यह भी व्यंग्य निकलता है, कि ऐसे स्थान पर इस समय सुरतानंद प्राप्त किया जाय ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राज्यधर सतसई - दो० सं० - 75
(2) " " - दो० सं० - 76
(3) " " - दो० सं० - 625

अथवा इस उक्ति से प्रतीत होता है कि कोई विप्रलब्धा नायक से शिकायत कर रही है कि तुम संकेत स्थल पर नहीं आये अन्यथा यह बक पंक्ति इतनी निश्चिन्त नहीं बैठी रहती । अथवा सुरतासक्ता नायिका ने दीर्घ रमण हेतु नायक को अन्यमनस्क करने के लिए यह उक्ति कही है क्योंकि काम शास्त्र के अनुसार " नदी, वन, कन्दरा एवं सुरभित वाटिका में चित्त लगाकर सुरत करने से शिथिल पुरुष भी दीर्घ काल तक रमण कर सकता है ।"[1]

इस दोहे में " ज्यौं-ज्यौं निहारियै नेरे ह्वै नैननु, त्यौं-त्यौं खरी निकरै सी निकाई " वाली उक्ति चरितार्थ होती है ।

## व्यंजना प्रधान अनलंकृत शैली

रामसहाय सतसई में कहीं-कहीं अलंकारों को दूर से ही नमस्कार करके सीधी-सादी भाषा में मनोरम भावों की अभिव्यक्ति की गई है । उदाहरणार्थ -

ज्यौं ज्यौं सुनि पिय टहुकु, त्यौं करति कूक सम तीर ।
आली पाली काक की, कह जाने पर पीर ।।[2]

इस दोहे में कोई अलंकार नहीं है । शब्द योजना में कोई प्रयत्न नहीं किया गया है । उन्मुक्त हृदय के भावों की निर्बाध अभिव्यंजना स्वाभाविक शब्दों में की गई है । प्रथम पंक्ति में " कोयल की कूक " प्रवत्स्यत्पतिका के लिए अत्यधिक उद्दीपक व्यंजित की गई है । द्वितीय पंक्ति में नायिका की " पीड़ा " की कैसी मार्मिक अभिव्यंजना है । काक द्वारा पाली पोसी कोयल अन्य की पीर जानने में नितान्तः ही असमर्थ है ।

मानव मान्यो रहतु है, अहे सखी मनु मोर ।
कौलौं धीरजु धरि रहौं, निरखत नंद किशोर ।।[3]

उत्तरार्द्ध में मुग्धा पूर्व अनुरागिनी नायिका का " धैर्य " व्यंजित है ।

इस प्रकार के अनेक दोहों में रामसहाय ने सीधी-सादी भाषा में मार्मिक भावों की अभिव्यंजना की है ।

---

1. नद्यां वने, कन्दरादौ दुःखाश्रये वा पीतचित्तस्सुरतिः । सुकुमारस्मृभिन्न धैर्यः रतमी चिरदीर्घं रमते मनुष्यः । कामशास्त्र । (गाथा सप्तशती, डा० परमानन्द शास्त्री, पृ० २०१ से उद्धृत)
2. रामसहाय सतसई - दो० सं० - 560
3. " " - दो० सं० - 270

## हास्य व्यंग्य प्रधान शैली

कतिपय दोहे राजधर सतसई में हास्य व्यंग्य प्रधान भी पाये जाते हैं । उदाहरणार्थ -

तिहुँ लोक पति हिय धर्यो, यह जानी सब कोइ ।
ता पर इतनी भार है, क्यों न कूबरी होइ ॥[1]

गोपियाँ कहती है कि जिस कुब्जा ने अपने हृदय पर तीनों लोकों के स्वामी (श्री कृष्ण जी) को रख लिया है जिस पर इतना भार हो वह कुबड़ी क्यों नहीं हो जायेगी? उत्तरार्द्ध में गोपियों का सपत्नी डाह (असूया) जन्य हास्य समन्वित तीक्ष्ण व्यंग्य दृष्टव्य है ।

लखि चबावत साधु नहि, सब बधिरन को गोहु ।
पूछत फेरहि फेर यह, कैसो मीठो होहु ॥[2]

बधिर जन साधु को कुछ चबाता हुआ देखकर उसे कोई खाद्य वस्तु समझ रहे हैं और परस्पर पूछकर उसका स्वाद जानने के लिए उत्सुक हैं कि वह कितना मीठा होता है ।

यहाँ राजधर की शैली हास्य प्रधान है ।

## वाग्वैदग्ध्यपूर्ण शैली

वाग्वैदग्ध्य द्वारा चमत्कार की सृष्टि की प्रवृत्ति संस्कृत कवियों में उत्तरोत्तर पाई जाती है । आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि कण्ठाभरण में दस प्रकार के चमत्कारों का उल्लेख किया है । यह चमत्कृति इस पर निर्भर करती है कि कवि पाठक के मन को किस प्रकार की अभिव्यक्ति करके आकृष्ट करना चाहता है । राजधर सतसई में इनके ये 9 प्रकार देखे जा सकते हैं ।

(1) <u>अविचारित रमणीय</u>

इस प्रकार की चमत्कृति पाठक को सहसा चमत्कृत कर देती है । किसी प्रकार का बौद्धिक अथवा मानसिक आघात उसे नहीं करना पड़ता है -

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 262
(2) " " - दो० सं० - 80

तो गति अति अद्भुत भई, दई कही नहि जाइ ।
प्यौ बिनु देखै तलफई, देखत निकट डराइ ।।[1]

नवोढा के मनः स्थिति - वैचित्र्य की वर्णना करती हुई उसकी सखी कहती है, "तू (नायिका) बिना नायक के तो तड़पती है और उसको (नायक को) निकट से देखने पर डरती है।"

सामान्यतः, जिस नायक को देखे बिना ही नायिका तड़प रही हो, उसके दर्शन-मिलन से प्रसन्नता होनी चाहिए, किन्तु वह नायक को निकट से देखकर डरती है।

"नायिका का नायक को देखे बिना तड़पना एवं निकट से देखकर डरना" सुन पढ़ते ही चमत्कार की सृष्टि करता है।

(2) विचारपेक्ष्य रमणीय

यहाँ चमत्कार की प्रतीति अनायास नहीं होती, अपितु जैसे-जैसे बौद्धिक व्यापार द्वारा उक्ति में गम्भीरतर पैठ होती है, वैसे-वैसे रमणीयता की प्रतीति होती है -

एक एक की वृद्धि ते, अधिकु रह्यौ न जाइ ।
पारवती कौ भागु लखि, ससुर पुत्र पति पाइ ।।[2]

पार्वती जी का भाग्य क्रमशः ससुर, पति एवं पुत्र को प्राप्त करके उत्तरोत्तर आश्चर्य-जनक वृद्धि को प्राप्त हो रहा है।

यहाँ सुनते ही तुरन्त चमत्कार की प्रतीति उतनी अधिक नहीं होती जितनी कि पौराणिक वाङ्मय के अनुसार - पार्वती जी के श्वसुर ब्रह्मा जी चतुरानन, पति शंकर जी पंचानन एवं पुत्र षडानन हैं - विचार करने पर।

(3) सम्पूर्ण सूक्त काव्य

उस स्थान पर होता है जहाँ चमत्कार पद्य में आद्यन्त व्यापी होता है। उदाहरणार्थ -

---

(1) राजधर सतसई- दो० सं० - 240
(2) राजधर सतसई- दो० सं० - 219

(1) पीन - पयोधर, छीन कटि, नैन मीन गति लीन ।
गज गति मति मोहै मनै, किय सबै आधीन ।।[1]

(2) कामिनि काचे कातु है, सुरतक कठिन बखान ।
समर सुरता सुर है, रामसहाय किय जान ।।[2]

(4) <u>सूक्तिच्छेद</u>

सूक्तिच्छेद में चमत्कार पद्य में सर्व व्यापी न होकर उसके किसी एक अंश मात्र में हुआ करता है -

(1) <u>तन फेरहि फेरहि करहि, सुख छवि लहत सुभाँति</u> ।
देखी अंग - अंग चतुरई, रही चित्रावलि माँहि ।।[3]

(2) भुलावति की गति यहै, मैं जानति हौं बीर ।
<u>नव - छत लागे तोहिये, लोचनि के हिय पीर</u> ।।[4]

यहाँ प्रथम दोहे के पूर्वार्द्ध में एवं द्वितीय दोहे के उत्तरार्द्ध में ही चमत्कृति है ।

(5) <u>शब्द - चमत्कार</u>

यहाँ चमत्कार केवल शब्दों में ही होता है -

निरखि बात मैं ताप तन, छवि के उठत तरंग ।
आई मग <u>घनश्याम</u> है, <u>बरसौहैं</u> सब अंग ।।[5]

यहाँ चमत्कार " घनश्याम " एवं " बरसौहै " शब्दों के श्लेष में ही है ।

मैन बैन कहि बैन सुख, मन सुख देन रसाल ।
ऐन मैन छवि तौं छके, नैन निहारे लाल ।।[6]

यहाँ "मैन","बैन", "ऐन""मैन" और "नैन" शब्दों में निरर्थक यमक एवं पद मैत्री के द्वारा ही चमत्कृति की सृष्टि की गई है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामसहाय सतसई - दो0 सं0 - 318
(2) " - - दो0 सं0 - 209
(3) " " - दो0 सं0 - 124
(4) " " - दो0 सं0 - 112
(5) " " - दो0 सं0 - 67
(6) " " - दो0 सं0 - 346

(6) अर्थ चमत्कार

जहाँ चमत्कृति मात्र अर्थ में सन्निहित हो -

आयो मावसु पथिक लखु, बरसावन सर नीर ।
ताकि बिरही जन मृगनि कौं, उपजावन तन पीर ॥[1]

यहाँ उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षाजन्य चमत्कृति उत्पन्न की गई है ।

(7) शब्दार्थोभयगत

कटि तटि बाजति किंकिनी, काम कुमर दै कान ।
पढ़त रूप धुनि मुनि महा, मानो मदन विधान ॥[2]

इस दोहे में, "कटि-तटि", "धुनि-मुनि" में पदमैत्री, कान (कुमर, अतिशयोक्ति) में यमक और "मुनि-महा" मानो मदन में वृत्यनुप्रास, शब्दगत चमत्कृति है । साथ ही "कटि-तटि बाजत किंकिनी (उपमेय) में महा मुनियों द्वारा एक स्वर में मदन विधान (काम शास्त्र) का पाठ (उपमान) की संभावना व्यक्त होने से उत्प्रेक्षा है । इस प्रकार इस दोहे में शब्दार्थोभयगत चमत्कृति की सृष्टि की गई है ।

(8) अलंकार गत

कर पल्लव, दृग-कुसुम भर, कुच फल सोभा सेवि ।
नाभि कूप तिय तनु लतन, लसी लताकृति देखि ॥[3]

यहाँ नायिका के रूप-वर्णन के अन्तर्गत सांग रूपक अलंकार की चमत्कृति है । इस प्रकार अन्यान्य अलंकारों की चमत्कृति देखी जा सकती है ।

(9) रसगत

जहाँ रस के द्वारा चमत्कृति की सृष्टि होती है -

(1) छुटी अलक तिय भाल पर, रही व्याल सम सोहि ।
झुकी अधखुली पलक छवि, पलक न बिसरत मोहि ॥[4]

---

(1) रामसहाय सतसई - दो0 सं0 - 593
(2) " " - दो0 सं0 - 18
(3) " " - दो0 सं0 - 487
(4) " " - दो0 सं0 - 649

।2। पहिरायक्त श्रीराम के, कंठ चमत नहि माल ।
कर कंपित दृग अश्रु मिलि, थकित चित्त तिहि काल ।।[1]

।3। औटि चमावति नित रही, धरति महोटे भौंह ।
छवि देखन कौं लाल की, ज्यों छपावै छाँह ।।[2]

प्रथम दोहे में आलम्बन विभाव । नायिका । की, द्वितीय दोहे में विभिन्न सात्त्विक अनुभावों- कंप, अश्रु एवं जड़ता - की तथा तृतीय दोहे में औत्सुक्य संचारी भाव की वर्णना के द्वारा चमत्कृति की सृष्टि की गई है । अतः यहाँ चमत्कार रसगत है ।

।10। प्रख्यात वृत्तिगत

यह चमत्कार समास सहित आदि प्रख्यात वृत्तियों में स्थित हो । इसके उदाहरण संस्कृत साहित्य में प्राप्त होते हैं । राजधर सतसई में इसका उदाहरण नहीं है ।

ऊहात्मक शैली

वैसे राजधर ने ऊहात्मक शैली का प्रयोग अत्यल्प किया है । रीतिकालीन इस प्रवृत्ति का प्रभाव छींटा उन पर भी पड़ गया है -

ध्रुव नितम्ब बिच कटि लसत, अति सूक्ष्म इहि भेव ।
सुंदर सरस सुवृत्त अति, ज्यों कितनी की रेख ।।[3]

राजधर ने ध्रुव एवं नितम्ब को दो बिन्दुवत माना है । किन्तु ।:। के बिन्दुओं के बीच कोई रेखा नहीं होती अथवा इतनी सूक्ष्म होती है कि दिखलाई ही नहीं पड़ती । इसी रेखा से राजधर ने नायिका की कटि की उपमा दी है जो हास्यास्पद प्रतीत होती है । शायद इससे भी उनका मन नहीं भरा होगा तो कटि टूटने के डर से जानु रूपी दो खम्भों की और कल्पना कर ली -

विधि सूक्ष्म रचना रची, बारहि बार डराइ ।
जानु युगल खंभा दिए, कटि लहु टूट न जाइ ।।[4]

कतिपय अन्य दोहों में भी ऊहात्मक शैली देखी जा सकती है ।[5] यह अच्छा ही है कि राजधर ने इस शैली का प्रयोग अत्यल्प किया है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। राजधर सतसई - दो० सं० - 128
।2। " " - दो० सं० - 76
।3। " " - दो० सं० - 243
।4। " " - दो० सं० - 506
।5। " " - दो० सं० - 382, 188, 400 इत्यादि ।

# रीति

## रीति का अर्थ

आचार्य वामन ने "रीति" को काव्य की आत्मा माना है - "रीतिरात्मा काव्यस्य"[1] और विशिष्ट पद रचना को रीति कहा है -"विशिष्टा पद रचना रीतिः"[2] यह विशिष्टता गुणों में है- विशेषोगुणात्मा"[3] और काव्य शोभा के उत्पन्न करने वाले धर्मों को गुण कहा है -"काव्य शोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः"[4]। गुण और धर्म और रीति दोनों ही अंत में साध्य नहीं वरन् शोभा के साधन बन जाते हैं ।[5] वामन ने अलंकारों के कारण काव्य की ग्राहकता बतलाई है - "काव्यं ग्राह्यमलंकारात्"[6] परन्तु उन्होंने अलंकार को सौन्दर्य के व्यापक अर्थ में माना है - "सौन्दर्यमलंकारः।[7] इस प्रकार रीति का संबंध गुणों से है और गुणों का संबंध काव्य की आत्मा रस से है । आचार्य विश्वनाथ ने भी " गुण अलंकार एवं रीति को रसोत्कर्ष का हेतु माना है ।[8]

साहित्य दर्पण के अनुसार रीति अंग रचना की भाँति पद रचना अथवा पद संघटना है, जो कि रसभावादि की अभिव्यंजना में सहायक हुआ करती है।[9]

## रीति के भेद

देश भेद के आधार पर रीति के चार भेद होते हैं -
(1) वैदर्भी (2) गौड़ी (3) पांचाली (4) लाटी ।[10]

साहित्य दर्पणकार के अनुसार - वैदर्भी, गौड़ी एवं पांचाली रीतियों का संबंध क्रमशः माधुर्य, ओज एवं प्रसाद गुण से है । अतः रामचरित मानस में रीतियों के उदाहरण देकर हम पुनरावृत्ति नहीं करना चाहते हैं, क्योंकि वे गुणों के अन्तर्गत दिये जा चुके हैं ।[11]

---

(1) काव्यालंकार सूत्र - वामन - 1/2/6
(2) " - " - 1/2/7
(3) " - " - 1/2/8
(4) " - " - 3/1/1
(5) सिद्धान्त और अध्ययन - बाबू गुलाब राय - पृ0 37
(6) काव्यालंकार सूत्र - वामन - 1/1/1
(7) " - " - 1/1/2
(8) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 1/3
(9) " - " - 9/1
(10) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 9/1
(11) प्रस्तुत प्रबन्ध के अध्याय "गुण" शीर्षक में देखिए ।

## रीति और कवि - स्वभाव

"संस्कृत के आलोचकों ने रीति के विषय में एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही है । उनका यह कहना है कि रीति लेखक तथा कवि के स्वभाव से साक्षात् संबंध रखती है । ----- कुन्तक नामक आचार्य की सम्मति में काव्य की रचना पर उसके विशिष्ट प्रकार ग्रहण करने के आर, शैली के निर्धारण पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है - लेखक के स्वभाव का, न तो उसके काल का और न उसके देश का । स्वभाव अनंत होने पर भी स्थूल रूप से तीन प्रकार का होता है - (1) सुकुमार (2) विचित्र (3) मध्यम । सुकुमार मार्ग वैदर्भी रीति का, विचित्र मार्ग गौड़ी रीति का तथा मध्यम मार्ग पांचाली रीति के ही नामान्तर हैं ।[1]

## राजधर सतसई में रीति -निरूपण

राजधर सतसई शृंगार प्रधान है । जिसका (शृंगार का) संबंध माधुर्य गुण से है । माधुर्य गुण का संबंध वैदर्भी रीति से है । अतः, राजधर सतसई में वैदर्भी रीति प्रयुक्त हुई है ।

राजधर, प्रायः, किसी वस्तु का वर्णन स्वाभाविक ढंग से करते हैं । कृत्रिमता से दूर रहते हैं । उनकी दृष्टि रस पर ही केन्द्रित है । अतः, वे सुकुमार मार्ग के पथिक हैं ।

निष्कर्षतः, राजधर सुकुमार स्वभाव के हैं, अतः उन्होंने वैदर्भी रीति प्रयुक्त की है ।

---

(1) भारतीय काव्य शास्त्र - डॉ० STO कृष्ण बल - पृ० - 146-147

## गुण

आचार्य मम्मट के अनुसार -

ये रसस्यांगिनो धर्माः, शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥[1]

।जिस प्रकार शूरता इत्यादि आत्मा के धर्म हैं, इसी प्रकार जो काव्य में प्रधानतया ।आत्मवत्। स्थित रस के धर्म हैं, तथा । रस के साथ । नियत स्थिति वाले हैं, ऐसे रसोत्कर्ष के हेतु ।धर्म। गुण कहलाते हैं ।।

भाव यह है कि शरीर में आत्मा के समान काव्य में प्रधानतया स्थित अर्थात् अंगी रस है । जिस प्रकार शौर्य आदि जीवात्मा के धर्म हैं, वे अचेतन के नहीं, इसी प्रकार गुण भी रस के धर्म हैं । काव्य के शरीर रूप । शब्दार्थ के धर्म नहीं ।

" अचलस्थितयः" यह दूसरा विशेषण है जिसका अभिप्राय है कि रस के साथ उन।गुणों। की स्थिति "अचला" अर्थात् निश्चित या अव्यभिचारी रूप से है ।

इस नियम स्थिति के दो तात्पर्य हैं - एक तो यह कि गुण रस के बिना नहीं पाये जाते, दूसरा यह कि रस के साथ स्थित होकर वे रस के उपकारक अवश्य होते हैं ।

सारतः, गुणों का रस के साथ अंगांगिभाव अयुत सिद्ध ।समवाय। संबंध है ।

### गुणों के प्रकार

गुणों की संख्या के विषय में संस्कृत आचार्यों में गहरा मतभेद है । आचार्य भरत मुनि ने गुणों की संख्या "दस" मानी है और उनके नाम हैं - ।1। श्लेष ।2।प्रसाद ।3। समता।4। समाधि ।5। माधुर्य ।6। ओज ।7। सुकुमारता ।8। अर्थ व्यक्ति ।9। उदारता ।10। कान्ति । दण्डी ने भी गुणों की संख्या तथा अभिधान तो यही माना है परन्तु उसके स्वरूप के विषय में काफी भिन्नता है । वामन इन गुणों को द्विगुणित कर दिया । शब्द अर्थ से सम्बद्ध होने के कारण इनके स्वरूप में वे विशेष अन्तर मानते हैं । भोजराज के हाथों इनकी संख्या में और भी वृद्धि हो जाती है ।[2]

---

।1। काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट - 8/66
।2। भारतीय काव्य शास्त्र - सं0 कृष्ण दास पृ0 - 144

किन्तु, आचार्य मम्मट[1] एवं विश्वनाथ[2] ने गुणों की संख्या तीन ही मानी है, क्योंकि इन सब गुणों का समावेश इन्हीं में हो जाता है । उनके अनुसार गुण निम्नलिखित हैं - ।1। माधुर्य ।2। ओज ।3। प्रसाद ।

## माधुर्य गुण

### स्वरूप तथा क्षेत्र निरूपण

"माधुर्य" वह है जिसे एक ऐसा आह्लाद अथवा आनन्द कह सकते हैं जिसका स्वरूप सहृदय के हृदय की "द्रुति" अथवा "द्रवीभूतता" ।पिघल पड़ना। । यह संभोग शृंगार, करुण रस, विप्रलम्भ शृंगार और शान्त रस में अनुगत रहा करता है और इसमें भी उत्तरोत्तर मधुर लगा करता है ।[3]

### माधुर्य अभिव्यंजना के साधन

।1। वर्ण, जैसे कि । वर्ग कटु । ट ठ ड ढ को छोड़कर "क" से "म" पर्यन्त के वर्ण जो कि अपने-अपने वर्ग के अन्त्य वर्ण से मिलकर श्रुति मधुर ध्वनि की सृष्टि किया करते हैं अन्य वर्ण से असंयुक्त रेफ, और मूर्धन्य "ण" कार ।

।2। असमस्त रचना ।3। अल्प समासवती रचना ।4। मधुर पद योजना ।[4]

## राजधर सतसई में माधुर्य गुण

राजधर सतसई का वर्ण्य विषय शृंगार प्रधान है । शृंगार के अनुगत माधुर्य गुण रहा करता है, अतः इसमें ।राजधर सतसई में। माधुर्य गुण की प्रधानता है ।

राजधर सतसई की भाषा भी ब्रजभाषा है, जो कि स्वभावतः माधुर्य प्रधान है, जिसमें वर्ग कटु वर्णों - "ड" एवं "ण" के स्थान पर क्रमशः "र" एवं "न" हो जाता है, संयुक्त वर्णों के स्थान असंयुक्त वर्ण प्रयुक्त होते है, इत्यादि विशेषतायें माधुर्य गुण के अनुकूल हैं, अतः राजधर सतसई में माधुर्य गुण "सोने में सुहागा" वाली कहावत चरितार्थ करता है -

---

।1। काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट - 8/89
।2। साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 9/1
।3। " - " - 8/2
।4। " - " - 8/3

अँसी पावत हूँ नहि, तेरी चलनि चितैबि ।
मदगति छाँडी कुँवरनि, पद गति सदगति देखि ।।[1]

पावन संग है पग घटै, पंचाली संग धीर ।
मो तन बाढ़यो बिरह अति, लगि बरसा को नीर ।[2]

उपर्युक्त दोहों में कर्ण कटु वर्णों का अभाव प्राय है, ककार से मकार तक वर्ण अनुस्वार से संयुक्त देखे जा सकते हैं, संयुक्त वर्णों एवं समस्त पदों का अभाव है, अतः माधुर्य गुण के स्पष्ट दर्शन किए जा सकते हैं ।

## ओजो गुण

**स्वरूप तथा क्षेत्र निरूपण**

जिसे "ओज" कहते हैं, वह सहृदय की दीप्ति अथवा प्रज्वलितप्रायता, जिसका स्वरूप चित्त की विस्तृति अथवा ऊष्मता है । वह ओज वीर, बीभत्स और रौद्र में उत्तरोत्तर प्रकृष्टरूप से विराजमान रहा करता है ।[3]

**अभिव्यंजना के साधन**

(1) वर्ण, जैसे कवर्ग आदि वर्गों के प्रथम (क, च, ट, त, प) और (ग, ज, ड, द, ब) वर्णों का, उनके अपने-अपने अन्त्य वर्णों (वर्गों के प्रथम वर्णों के अन्त्य वर्ण ख, छ, ठ, थ, फ और वर्गों के तृतीय वर्णों के अन्त्य वर्ण (घ, झ, ढ, ध, भ) से सहयोग (जैसे पुच्छ, बद्ध में) नीचे ऊपर अथवा दोनों ओर से किसी वर्ण के साथ संयुक्त रेफ (जैसे वि(क्र)म, आदि में) संयुक्त अथवा असंयुक्त ट, ठ, ड, ढ और तालव्य शकार और मूर्धन्य षकार ।

(2) दीर्घ समास रचना

(3) औद्धत्यपूर्ण पद योजना[4]

---

(1) रामसहाय सतसई - दो० सं० - 398

(2) " " - दो०सं० - 293

(3) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 8/4

(4) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 8/5-6

## राजधर सतसई में ओज गुण

राजधर सतसई में जहाँ कवि ने कतिपय दोहे महाराज उदोत सिंह के प्रताप वर्णन से संबंधित लिखे हैं, वहाँ ओज गुण देखा जा सकता है -

।1। जस <u>मंडित</u> <u>पंडित</u> किये, <u>दंडित</u> अरि गन <u>चंड</u> ।
सिंह उदोत नर नाथ तुव, हुव प्रताप नव <u>खंड</u> ।।[1]

।2। बहु अरि दल दह बट्ट किय, लिय जस संगर और ।
कैयक <u>गढ</u> <u>ढाहे</u> <u>ढकनि</u>, बहु किय छिति छोर ।।[2]

।3। <u>बुद्धिवंतु</u> बलवंतु लखि, जग जसवन्तो जानि ।
<u>राज्धर</u> महाराज किय, <u>राज्धर</u> उर आनि ।।[3]

उपर्युक्त दोहों में, कर्ण कटु वर्णों - गढ, ढाहे, ढकनि एवं बट्ट - का प्रयोग, सवर्ग के तृतीय एवं चतुर्थ वर्णों का संयोग, जैसे - बुद्धि, राज्धर । राजधर के स्थान पर । और "णकार" । जो कि माधुर्य में वर्जित है। का प्रयोग - जैसे मण्डित, पण्डित, दण्डित, चण्ड और खण्ड में देखा जा सकता है, अतः यहाँ ओज गुण विराज रहा है ।

## प्रसाद गुण

### स्वरूप तथा क्षेत्र निर्देश

जिसे "प्रसाद" कहते हैं वह सहृदय हृदय की एक ऐसी निर्मलता है, जो कि चित्त में उसी भाँति व्याप्त हो जाती है, जिस भाँति सूखी लकड़ी में आग । यह "प्रसाद" सभी रसों का धर्म अथवा स्वरूप विशेष है और इसकी अवस्थिति सभी रचनाओं की विशेषता हुआ करती है ।[4]

### अभिव्यंजन के साधन

इस "प्रसाद" के अभिव्यंजन साधन वे शब्द हैं, जिनसे अर्थ उनके श्रवण मात्र से छलक उठते हैं ।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। राजधर सतसई -दो० सं० - 05
।2। " " - " - 09
।3। " " - " - 07
।4। साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 8/7
।5। " " - " - 8/8

## राजधर सतसई में प्रसाद गुण

यह गुण सब रस तथा रचनाओं में पाया जाता है । यतः, राजधर सतसई अभिधा प्रधान एवं असमस्त पदों से युक्त है, अतः इसमें प्रसाद गुण के दर्शन सर्वत्र ही किए जा सकते हैं । उदाहरणार्थ -

(1) सारति मग टारति सुमिन, हरि आवन के हेत ।
सींके बाँधति उरमती , प्रभु न होई दधि लेत ।।[1]

(2) औटि जमावति नित दही, धरति सकोटे माँह ।
छवि देखन कौं लाल की , छपी छपावै छाँह ।।[2]

उपर्युक्त दोहों को पढ़ते ही पूर्व अनुरागिनी नायिका का चित्र नेत्रों के सामने अनायास खड़ा हो जाता है । इन दोहों के समझने में पाठक को किसी प्रकार के बौद्धिक व्यायाम की आवश्यकता नहीं है । अतः, ये दोहे प्रसाद गुण से सर्वथा पूर्ण हैं ।

## निष्कर्ष

राजधर सतसई में माधुर्य गुण का प्राधान्य है । कतिपय दोहे जो महाराज उदोत सिंह के प्रताप वर्णन से संबंधित हैं, उनमें ओज गुण देखा जा सकता है । प्रसाद गुण सर्वत्र ही है ।

:::::::::::::::::

# रामसहाय सतसई : अलंकार निरूपण

## रीतिकालीन परिवेश एवं अलंकरण प्रवृत्ति

हिन्दी का आचार्य कवि दरबारी था । अतः, दरबार के ही वातावरण के अनुकूल उसे काव्य रचना और शास्त्र निरूपण करना पड़ता था । जो विषय दरबार में सम्मानित नहीं थे, उनकी चर्चा इन कवि आचार्यों ने नहीं की । रीतिकाल में सबसे अधिक रस, उसमें भी श्रृंगार रस तथा नायक-नायिका भेद का निरूपण हुआ । यह सामन्तों की मानसिक विलास तृप्ति के लिए आवश्यक था । दूसरा काव्यांग अलंकार है, जिसको रीतिकाल में महत्व मिला । अधिकांश आचार्यों ने अलंकारों का निरूपण किया जिनके द्वारा सामन्तों का बौद्धिक अनुरंजन होता था ।[1]

रीति काव्य जिस परिवेश में निर्मित हो रहा था, उसमें उक्ति चमत्कार और दूर की कौड़ी लाने की विशेष महत्ता थी । डा० हजारी प्रसाद ने इस ओर संकेत भी किया है कि " ये (रीति ग्रंथ) सब ओर से बाधा पाकर सिमटे हुए चित्त को भुलाने का बहाना मात्र हैं जिसमें उक्ति चमत्कार के साथ भी बहुत न्याय नहीं किया गया । इन ग्रंथों के पाठक के चित्त में न तो मनुष्य जीवन के किसी बड़े लक्ष्य को प्राप्त करने की स्फूर्ति संचरित होती है और न काव्य के व्यापक स्वरूप का परिचय मिलता है । यहाँ सब कुछ उक्ति चमत्कार में ही सीमाबद्ध हो गया है । यहाँ प्रत्येक वक्तव्य किसी विशिष्ट वचन भंगिमा का आश्रय लेकर काव्य बन सकता है ।[2]

रीति काव्य की अलंकरण प्रवृत्ति को कालिदासोत्तर संस्कृत काव्यों ने भी प्रभावित किया । भारवि, माघ और श्रीहर्ष के महाकाव्यों की परम्परा में विनिर्मित रत्नाकर के हर विजय, कविराज के राघवपाण्डवीय, हेमचन्द्र के द्वयाश्रय महाकाव्य एवं कृष्णानंद के सहृदयानंद में नितान्त कृत्रिम और अलंकार प्रधान शैली का आश्रय लिया गया है । प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से इन महाकाव्यों ने अलंकरण वृत्ति को विशेष प्रश्रय दिया । मुक्तकों में भी अनेक सप्तशतियों, शतक आदि का निर्माण हुआ, जिसने सम्मिलित रूप से रीतिकालीन अलंकरण प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया ।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रीति काव्य के स्रोत - डा० रामजी मिश्र - पृ० - 30

(2) हिन्दी साहित्य - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० 307,308

(3) रीति काव्य के स्रोत - डा० रामजी मिश्र - पृ० 31

## रामधर सतसई : अलंकारों का स्थान

कविवर रामधर ओरछा नरेश महाराज उदोत सिंह के दरबारी कवि थे। इनके पूर्व महाराज इन्द्रजीत सिंह के दरबारी कवि केशव दास रह चुके थे। केशव दास की मृत्यु ( संवत् 1674 लगभग )[1] के लगभग 90 वर्ष पश्चात् संवत् 1764 से 1766 तक[2], रामधर ने रामधर सतसई की रचना की। फिर भी वे केशव दास के "भूषन बिन न बिराजई कविता बनिता मित्त" के सिद्धान्तः समर्थक नहीं हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार " -- पर केशव दास के 50 या 60 वर्ष पीछे हिन्दी में लक्षण ग्रन्थों की जो परम्परा चली, वह केशव दास के मार्ग पर नहीं चली। काव्य के स्वरूप में तो वह रस की प्रधानता मानने वाले काव्य प्रकाश और साहित्य दर्पण के पक्ष पर रही और अलंकारों के निरूपण में उसने अधिकतर चन्द्रालोक और कुवलयानंद का अनुसरण किया।[3]

रामधर सतसई के दो दोहे कविता में अलंकार का स्थान प्रतिपादन के लिए द्रष्टव्य हैं -

(1) रसमति है नव रस कवित, पद गति सहगति चारु ।
बरन बरन अभरन सहित, बनिता कविता सारु ॥[4]

(2) अति सुवृत्त सुबरन मई, नई ओप सब अंग ।
अलंकार युत राजई, कविता - बनिता संग ॥[5]

इन दोनों दोहों पर हम क्रमशः कविता पक्ष से विचार करने पर देखते हैं -

### प्रथम दोहा

(1) सर्व प्रथम "नव रस कविर" का उल्लेख करके रामधर ने कविता में रस के प्राधान्य का प्रतिपादन किया है। अर्थात् काव्य की आत्मा रस है। इस प्रकार यहाँ साहित्य दर्पणकार के "वाक्यं रसात्मकं काव्यं" की पुष्टि है।

---

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य राम चन्द्र शुक्ल - पृ0 - 199
(2) रामधर सतसई - दो0 सं0 - 13 एवं रामधर सतसई की भूमिका।
(3) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ0 - 201
(4) राम धर सतसई - दो0 सं0 - 391
(5) रामधर सतसई - दो0 सं0 - 339

(2) पद - गति

आचार्य वामन के अनुसार " विशिष्टा पद रचना रीतिः " एवं " विशेषो गुणात्मा " । पद से तात्पर्य शब्द विन्यास से है । इस प्रकार कविता में शब्द विन्यास (पद) एवं गुणों का प्रतिपादन है ।

(3) बरन बरन

अर्थात् कविता में यथानुकूल सुन्दर वर्ण योजना होनी चाहिए ।

(4) अभरन सहित

अर्थात् कविता अलंकारों से युक्त होनी चाहिए ।

द्वितीय दोहा में

(1) अति सुवृत्त - अर्थात् सुन्दर व छन्द युक्त ।

(2) सुबरन मई - सुन्दर वर्ण विन्यास ।

(3) अर्थ ओप - यहाँ ध्वनि से तात्पर्य है ।

(4) अलंकार जुत - अलंकार युक्त ।

इन दोनों से स्पष्ट है कि अलंकारों का स्थान " भूषन बिन न बिराजई कविता-बनिता मित्त " की तरह अनिवार्य घोषित नहीं किया गया है । हाँ, यदि अलंकार कविता में हों तो शोभा बढ़ाते हैं ।

राजधर सतसई में अनेक मार्मिक सूक्तियाँ[3] अलंकृत हैं । इससे सिद्ध होता है कि राजधर काव्य प्रकाशकार मम्मट के मतानुसार " अनलंकृती पुनः क्वापि " के ( व्यावहारिक रूप में ) समर्थक हैं । राजधर सतसई के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सारतः, राजधर रसवादी हैं, फिर भी युगीन प्रवृत्ति के अनुसार उनका झुकाव अलंकारों की ओर है ।

## अलंकारों का वर्गीकरण एवं राजधार सतसई में अलंकार निरूपण

आचार्य भरत ने अलंकार वर्गीकरण के संबंध में कोई मत नहीं दिया है । " शब्दाभ्यासस्तु यमकम् " से यमक/शब्दालंकार होने की धारणा का केवल अनुमान मात्र ही किया जा सकता है । वस्तुतः भामह ही प्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने अलंकारों के वर्गीकरण की दशा में प्रथम प्रयत्न किया ।[1]

आचार्य भामह ने अपना प्रारम्भिक वर्गीकरण शब्दालंकार और अर्थालंकार के रूप में दिया है । अलंकारों की संसृष्टि की बात भी उन्होंने कही, परन्तु उभयालंकार वर्ग का निर्देश उन्होंने स्पष्टतया नहीं किया (उभयालंकार का व्युत्पत्त्यर्थ आचार्य भोज ने किया ।[2]

आचार्य उद्भट, रुद्रट तथा रुय्यक आदि संस्कृत के विद्वानों ने शब्द और अर्थ भेद से अलंकारों के वर्गीकरण को मानते हुए भी अर्थालंकारों के वर्गीकरण की समस्या पर विशेषतः विचार किया है ।[4]

सारांशतः अलंकारों के वर्गीकरण में शब्दालंकार, अर्थालंकार एवं उभयालंकार शीर्षक देकर उनके अन्तर्गत विवेचन करने की परिपाटी सर्वमान्य रही है । रीतिकाल के कवि आचार्यों ने भी इसी का अनुसरण किया है । अतः हमने अपने विषय के स्पष्ट प्रस्तुतिकरण हेतु काव्य प्रकाश एवं साहित्य दर्पण में उल्लिखित अलंकारों को इसी वर्गीकरण के अन्तर्गत रखा है ।

### शब्दालंकार

जो चमत्कार सौन्दर्य शब्द पर आश्रित है, शब्द का परिवर्तन हो जाने पर अर्थात् किसी शब्द का पर्यायवाची रख देने पर वहाँ अलंकार नहीं रहता । ( शब्दपरिवृत्त्यसहत्व अर्थात् शब्द के परिवर्तन को न सहना ), वे शब्दालंकार हैं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) भारतीय काव्य शास्त्र - डॉ० STO कृष्ण बल - पृ० - 120

(2) ------------ वही ---------------- - पृ० - 120

(3) - - - - - - वही - - - - - - - - - - - पृ० - 121

(4) - - - - - - - वही - - - - - - - - - - पृ० - 124

<u>अनुप्रास</u> - वर्णों के स्वर वैषम्य होने पर भी साम्य को अनुप्रास कहा जाता है।[1]

<u>छेकानुप्रास</u>[2]

1- दीपो देवर बात ही, पुती पुति के हाथ।[3]

। "द" एवं "प" वर्ण की दो-दो बार पुनरावृत्ति।

2- मोहन मोहयो मनु मगतु ,[4]

। "म" की पुनरावृत्ति।

<u>वृत्यनुप्रास</u>[5]

1- तौ तुन ताकी तुलनाई, तुरत तुरंगिनी सम।[6] "त" वर्ण की 6 बार पुन0

2- पूछु पारषु दमरषु तुरषु, समरथ सम्बै होत।[7] "ष" " " 5 " "

3- पापे पावन पुरम पुट, उपजत पुर के ताप।[8] "प" " 6 " "

<u>श्रुत्यनुप्रास</u>[9]

अंत तांप तन कनक कौ, अब तुराग दुख देत।[10]

दन्त्याक्षरों - त द न - की आवृत्ति होने से श्रुत्यनुप्रास है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 10/3

।2। " " - " - 10/3

।3। ~~साहित्य-दर्पण~~— राजधर सतसई - दो0 सं0 - 155

।4। राजधर सतसई - दो0 सं0 - 102

।5। साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 10/4

।6। राजधर सतसई - दो0 सं0 - 74

।7। " " - दो0 सं0 - 06

।8। " " - दो0 सं0 - 21

।9। साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 10/5

।10। राजधर सतसई - दो0 सं0 - 39

यमक [0]

1- सार्थक यमक

(अ) अभंग पद यमक - लपटै बिनु लपटै परै, क्यों लपटैं पिय आन ।[1]

लपटै = लिपटना, लपटै = ग्रीष्मकालीन लपट (उष्ण वायु)

कटि तट बाजति किंकिनी, कान सुनत दै कान ।[2]

प्रथम "कान" का अर्थ "कृष्ण" एवं द्वितीय "कान" का अर्थ श्रवणेन्द्रिय ।

(आ) सभंग पद यमक - नख सिख तैं बैसी बनी, बैसी देखी मै न ।

तांधी ताधि मैन कै, मानौ हारी मैन ॥[3]

प्रथम "मै न" (मैंने नहीं), द्वितीय मैन (मोम), तृतीय मैन (कामदेव) । प्रथम "मै न" में पद भंग है ।

2- निरर्थक यमक (पदावृत्ति रूप यमक)[4]

(1) भई लटपटी देह दुति, लगी चटपटी चित्त ।

करी अटपटी विधि यहै, बिछुरत है मन मित्त ॥[5]

(2) गरज्यौ सुनि घन घुमड़ि कै, तरज्यौ ताप अनंग ।

परिज्यौ तन मन धीर क्यों, धरिज्यौ बिनु प्रिय संग ॥[6]

श्लेष

निरखि जात मै ताप तन, छवि कै उठत तरंग ।

आई गए घनश्याम के, बरसौहैं सब अंग ॥[7]

घनश्याम = श्रीकृष्ण एवं काले बादल

बरसौहैं = शोभायमान हैं एवं बरसने वाले ।

इस दोहे में सभंग पद श्लेष प्रयुक्त हुआ है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(0) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 10/8

(1) राधाधर सतसई - दो० सं० - 108

(2) " " दो० सं० - 18

(3) " " दो० सं० - 338

(4) साहित्य दर्पण- विश्वनाथ - 1018

(5) राधाधर सतसई - दो० सं० - 197

(6) राधाधर सतसई - दो० सं० - 594

(7) " " - दो० सं० - 67

**[illegible]**

झाऊ झाऊ लागी रहै, निशुदिन विरहा छाँह ।
झाऊ झाऊ बिनु क्यों कटै, झाऊ झाऊ बिय माह ।।[1]

इस दोहे में राजधर ने शब्दों को, यमक जैसी अंलकार लाने हेतु तोड़ा मरोड़ा है । जिसके कारण भाषा में कृत्रिमता आ गई है ।

रस बस, धाम विधाम करि, उकतिनि जुगति समेत ।[2]

**(ग) पुनरुक्ति प्रकाश**

घुमि घुमि घन की घटा, उमडों बरसत मेहु ।[3]

ज्यों ज्यों तिमरो बढ़ति हैं, अबै तुम फिरित बाउ ।
त्यों त्यों तिय हिय धधकती, होवे बड़ा उपाउ ।।[4]
दिन दिन बाढ़ि बढ़ती कला, पिय सुहागु सुभ चंदु ।[5]

राजधर सतसई में शब्दालंकार सर्वप्राय रसोत्कर्ष में सहायक हैं । कतिपय दोहों में ही राजधर जी ने पांडित्य प्रदर्शन हेतु रुचि दिखलाई है । वहाँ वे चमत्कारोन्मुख प्रतीत होते हैं ।

**अर्थालंकार :**

जो अलंकार अर्थ पर आश्रित है, वहाँ किसी शब्द का पर्यायवाची रख देने पर भी अलंकार बना रहता है । शब्द परिवृत्ति सहत्व अर्थात् शब्द के परिवर्तन को सहना, ये अर्थालंकार होते हैं ।

राजधर सतसई के अर्थालंकारों के विवेचन हेतु हमने रूय्यककृत "अलंकार सर्वस्व" से आधारभूत मार्गदर्शन प्राप्त किया है । रूय्यक ने निम्नलिखित भेदोपभेदों के अन्तर्गत अर्थालंकारों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है -

---

(1) राजधर सतसई - दोहा सं0 - 324
(2) " " - " - 11
(3) " " - " - 90
(4) " " - " - 313
(5) " " - " - 388

(1) सादृश्य गर्भ - (अ) भेदाभेदतुल्य प्रधान (ब) अभेद प्रधान (स) गम्यमानौपम्य

(2) विरोध गर्भ

(3) शृंखला बन्धोपचित

(4) न्याय मूलक - (अ) तर्क न्याय मूलक (ब) काव्य न्याय मूलक अथवा वाक्य न्याय मूलक (स) लोक न्याय मूलक

(5) गूढार्थ प्रतीति मूलक

## सादृश्यगर्भ अलंकार

इन अलंकारों का मूलाधार साधर्म्य है । यह साधर्म्य भी तीन प्रकार का है - (अ) भेदाभेदतुल्य प्रधान (ब) अभेद प्रधान (स) गम्यमानौपम्य

यह साधर्म्य भी कहीं वाच्य रहता है, कहीं प्रतीयमान ।

(अ) भेदाभेद तुल्य प्रधान

इस वर्ग में उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय और स्मरण चार अलंकार हैं । इन अलंकारों में उपमेय और उपमान के साधर्म्य में भेद नहीं होता, तुल्य साधर्म्य की स्थिति विद्यमान रहती है ।[1]

उपमा

पूर्णोपमा

लखि लखि लोयन मलिन दृग, लीली मलिन मुख होति ।
सुकल पच्छ के चंद लौं, बाढ़ति है मुख जोति ।।[2]

उपमेय - मुख (नायिका का), उपमान - (शुक्ल पक्ष का) चंद्र, वाचक शब्द - लौं और साधारण धर्म - ज्योति (दीप्ति) का बढ़ना । अतः इस दोहे में पूर्णोपमालंकार विद्यमान है ।

उपमेय लुप्तोपमा

ललित लता सी लहलही, सोम कुल छवि कुल ।[3]

उपमान - लता, वाचक शब्द - सी, साधारण धर्म - ललित एवं लहलही ।
उपमेय (नायिका) का लोप है, अतः यहाँ उपमेयलुप्तोपमालंकार है ।

---

(1) भारतीय काव्य शास्त्र - सं० डा० श्रीकृष्ण लाल - पृ० - 128
(2) बिहारी सतसई - दो० सं० - 387
(3) " " - दो० सं० - 53

**अनन्वयोपमा**

देखै वाके रूप को, नारि न्यावति नारि ।
तोसी तू ही जगत मैं, रची विरंचि विचारि ।।[1]

यहाँ नायिका (उपमेय) को ही उपमान बताया गया है । अतः अनन्वयोपमालंकार है ।

(ब) **अभेद प्रधान**

इस वर्ग में आठ अंलकार आते है । इनमें से 6 आरोपमूलक हैं और 2 अध्यवसाय मूलक । रूपक, परिणाम, सन्देह भ्रान्ति उल्लेख और अपह्नुति आरोप मूलक है । उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अध्यवसाय मूलक अंलकार हैं । इन अंलकारों में उपमेय उपमान के साधर्म्य में अभेद विवक्षा रहती है । इसलिये अभेद प्रधान साम्य ही इनका मूलाधार है । रूपकादि 6 अंलकारों में उपमेय में उपमान का आरोप किया जाता है, अतः आरोप की प्रधानता रहती है । उत्प्रेक्षा में अनिश्चित रूप से तथा अतिशयोक्ति में निश्चित रूप से उपमेय में उपमान का अध्यवसाय होता है । अतः, ये दोनों अंलकार अध्यवसाय मूलक हैं ।[2]

**रूपक**

**सांग रूपक**

कर पल्लव, दृग कमल भरि, कुच फल सोभा देखि ।
नाभि कूप तिय तन लसत - लसी लताकति देखि ।।[3]

यहाँ नायिका के समस्त अंगों पर बाग का आरोप है ।

**निरंग रूपक**

गई न जी लगि छूटिकै, पिय ज्यों आवे हाथ ।
नैननि ही लागी फिरै, सौति-नाथ सौ साथ ।।[4]
ध्यावहु सरसुती मातु के, चरन कमल चुप चित्त ।[5]

---

(1) राधवर सतसई - दो0 सं0 - 35।
(2) भारतीय काव्य शास्त्र - सं0 डा0 कृष्ण बाल - पृ0 128
(3) राधवर सतसई - दो0 सं0 - 487
(4) " " - दो0 सं0 - 282
(5) " " - दो0 सं0 - 02

### सन्देह

इतै उदौ राकेश किय, तिय आई इहि ओर ।
इत उत चित मैं चकित सौ, पिउ चितवतु दुहु ओर ॥[1]

इधर चन्द्रोदय हुआ । उधर (चन्द्रमुखी) नायिका का आगमन हुआ । नायक चकित चित्त कभी इसको देखता है, कभी उसको । अर्थात् नायक को सन्देह है कि चन्द्र कौन सा है' यहाँ सन्देह अंलकार व्यञ्जित है ।

### भ्रांतिमान

(1) रतन खंइम प्रतिबिंब लखि, और सखा भ्रम साधु ।
कहत सु माखन चोरि हरि, हम तुम आधे आधु ॥[2]

(2) सुन्दर सहज सुवास मय, ललित लहलही भाँति ।
लख मंजरी लतनि लखि, <u>लही भ्रमर मन साँति</u> ॥[3]

प्रथम दोहे में, बाल-कृष्ण को रत्न-जटित खंभ में अपने प्रतिबिंब को ही अपना कोई अन्य सखा होने की भ्रांति है तथा द्वितीय दोहे में (लता बेलमान) छरहरी एवं लचीली देह यष्टि पद्मिनी (सुवासमय) लहलही नायिका में भ्रमर को सुगन्धित पुष्पयुक्त लता की भ्रांति हो रही है, अतः इन दोनों दोहों में भ्रांतिमान् अंलकार है ।

### उल्लेख

कामिनि कामै कामु है, सुरतरु कविन बखान ।
समर सूरता सूर है, राजधर जिय जान ॥[4]

यहाँ राजा उदोत सिंह तो एक ही है, किन्तु कामनियों के लिए कामदेव, कवियों के लिए कल्पवृक्ष एवं युद्ध में सूर्य अथवा शूरवीर - उनके अनेक रूप उल्लिखित हैं, अतः यहाँ उल्लेख अंलकार है ।[5]

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 260
(2) " " - दो० सं० - 29
(3) " " - दो० सं० - 317
(4) " " - दो० सं० - 209
(5) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 10/37

## अपह्नुति

### हेत्वपह्नुति

बातन करै बहु भाँति पिय, बीतन कौं सुख सोधु ।
सिय सिर चूरी जानि नहिं, सुरि आयो तम तोमु ॥[1]

यहाँ उपमेय (चूड़ा) का निषेध कर उपमान (तमतोम = राहु) की स्थापना है, साथ ही प्रथम पंक्ति उसके कारण-सुख-सोधु बीतने के लिए - का भी कथन है, अतः हेत्वपह्नुति अलंकार है ।

### पर्यस्तापह्नुति

तनकहु पान कराइये, प्रीतम सदा सकाम ।
सुधा अधर मैं धरि कहा, करै अधर मैं धाम ॥[2]

तात्पर्य है कि सुधा अधर आकाश (अंगना ते स्वर्ग) में नहीं, वस्तुतः नायिका के अधरों में विद्यमान है । इस प्रकार सुधा के यथार्थ प्राप्ति स्थान (स्वर्ग) का निषेध कर उसकी स्थापना अन्यत्र नायिका के अधरों में की गई है, अतः पर्यस्तापह्नुति अलंकार है ।

### कैतवापह्नुति

(1) मानिनि कपट कपाट की, तारोई खुल जाइ ।
ससि मिस अंकुस की कुंजी, अंबर मांहि दिखाइ ॥[3]

(2) मुनि तरवर तप सौ करत, यति वन मैं बहु काल ।
लखियतु कुटिल मलीन मिस, बढ़े करनि मय जाल ॥[4]

(3) अतन ताप तन तापियतु, ताके उपशम हेत ।
कुच महेस सिर सहस घट, दृग अंसुनि मिस देत ॥[5]

---

(1) राज्यधर सतसई - दो० सं० - 457
(2) " " - दो० सं० - 97
(3) " " - दो० सं० - 419
(4) " " - दो० सं० - 622
(5) " " - दो० सं० - 24

"मिस" शब्द के द्वारा, प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय दोहोंमें क्रमशः उपमेयों - "रति", "कुटिल कटीन" एवं "अधुनि" - का निषेध कर, उनके स्थान पर उपमानों - "अंकुश की पुत्री", "करनि धरे बाल" एवं "तरल पट (अग्नि)"- की स्थापना होने के कारण कैतवापह्नुति अलंकार है।

## उत्प्रेक्षा

### वस्तु उत्प्रेक्षा

कटि तट बाजति किंकिनी, काम सुनत है कान ।
पढ़त एक मुनि मुनि महा, मानो मदन विधान ।।[1]

नायिका के "कटि तट पर बजती हुई किंकिनी" पर "एक मुनि से काम शास्त्र का पाठ करते हुए मुनियों" की संभावना व्यक्त की गई है।

### हेतु उत्प्रेक्षा

पान खात तिय सहज मैं, अधरनि लाली होति ।
अंतर ते अनुराग जनु, बाहिर कीनी जोति ।।[2]

यहाँ नायिका के पान खाने पर अधरों पर लाली होने का हेतु द्वितीय पंक्ति में दर्शाया गया है।

### फलोत्प्रेक्षा

कुच उलटे विपरीत में, राजति वेही भेष ।
काम जीति की कामना, जनु तपु तपत महेस ।।[3]

इस दोहे में नायिका के कुचों पर महेश की संभावना के साथ कामदेव को जीतने की कामना (फल) भी दर्शाया गया है, अतः फलोत्प्रेक्षालंकार है।

### गम्य - उत्प्रेक्षा

तरु पुहुपनि बरसा करति, गावत विहग समाज ।
बन पुजानि मंगल किये, आवत लखि रितु राज ।।[4]

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 18
(2) " " - " " - 237
(3) " " - " " - 160
(4) " " - " " - 553

## अतिशयोक्ति

### रूपकातिशयोक्ति

सुवरन लतिका ललित यह, ललिता के घर माँहि ।
नितुदिन लाल लहाइयौ, हिये लाइ भरि बाँहि ।।[1]

यहाँ मात्र उपमान - सुवरन लतिका - का कथन किया गया है। जिससे गौरवर्ण लचीली देह यष्टि युक्त नायिका का बोध हो जाता है । अर्थात् सुवरन" लतिका" एवं "गौरवर्ण नायिका" में भेद होने पर भी अभेदाध्यवसाय विराजमान है, अतः रूपकातिशयोक्ति अलंकार है ।

### भेदकातिशयोक्ति

रोष मिली पिय दयालु धरि, ललित न क्यों उहि ठौर ।
वह मुरति कछु और है, वह मूरति कछु और।।[2]

यहाँ उपमेय एवं उपमान में अभेद होते हुए भी, भेद का कथन किया गया है अर्थात् "पिय" की मूरति(छवि) वही होने पर भी उसे " वह मूरति कछु और" कहा गया है । अतः भेदकातिशयोक्ति अलंकार है ।

### चपलातिशयोक्ति

छूटे बिना छूटे सबै , भोजन अरु पय पान ।
नींद भई है पाहुनी, पिय पयान सुनि कान ।।[3]

प्रवत्स्यत्पतिका नायिका ने मात्र पति के प्रस्थान को कानों से ही सुना है । अभी उसके पति ने प्रवास गमन नहीं किया है, करने वाला है । नायिका का खाना-पीना छूट गया है और उसकी नींद उड़ गई है ।

यहाँ कारण के ज्ञान मात्र से ही कार्य सम्पन्न होने से चपलातिशयोक्ति अलंकार है ।

### अक्रमातिशयोक्ति

लघु बासर हेमंत रवि, होतहि उदौ समात ।[4]

हेमन्त ऋतु में दिन अत्यन्त लघु होते हैं, जिनमें रवि उदय होते ही अस्त हो जाता है । यहाँ कारण-कार्य की एक साथ वर्णना है, अतः अक्रमातिशयोक्ति अलंकार है ।

---

1. रामसहाय सतसई - दो० सं० - 115
2. " " - " " - 435
3. " " - " " - 403
4. " " - " " - 632

## ॥ग॥ गम्यमानौपम्य

इस वर्ग के अन्तर्गत तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, श्लेष, अप्रस्तुतप्रशंसा, पर्यायोक्ति, अर्थान्तरन्यास, व्याज स्तुति और आक्षेप ये सोलह अलंकार आते हैं। इन अलंकारों में औपम्य प्रतीयमान अथवा व्यंग्य रूप से रहता है। वाच्य कदापि नहीं रहता। इसलिये इनका आधार गम्यमान औपम्य है, परन्तु इन अलंकारों में गम्यमान औपम्य की स्थिति भिन्न-भिन्न रूपों में रहती है, दीपक और तुल्ययोगिता में उपमेय या उपमानों का अथवा दोनों के एक धर्म का कथन एक ही पद में रहता है। इसलिये दोनों का गम्यमान औपम्य पदार्थगत ही रहता है। दृष्टान्त, प्रतिवस्तूपमा तथा निदर्शना वाक्यार्थगत गम्य औपम्य रहता है। व्यतिरेक और सहोक्ति में उपमेय और उपमान के पारस्परिक भेद के विद्यमानत्व में भी गम्यमान औपम्य रहता है। श्लेष में विशेषण - विशेष्य वैचित्र्यगत गम्य प्रधान औपम्य की विद्यमानता है। विनोक्ति सहोक्ति का तथा अप्रस्तुत प्रशंसा समासोक्ति का विरोधी अलंकार है। अर्थान्तरन्यास अप्रस्तुत प्रशंसा का सजातीय अलंकार है। पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति और आक्षेप में भी गम्यमानता है। परन्तु इन अलंकारों में संभवतः विरोधी और सजातीय भाव की सरल बोधगम्यता के कारण इस वर्ग में रखा गया है। पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति और आक्षेप को गम्यमान के प्रस्ताव प्रसंग के हेतु इस वर्ग के अन्तर्गत मान लिया गया है।[1]

### तुल्ययोगिता

॥1॥ एक भरैं भरती न एक, इकनि धरे भरि तीर ।
जो जैसी सो त्यौं रहीं, निरखत श्री यदुवीर ॥[2]

अनेक गोपियाँ - कोई जल भर रहीं है, कोई जल नहीं भर रही हैं एवं कोई जल भर कर घट तीर (यमुना के) पर रखे हुए हैं - का एक ही क्रिया - श्री कृष्ण को देखकर ज्यों का त्यों रह जाना - से अभिसंबंध है, अतः यह (प्रथम) तुल्ययोगिता है।[3]

---

॥1॥ भारतीय काव्य शास्त्र - सं० डा० कृष्ण बल - पृ० - 128
॥2॥ राघवर सतसई - टी० सं० - 272
॥3॥ साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 10/47

(2) पृथु पारथु दसरथु, सुरथु समरथ समये होत ।
वन वाहिर चतवंत नृप, सुजति सिंह उदोत ॥[1]

यहाँ राजा उदोत सिंह के धर्म (सामर्थ्य) की तुलना अनेकों – पृथु, पार्थ, दसरथ, और सुरथ – से की गई है, अतः यहाँ (तृतीय) तुल्ययोगिता है ।[2]

(3) बावन लौं है बन बढ़ी, पंचाली लौं चीर ।
सौतन बाढ्यौ विरह अति, लगि बरसा कौ नीर ॥[3]

प्रस्तुत नायिका के विरह–विस्तार (धर्म) की समता, वामन के पग एवं पंचाली के चीर (के ~~विस्तार~~ स्तार धर्म) से की गई है अतः तुल्ययोगिता है ।

<u>दीपक अंलकार.</u>

(1) मुख उठाई बहु भाई लौं, लालन तन मुसुकाई ।
गागरि पर गागरि धरति, गागरि धरन उपाइ ॥[4]

(2) आँख मूँदि इत उत चितैं, सैनति करति सकेतु ।
पिय सँग खेलत तिय सकनि, भौं नचावति हेतु ॥[5]

प्रथम दोहे में एक कारक (कर्ता) "गागरि" का संबंध अनेक क्रियाओं – "मुख उठाई बहु भाई लौं," "लालन तन मुसुकाई," "गागरि पर गागरि धरति" एवं "धरन उपाइ" – से जोड़ा गया है । द्वितीय दोहे में भी एक कारक– सकनि–तिय (कर्ता) – का संबंध अनेक क्रियाओं – आँख मूँदना, इधर–उधर देखना, अँखियों से संकेत करना, और पिय के संग खेलना – से जोड़ा गया है । अतः इन दोनों दोहों में (कारक) दीपक अंलकार है ।[6]

---

(1) रामधर सतसई – दो० सं० – 06
(2) साहित्य दर्पण– विश्वनाथ– 10/47
(3) रामधर सतसई – दो० सं० – 293
(4) " " – दो० सं० – 31
(5) " " – दो० सं० – 86
(6) साहित्य दर्पण विश्वनाथ – 10/48

व्यतिरेक

धरनि अँत बहु दिन बस्यो, पुनि अधरनि चित चाल ।
तब पायो इहि चरन पद, बेधि सरीर प्रवाल ।।[1]

ग्रामीण बालाएँ पैर में भी मूँगी पहना करती हैं । इस तथ्य को आधार मानकर राजधर ने मूँगी (की लालिमा) उपमान को, अधरों - उपमेय - से तकारम्यहीन ठहराया है । क्योंकि मूँगी ने बाला के अधरों को जीतने के लिए बहुत दिनों तक धरनि अँत (समुद्र के किनारे) निवास किया, अपना शरीर वेधन कराया तब जाकर कहीं, बाला के चरणों में स्थान प्राप्त करना सम्भव हुआ ।

दान करन सौं करन नृप, करन सुने जग माँह ।
आँखिन देखे राजधर, हेम बरस दिनु ताँह ।।[2]

राजा कर्ण की दान वीरता को संसार ने कानों से सुनी, किन्तु राजधर (राजा उदोत सिंह) को स्वर्णदान का वर्षण करते हुए तो आँखों से देखा । यहाँ उदोत सिंह (उपमेय) का उपमान- राजा कर्ण-की अपेक्षा तकारम्य और उत्कर्ष व्यंजित किया गया है ।

परिकुरांकुर

(1) चरन विचार न कीजिए, सरनागत रघुवीर ।
ज्यों सौरी अरु गीध की, त्यों हरि हरि मम पीर ।।[3]

(2) सरनागत वत्सल सदा, बिरदु धाइ रघुराइ ।
दीन दुखी का करत हौ, दीन दयाल कहाइ ।।[4]

प्रथम दोहे में दीन भक्त द्वारा भगवान से दया-करने-हेतु अपनी पीर हरण के लिए भगवान को "हरि" कहा है एवं द्वितीय दोहे में भगवान से दया करने हेतु उन्हें "दीन-दयाल" कहा है । उपर्युक्त दोहों में क्रमशः "हरि" एवं "दीन-दयाल" विशेषण साभिप्राय प्रयुक्त हुये हैं और इन्हीं विशेषणों से अर्थ में चमत्कार उत्पन्न होता है, अतः इन दोहों में परिकुरांकुरालंकार है ।

---

(1) राजधर सतसई- दो० सं०- 546
(2) " " - दो० सं० -653
(3) " " - दो० सं० - 33
(4) " " - दो० सं० - 428

अर्थान्तरन्यास

मकरन्दु परे अचेत छिति, तऊ विलोचन लाज ।

होति बलिनि की अति बड़ी, आपु कही की लाज ॥[1]

यहाँ, पूर्वार्द्धगत अर्थ विशेष रूप अर्थ है, जिसका उत्तरार्द्धगत अर्थ से जो कि सामान्य रूप है, समर्थन किया जा रहा है, अतः अर्थान्तरन्यासालंकार है ।

## 2 - विरोधगर्भ - अलंकार

इस वर्ग में 12 अलंकार - विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, सम, विचित्र, अधिक, अन्योन्य, विशेष, व्याघात, अतिशयोक्ति । कार्य-कारण पौर्वापर्य्य, असंगति, और विषम - रखे गये हैं ।

विरोध गर्भ अलंकारों का मूलाधार पारस्परिक विरोधात्मकता है । परन्तु विरोध मूलक होते हुए भी सम अलंकार को इस वर्ग में स्थान दिया गया है । रुय्यक का इस बारे में स्पष्ट कथन है कि विषम अलंकार का वैधर्म्य सम में रहता है, इसलिए उसे वर्गीकरण में रखना उचित है ।[2]

इसके अतिरिक्त रुय्यक ने अतिशयोक्ति को सादृश्यगर्भ तथा विरोधगर्भ अलंकारों के वर्ग दो स्थानों पर रखा है । पहले वर्ग में परिगणित अतिशयोक्ति को अध्यवसाय मूलक माना है ।[3] आगे चलकर दूसरा भेद लक्षण विरोधगर्भवर्ती वर्ग में दिया है ।

पहले लक्षण की व्याख्या में कार्यकारणपौर्वापर्यविपर्यय नामक पाँचवे भेद की बात भी रुय्यक ने कही है और दूसरे लक्षण की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि इस काल साम्य निबंधन तथा काल विपर्यय निबन्धन से कार्यकारण का स्थापत्य अतिशयोक्ति में होता है ।

---

(1) रामचर सतसई- दो० सं० - 464

(2) अलंकार सर्वस्वम् - रुय्यक - पृ० - 167

(3) " " - " - पृ० - 83, 163

इससे स्पष्ट है कि रुय्यक से भी अतिशयोक्ति के वर्गीकरण की समस्या का समाधान न हो पाया और उन्होंने उसे दो वर्गों में रखा। डा० ओम प्रकाश शास्त्री के अनुसार " उचित यही होता कि सादृश्य गर्भ वर्ग में ही इस अंलकार को रखा जाता क्यों कि अध्यवसाय की मूल स्थिति इसमें रहती है। विरोध की स्थिति इसमें रहती है। विरोध की स्थिति यहाँ रहते हुए भी परिहृत हो जाती है "।[1]

अतः प्रस्तुत प्रबन्ध में अतिशयोक्ति को सादृश्य गर्भ के अन्तर्गत ही रख दिया है।

<u>विरोधाभास</u>

जगत प्रकट नचित सदा, सदा रहत आराम ।
काम जारि तदपि करत, सबके पूरन काम ।।[2]

भगवान शंकर द्वारा काम (कामदेव) को जलाकर भी सब (भक्तों) के काम (कामनायें) पूर्ण करने में वस्तुतः, विरोध न होने पर भी विरोध का आभास होता है, अतः यहाँ यमक के चमत्कार से विरोधाभास अंलकार है।

<u>विभावना.</u>

<u>प्रथम विभावना</u>

(1) नगर नगर ही रहति है, तिय के मुख की जोति ।
बिनु कातिक बिनु ही अमा, दीप मालिका होति ।।[3]

(2) बरछी सी तरछी चितै, चलति दृग की कोर ।
घाव कहूँ दीसे नहीं, घायल मरत मरोर ।।[4]

प्रथम दोहे में बिना कार्तिक एवं अमावस्या (कारण के अभाव में) के ही कार्य - दीपमालिका - का होना एवं द्वितीय दोहे में बिना घाव (कारण के अभाव में) के (नायक का) घायल होना एवं मरोड़ कर मरना कार्य सम्पन्न होने की वर्णना होने से प्रथम विभावना है।

---

(1) भारतीय काव्य शास्त्र - सं० डा० कृष्ण बल - पृ० - 129
(2) रामधर सतसई - दो० सं० - 220
(3) " " - दो० सं० - 416
(4) " " - दो० सं० - 195

<u>द्वितीय विभावना</u>

> बहु अरि दल दल बदल किय, किय बल संगर और ।
> <u>बिपक मद हारे दकनि</u>, कुल किय छिति बहु ओर ।।[1]

(महाराव उदोत सिंह के) मान "दकनि" (थोड़ा सा धक्का लगाने) से जहाँ (शत्रुओं) का दल (ध्वस्त हो जाना) जाना। यहाँ अपूर्ण कारण से सम्पूर्ण कार्य की वर्णना होने से द्वितीय विभावना है।

<u>तृतीय विभावना</u>

> बंधु मरन सीता हरन, ताकी कछु न पीर ।
> काजु विभीषन राज को, सोचत फिर रघुबीर ।।[2]

यद्यपि बन्धु (लक्ष्मण) मूर्छित हैं, (पत्नी) सीता का अपहरण हो गया है, तदपि श्रीराम चन्द्र जी विभीषण के कार्य हेतु (उपाय) सोच रहे हैं। यहाँ बाधा होने पर भी कार्य सम्पन्न हो रहा है, अतः तृतीय विभावना है।

<u>पंचम विभावना</u>

> <u>तनु अति पीडित होत है, लगि सुगंध की सौह</u> ।
> अतन ताप तबही मिटै, मिलु धन्वन्तरि होइ ।।[3]

सुगन्धित पवन से तन का पीडित होना, विरुद्ध कारण से कार्य सम्पन्न होने की वर्णना है अतः पंचम विभावना सिद्ध होती है।

**<u>अन्योक्ति</u>**

(1) रत्नाकर वर नाम लहि, सिंधु अगाध गंभीर ।
प्यासी जाति न पथिक की, आये ते दुख तीर ।।[4]

(2) आशय वाम्पी कलनि की, बहु जल पीय निवाहु ।
आये ते अति समुद्र ढिंग, पानी हू की प्याहु ।।[5]

इन दोनों दोहों में, "समुद्र के पास आने पर भी पथिक की तृषा अतृप्त रहने की वर्णना है।" यह अप्रस्तुत है, जिसके द्वारा प्रस्तुत अर्थ - "किसी कंजूस राजा के पास जाकर याचक का निराश होने" - का बोध हो जाता है अतः अन्योक्ति अंलकार है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 09
(2) " " - " " - 465
(3) " " - " " - 25
(4) " " - " " - 347
(5) " " - " " - 348

**असंगति**

मृगनयनि की गति धरै, मैं जानति हौं बीर ।
नख - छत लागे तौ हिये, सौतनि के हिय पीर ।।[1]

नायिका सखी से कहती है कि "नख छत" तो उसके (नायिका के) वक्ष पर लगे हैं, किन्तु सपत्नी के "हिय" में पीर हो रही है । नायिका के वक्ष पर नखक्षत लगना और सपत्नी के "हिय" में पीरे होने से असंगति अलंकार है ।

3 - **शृंखला बंधोपचित अलंकार**

इस वर्ग में कारणमाला, एकावली, मालादीपक, और सार नामक चार अलंकार रखे गये हैं । इन अलंकारों में एक पद या वाक्य दूसरे पद या वाक्य से शृंखला की भाँति संबंधित रहता है । कारण और विशेषण भाव भी शृंखला में रहते हैं । पूर्वापर की शृंखला बनने से ही इन अलंकारों में चमत्कार आता है । इस वर्ग के उदाहरण राजधर सतसई में नहीं हैं ।

4- **न्याय मूलक अलंकार**

इस वर्ग में 17 अलंकारों को रखा गया है । सभी अलंकार लोक तथा शास्त्र में प्रचलित न्याय के विभिन्न रूपों पर आधृत हैं ।

(क) तर्क न्याय मूलक - काव्य लिंग और अनुमान दो अलंकार इस अवान्तर भेद में रखे गये हैं ।

(ख) वाक्य न्याय मूलक या काव्य न्याय मूलक - यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति, अर्थापत्ति, विकल्प, परिसंख्या, समुच्चय और समाधि - ये अलंकार इस भेद में रखे गये हैं ।

(ग) लोक न्याय मूलक - प्रत्यनीक, प्रतीप, मीलित, सामान्य, तद्गुण, अतद्गुण और उत्तर - ये सात अलंकार इस वर्ग में लोकानुभव से प्रचलित न्यायों के आधार पर रखे गये हैं ।

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 112

**काव्यलिंग**

नैननि में लाली अधिक, ताकौ बरनतु हेतु ।
तिय हिय कौ अनुराग यौं, प्रकट दिखाई देतु ।।[1]

यहाँ कवि ने "नायिका के नयनों में लालिमा है" इस कथन का समर्थन "तिय हिय कौ अतुल अनुराग । अनुराग का रंग लाल होता है । यौं प्रकट दिखाई देतु" इस ज्ञापक हेतु द्वारा किया है, अतः काव्यलिंग अलंकार है ।

**परिवृत्त**

श्री हरि कौं श्री राधिका, हेरत मनु हरि लेत ।
फिर वाही में बसि सदा, घरी-घरी सुख देत ।।[2]

इस दोहे में श्री राधिका द्वारा हरि का मन हर लेना, एवं श्री हरि को "घरी-घरी सुख देना", अतः परस्पर विनिमय का अभिप्राय होने से परिवृत्तालंकार है ।

**परिसंख्या**

(1) ढूँढि फिर्यौ बहु जगत पर, कियौ न कहूँ निवासु ।
रायबहर सुख नैन बिच, कीनौ सील सुवासु ।।[3]

(2) कौ ये जानत भेद, नाम लिहारे दृगनि के ।
तिनही के मन भेद, छुवै जिनकौ निकसत सदा ।।[4]

प्रथम दोहे में कवि ने "रायबहर" (राजा उदोत सिंह) के नयनों में ही शील का निवास बताया है एवं सर्वत्र इसका निराकरण किया है । द्वितीय सोरठा में, "भेद मात्र उन्हीं के मन में है जिनको छूकर नायक के नैन निकल जाते हैं" अर्थात् वही नायिकाएँ दुःखी हैं जिनपर नायक की (मोहनी) दृष्टि पड़ गई । अतः अन्य स्त्रियों का भेद-रहित होना प्रतीयमान है ।

अतः इन दोनों - दोहा एवं सोरठा- में परिसंख्यालंकार है ।

---

(1) रायबहर सतसई - दो० सं० - 326
(2) " " - " " -
(3) " " - " " - 614
(4) " " - सो० सं० - 16

प्रतीप

ऐसी पावत हंस नहि, तेरी चलनि चितौंहि ।
मदगति छाड़ी कुंजरनि, पदगति लटगति देखि ।।[1]

नायिका - उपमेय - (की चाल) की अपेक्षा हंस एवं कुंजर-उपमानों -(कीचाल) की हीनता प्रदर्शित की गई है, अतः तृतीय प्रतीप है ।

वृथा होतु दीनो दियो, तो मुख की कन चोति ।
घर बाहिर पैठो यहाँ, सहज उजारी होति ।।[2]

यहाँ उपमान- दीपक - को नायिका के मुख-उपमेय - की तुलना में व्यर्थ कहा गया है । अतः पंचम प्रतीप है ।

मीलित

हिमकर तुषारस धवल गृह, सित सारी तन सन ।
उदित सरद की चाँद मैं, ढूँढ़ति देह मिलै न ।।[3]

यहाँ, "हिमकर तुषारस धवल गृह", "सित सारी" और "सरद की चाँद" में नायिका के देह के रंग वैसा ही होने से इस प्रकार मिल गया है कि दिखाई नहीं पड़ता है, अतः मीलित अलंकार है ।

तद्गुण

अति पावन, तन सेवन है, छवि के करत उदोत ।
निरखि जरी अंग सन, नैन जरी होत ।।[4]

नायिकाओं के उज्ज्वल नेत्रों को देखकर नायक (कवि) के नेत्र भी औज्ज्वल्य ग्रहण कर लेते हैं, अतः तद्गुण अलंकार हुआ ।

## 5 - गूढ़ार्थ प्रतीति मूलक अलंकार

तीन अलंकार - सूक्ष्म व्याजोक्ति और वक्रोक्ति - गूढ़ार्थ प्रतीति मूलक माने गए हैं । इनका संबंध गूढ़ार्थ से है । बिना गूढ़ार्थ इन अलंकारों में चमत्कृति उत्पन्न नहीं होती है ।

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं०- 398
(2) " " - " " - 114
(3) " " - " " - 631
(4) " " - " " - 235

**सूक्ष्म**[1]

छुन फेरहि, <u>फेरति करनि, कुच</u> छवि लखत सुभाहि ।
देखी अंग अंग पसुरई, रही चिराचत माँह ।।[2]

नायिका के द्वारा "कुचों" पर हाथ फेरना (इंगित) से उसके (नायिका के) द्वारा "नायक को काम-निमंत्रण" (सूक्ष्म बुद्धि द्वारा संकेत) का प्रकाशन हो रहा है । अतः सूक्ष्मालंकार है ।

### अस्वीकृत अलंकार

रूय्यक ने अलंकारों का वर्गीकरण अधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न किया, परन्तु उसमें पूर्णता न आने के कारण उन्होंने भी कुछ अलंकारों को छोड़ दिया। जैसे - स्वभावोक्ति, भाविक, उदात्त इत्यादि ।

**उदात्त**[3]

करतु सिंगारनि बैठि निशि, दिग्बर बामा मानि ।
राज्यधर जस रावरो, दच्छिन नच्छिन जानि ।।[4]

राज्यधर (राजा उदोत सिंह) के यश के अनुकूल काम जानकर, दिशाएँ रूपी वधुएँ दिन-रात श्रृंगार करके बैठी हैं अर्थात् राजा उदोत सिंह दक्षिण नायक हैं एवं दिशाएँ रूपी वधुएँ वासकसज्जा नायिकाएँ हैं। व्यंग्य यह है कि राजा उदोत सिंह का विमल यश दसों-दिशाओं में फैल रहा है ।

यहाँ राजा उदोत सिंह की विभूति(यश) को लोकोत्तर वर्णना है, अतः उदात्तालंकार सिद्ध हो रहा है ।

---

(1) साहित्य - दर्पण - विश्वनाथ - 10/91
(2) राज्यधर सतसई - दो0 सं0 - 124
(3) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 10/94
(4) राज्यधर सतसई - दो0 सं0 - 655

सम[1]

(1) लागु लालची रूप है, ते पुनि रूप अपार ।
बिना जतन जोरी सरस, करि दीनी करतार ।।[2]

(2) हर छबु हरि की रूप नहि, तौकौं उहि अनुहार ।
मोहन जावै मोहिनी, रची बिरंचि बिचार ।।[3]

प्रथम एवं द्वितीय दोहों में क्रमशः नायक और नायिका तथा मोहन और मोहिनी जोड़ी ।परस्पर संबंध सराहनीय है, अतः इनमें "समालंकार" है ।

उदाहरण

और तकनि उहि ढिंग गये, ऐसी परति लखाइ ।
जैसे दीपति दीप की, धौंसि माहि दरसाइ ।।[4]

दो भिन्न धर्मा वाक्यों में "ऐसी" और "जैसे" वाचक शब्दों के माध्यम से समता का प्रदर्शन होने से उदाहरणालंकार है ।

उभयालंकार

जो शब्द और अर्थ दोनों पर आश्रित होते हैं, वे उभयालंकार कहलाते हैं ।

संसृष्टि

संसृष्टि वह अलंकार है, जिसे परस्पर निरपेक्ष अलंकारों की "तिलतण्डुलवत्" एकत्र अवस्थिति कहा करते हैं ।[5]

यह संसृष्टि तीन प्रकार की हो सकती है -

(1) शब्दालंकार संसृष्टि - जिसमें कई शब्दालंकारों का मेल होता है ।
(2) अर्थालंकार संसृष्टि - जिसमें कई अर्थालंकारों का मेल होता है ।
(3) शब्दार्थालंकार संसृष्टि - जिसमें शब्द एवं अर्थ दोनों प्रकार के अलंकार मिले रहते हैं ।

---

(1) काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट - 10/125
(2) राधावर सतसई - दो० सं० - 161
(3) " " - " - 530
(4) " " - " - 408
(5) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 10/97

**शब्दालंकार संसृष्टि**

निरखि बाल मै ताप तन, छवि के उठत तरंग ।
आइ गये घनश्याम पै, बरसौहैं सब अंग ।।[1]

यहाँ "घनश्याम" एवं "बरसौहैं" पद श्लिष्ट है । "मै ताप तन" में वर्णों की दो से अधिक पुनरावृत्ति है । अतः श्लेष एवं वृत्यनुप्रास की संसृष्टि स्पष्ट देखी जा सकती है ।

**शब्दार्थालंकार संसृष्टि**

नख सिख से ऐसी बनी, ऐसी देखी मैं न ।
साँचे साचि मैन है, मानों ढारी मैन ।।[2]

यहाँ "साँचे-साचि" में छेकानुप्रास, "मैन" शब्द के प्रयोग में यमक एवं नख-सिख (उपमेय) में "कामदेव के द्वारा मोम के साँचे में ढालकर मूर्ति बना देने की संभावना व्यक्त होने से वस्तु-उत्प्रेक्षा है । अतः, शब्दालंकार छेकानुप्रास एवं यमक - तथा अर्थालंकार - वस्तु- उत्प्रेक्षा - की संसृष्टि है ।

## संकर

"जब दो या दो से अधिक अलंकार एक दूसरे से ऐसे मिले हों कि उनकी पृथकता न जान पड़ती हो, तब संकर होता है । ये अलंकार "नीर-क्षीरवत्" मिले रहते हैं । इनके तीन प्रकार होते हैं ।
(1) अंगांगी भाव (2) सन्देह संकर (3) एकवाचकानुप्रवेश संकर ।"[3]

(1) **अंगांगीभाव संकर**

जहाँ दो या अधिक अलंकारों का इतरानपेक्ष भाव से स्वतन्त्र ही निष्पन्न नहीं होता तथा परस्पर अनुग्राह्यानुग्राहक भाव होता है, वह अंगांगीभाव संकर होता है ।[4]

---

(1) रामचरित सतसई - दो० सं० - 67
(2) " " - " - 338
(3) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 10/98
(4) काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट - (सूत्र) 600

नहि लजवानी भ्रँवर-मनु, लख सुखमा को मूल ।
ललित- लता सी लहलही, सीसफूल छवि फूल ।।[1]

नायिका को ललित लता के समान लहलही एवं उसके शीर्ष फूल को फूल [समान] कहने से उपमा है । "भ्रँवर-मन" में रूपक है । भ्रँवर-मन [रूपक] की सार्थकता द्वितीय पंक्ति में वर्णित उपमा पर निर्भर है अर्थात् रूपक, उपमा का अंग है । इस प्रकार इस दोहे में अंगांगीभाव संकर है ।

(2) <u>सन्देह संकर</u>

जहाँ एक ही स्थल पर एक से अधिक अलंकारों के होने का संदेह हो वहाँ सन्देह संकर होता है ।

सीसफूल सूरज मनौ, मार्‌यौ राहु पछारि ।
चोटी मिस सिहि कर लसत, बिनु म्यान तरवारि ।।[2]

"सीसफूल -सूरज" में रूपक है । "मनौ" वाचक शब्द से एवं द्वितीय पंक्ति में हेतु बतलाये जाने से हेतूत्प्रेक्षा प्रतीत होता है, किन्तु द्वितीय पंक्ति में कैतवापह्नुति अलंकार भी प्रदर्शित होता है । अतः सन्देह संकर है ।

(3) <u>एकवाचकानुप्रवेश संकर</u>

जहाँ एक वाक्यांश अथवा शब्द समूह में एक से अधिक अलंकार होते हैं, वहाँ एकवाचकानुप्रवेश होता है । अर्थात् एक ही पद में शब्दालंकार और अर्थालंकार या दो शब्दालंकार अथवा दो अर्थालंकार होने से एक वाचकानुप्रवेश संकर होता है ।

घन - छवि देखत मोर मनु, प्रमुदित भौ तब भाँति ।
बरसौहैं पुरवा अबक, मोती सन -अग पाँति ।।[3]

एक ही पद "मोर मनु" में रूपक एवं छेकानुप्रास होने से एक वाचकानुप्रवेश संकर है ।

---

(1) रामधर सतसई - दो० सं० - 53
(2) " " - " " - 226
(3) " " - " " - 194

## निष्कर्ष -

(1) तद्युगीन (रीतिकालीन) अलंकरण की प्रवृत्ति के अनुरूप ही राजधर का झुकाव अलंकारों की ओर है।

(2) यतः, राजधर सतसई लक्षण ग्रन्थ नहीं है, अतः दोहों का क्रम अलंकारों के क्रमानुसार नहीं है।

(3) कवि ने किसी अलंकार ग्रन्थ विशेष का अनुकरण नहीं किया है।

(4) शब्द और अर्थ संबंधी सभी अलंकारों के उदाहरण भी प्रयुक्त करने का प्रयत्न नहीं किया गया है।

(5) सहज रूप से ही अलंकार प्रयुक्त हुए हैं, पाण्डित्य प्रदर्शन का अभाव है।

(6) भाव संप्रेषण की दृष्टि से ही अलंकार प्रयुक्त हुए हैं, अतः रसोत्कर्ष में सहायक सिद्ध हुए हैं।

00000
000000000
00000

# शब्द शक्ति

वाक्य में प्रयुक्त सार्थक शब्द के अर्थ बोधक व्यापार के मूल कारण को शब्द की शक्ति कहते हैं ।[1]

इसके तीन भेद हैं - (1) अभिधा (2) लक्षणा (3) व्यंजना ।[2] कुछ मीमांसक शब्द शक्ति का एक अन्य भेद - "तात्पर्य वृत्ति" भी मानते हैं ।[3]

## अभिधा

इन त्रिविध शब्द शक्तियों में "अभिधा शक्ति" वह शक्ति है, जिससे संकेतित (प्रसिद्ध) अर्थ का अवबोध हुआ करता है । अतः, इसे शब्द की प्रथम (मुख्य) शक्ति कहा करते हैं ।[4]

### काव्य में अभिधा का महत्व

अभिधा शब्द की प्रथम और आधारभूत शक्ति है तथा यही मुख्यार्थ का बोध देती है । काव्य में यद्यपि लक्षणा और व्यंजना को अभिधा की अपेक्षा श्रेष्ठतर माना गया है, पर ये दोनों शक्तियाँ भी अभिधा पर आश्रित हैं । लक्षणा में मुख्यार्थ में बाधा उत्पन्न होने पर भी लक्ष्यार्थ का मुख्यार्थ से संबंध अवश्य रहता है तथा व्यंजना का तो आधार विशुद्ध अभिधा ही है ।

काव्य तथा अन्य शब्द शक्तियों के लिए अभिधा की अनिवार्यता को ही लक्ष्य कर महाकवि देव ने अभिधा को मुख्यता देते हुए कहा है -

"अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षना लीन ।
अधम व्यंजना रस कुटिल, उलटी कहत नवीन ।।"

राजधर सतसई में व्यंजना एवं लक्षणा की अपेक्षा अभिधा को ही प्रयुक्त किया गया है। संभवतः, राजधर जी भी महाकवि देव के उपर्युक्त मत से प्रभावित रहे होंगे ।

---

(1) भारतीय काव्य शास्त्र - सं० डा० कृष्ण लाल - पृ० 197
(2) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 2/3
(3) काव्य प्रकाश - आ० मम्मट - 1/6
(4) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 2/4

## राजधर सतसई में अभिधा

राजधर ने अधिकांश दोहों में अभिधा को प्रयुक्त किया है, जिनमें सर्व-स्पर्शी भाव देखे जा सकते हैं।

अभिधा शब्द शक्ति मुख्यार्थ तक ही सीमित है, चाहे कोई वाचक शब्द एकार्थक हो अथवा अनेकार्थक।

(1) राख्यौ हिये लगाइ कै, उर बाहिनि के चोरु ।
वसु छाड्यौ भावै नहीं, पायौ माखनु चोरु ।।[1]

(2) तो गति अति अद्भुत भई, दई कही नहिं जाइ ।
ज्यौं बिनु देखे सनमुखई, देखत निकट डराइ ।।[2]

उपर्युक्त दोहों में एकार्थक शब्दों को प्रयोग किया गया है, जिनमें मुख्यार्थ नियत है, अतः उनके विषय में किसी प्रकार के सन्देह का अवकाश नहीं है। किन्तु, अनेकार्थक शब्दों के विषय में सन्देह हो सकता है, कि कवि को केवल एक अर्थ अभीष्ट है अथवा दोनों अभीष्ट हैं।अनेकार्थक शब्द दो प्रकार से प्रयुक्त होते हैं - (क) श्लिष्ट और (ख) अश्लिष्ट।

(क) श्लेष अलंकार के प्रसंग में कवि को दोनों अर्थ अभीष्ट रहते हैं, अतः दोनों ही अर्थ वाच्य कहलाते हैं और दोनों ही अभिधा शक्ति से ज्ञात माने जाते हैं।
जैसे -

सलोनीके सब लता है, लता लहलहे अंग ।
हेरत हरत हियराइ मन, चोखनु चखु इक रंग ।।[3]

यहाँ "सलोनीके" एवं "चोखनु चखु" सभंग पद श्लिष्ट है।

यहाँ कवि को दोनों ही अर्थ - प्रकृति पक्ष में एवं नायिका के पक्ष में - अभीष्ट हैं, अतः दोनों अर्थ वाच्यार्थ हैं तथा अभिधा द्वारा ज्ञात हो जाते हैं।

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 78
(2) " " - दो० सं० - 240
(3) " " - दो० सं० - 143

(ख) अश्लिष्ट स्थलों में जहाँ अनेकार्थक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, वहाँ अभीष्ट अर्थ केवल एक ही रहता है। कौन सा अर्थ अभीष्ट है, इसके लिए चौदह नियामक आधार प्रस्तुत किये गये हैं -

" संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता, अर्थः प्रकरणं लिंगं शब्दस्यान्यस्य सन्निधि : ।
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः, शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतव : ।।

(वाक्य प्रदीप)

(1) बड़े हतो हरि भाँति हरि, तसकरता परवीन ।
अधिकी कीनी राधिका, हेरत मनु हरिलीन ।।[1]

यहाँ अनेकार्थक शब्द "हरि" के अनेक अर्थ - यम, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, सिंह विष्णु, कृष्ण आदि हैं।

उपर्युक्त दोहे में प्रथम हरि (भाँति), तृतीय हरि (लीन) में क्रमशः "भाँति" एवं "लीन" शब्दों की सन्निधि के कारण इनके अनेक अर्थ क्रमशः "प्रत्येक" एवं "हरण" (करना) है। द्वितीय "हरि" शब्द का अर्थ "राधिका" के साहचर्य के कारण "कृष्ण" हुआ।

(2) रस बस करि राख्यौ रसिकु, भनी रसीली बाम ।
भूलि न भावति और तिय, निसु दिनु अति अभिराम ।।[2]

"रस" शब्द अनेकार्थक है, जिसके अनेक अर्थ - जल, सार, वीर्य, द्रव, स्वाद, विष, धातु, मधुर, (षट) रस पारद, परमात्मा, काव्य के श्रृंगारादि नवरस, सुरा, शोणित आदि - हैं। यहाँ "रस" शब्द का अर्थ "रसिकु" की सन्निधि से रतिभाव (प्रेम) ही हो सकता है।

(3) उगलित से पियु कंठ तें, धरि अंबनु अधरानि ।
जावकु पावकु भाल द्रग, भए लाल हरवानि ।।[3]

"लाल" अनेकार्थक शब्द है, जिसके अर्थ - लाल रंग विशेष, पुत्र एवं पति - हैं, किन्तु खण्डिता नायिका के प्रकरण में इसका अर्थ "पति" (नायक) ही सिद्ध होता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) राजर्षर सतसई - दो0 सं0 - 494
(2) " " - " - 354
(3) " " - " - 358

## लक्षणा

मुख्य अर्थ का बाध होने पर और उस (मुख्यार्थ) के साथ संबंध (योग) होने पर प्रसिद्धि (रूढ़ि) से या प्रयोजन से जिस वृत्ति के द्वारा अन्य अर्थ की प्रतीति होती है, वह (शब्द में) कल्पित (आरोपित) वृत्ति या व्यापार (क्रिया) लक्षणा है ।[1]

इस प्रकार लक्षणा शक्ति के दो प्रमुख भेद हैं -

(1) रूढ़ा और (2) प्रयोजनवती ।

1- <u>रूढ़ा लक्षणा</u> - जहाँ मुख्यार्थ रूढ़ि के कारण लक्ष्यार्थ का बोध कराए, वहाँ रूढ़ा लक्षणा मानी जाती है । रूढ़ा लक्षणा के अन्तर्गत सभी भाषाओं के मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ आ जाते हैं ।[2]

(अ) कटि तट बाजति किंकनी, <u>कान सुनत दै कान</u> ।[3]

(ब) अपनी करि हरि सौ लयौ, मैं हरि हाथ बिकान ।[4]

प्रथम दोहे में (वाच्यार्थ) - "कान देकर सुनना," लक्ष्यार्थ - "ध्यान देकर सुनना" के लिए तथा द्वितीय दोहे में वाच्यार्थ - "हाथ बिकना", लक्ष्यार्थ- "पूर्ण समर्पित होना" के लिए रूढ़ हो गया है। अतः इन दोनों दोहों में "रूढ़ा लक्षणा" है ।

इसके अतिरिक्त रूढ़ा लक्षणा के उदाहरण स्वरूप वे शब्द भी लिए जाते हैं, जो अपना वाच्यार्थ छोड़कर अब केवल एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण रूढ़ बन गये हैं। वस्तुतः ऐसे शब्द अब अभिधा के क्षेत्र में आ गए हैं । इसी आधार पर रूढ़ा लक्षणा "अभिधापुच्छभूता" कहलाती है ।

रीतिकाल में शब्द - "लाल" अपना वाच्यार्थ - मुख पुत्र - छोड़कर नायक (लक्ष्यार्थ) में प्रयुक्त हुआ है[5] तथा "बीर" शब्द अपना वाच्यार्थ (बहादुर) छोड़कर सखी (लक्ष्यार्थ) के लिए रूढ़ हो गया है ।[6]

---

(1) काव्य प्रकाश - आ० मम्मट - 2/9

(2) एक रूप अर्थ से बँध जाने के कारण रूढ़ा लक्षणा मानी जाती है परन्तु ये सदैव विशेष अर्थ की व्यंजना के उद्देश्य से ही प्रयुक्त होते हैं, अतः उनमें प्रयोजनवती लक्षणा भी कही जा सकती है ।

(3) राजधर सतसई - दो० सं० - 18 (4) राजधर सतसई - दो० सं०- 333

(5) राजधर सतसई - दो० सं० - 76, 77, 87, 88, 115 इत्यादि ।

(6) राजधर सतसई- दो० सं० - 111, 112, 278, 342 इत्यादि ।

प्रयोजनवती लक्षणा होती है ।

मुख्यार्थ का परित्याग करने एवं न करने के आधार पर लक्षणा के दो उपभेद हैं - ।1। उपादान लक्षणा ।2। लक्षण- लक्षणा ।

1- उपादान लक्षणा - जिस शक्ति के द्वारा किसी शब्द का मुख्यार्थ, किसी वाक्यार्थ में, अपने स्वरूप का परित्याग किए बिना भी अपने अन्वय अर्थात् अन्य पदार्थ के साथ युक्ति-युक्त संबंध की सिद्धि के लिए, अपने से भिन्न किसी अर्थ का आक्षेप अथवा प्रत्यायन किया करता है, वह शक्ति "उपादान लक्षणा" कही जाया करती है ।[1] अतः इसे "अजहत्स्वार्था" भी कहते हैं ।

2- लक्षण - लक्षणा - जिस शक्ति के द्वारा किसी शब्द का मुख्यार्थ, किसी वाक्यार्थ में अपने स्वरूप का इसलिए सर्वथा परित्याग कर दिया करता है, जिससे वहां उससे भिन्न ।किन्तु किसी न किसी संबंध से सम्बद्ध । किसी अर्थ का युक्ति युक्त समन्वय स्थापित हो जाय और ऐसा करते हुए वह ।मुख्यार्थ। एक मात्र लक्ष्यार्थ का उपलक्षण बन जाया करता है, वह शब्द शक्ति "लक्षण - लक्षणा" कही जाया करती है ।[2] अतः इसको "जहत्स्वार्था" कहते हैं ।

उपर्युक्त लक्षणाओं के भी "आरोप" और" अध्यवसान" के कारण दो-दो भेद हैं । लक्ष्य- यहां"उपर्युक्त लक्षणाओं" का अभिप्राय - चारों प्रकार की लक्षणाओं से है ।

।3। सारोपा लक्षणा - वह लक्षणा "सारोपा" लक्षणा कही जाया करती है, जिसमें "विषय ।अर्थात् आरोप विषय- जिस पर आरोप किया जाय । अपने स्वरूप में विराजमान रहते हुए, अपने से भिन्न अर्थात् विषयी। अर्थात् आरोप्यमाण - जिसका आरोप किया जाय, उस । के साथ एक रूप ~~अभिन्न~~ अभिन्न प्रतीत हुआ करता है ।[3]

---

।1। साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 2/6
।2। " " - " - 2/7
।3। " " - " - 2/8

।ब। <u>साध्यवसाना लक्षणा</u> - वह लक्षणा, जिसमें "विषयी" के द्वारा आच्छन्न स्वरूप "विषय" के अभेद का अनुभव हुआ करता है ।[1]

सादृश्य एवं सादृश्येतर संबंध - आधार- आधेय, आश्रय - आश्रित, कारण-कार्य, सामीप्य, साहचर्य, तात्कर्म्य आदि - के आधार पर लक्षणा के दो उपभेद और किए गये हैं - ।1। गौणी ।2। शुद्धा

।1। <u>गौणी</u> -

गौणी का तात्पर्य ।उपर्युक्त अष्टविध लक्षणाओं में। सादृश्य संबंध का ही प्रयोजक होना ।[2]

।2। <u>शुद्धा</u> -

शुद्धा का अभिप्राय । उपर्युक्त अष्टविध लक्षणा में । सादृश्य सम संबंध से भिन्न प्रकार के ही संबंध - कार्य -कारणभावादि - का पाया जाना है ।[3]

राजधर सतसई में यत्र-तत्र लक्षणा को प्रयुक्त किया गया है -

।1। <u>गौणी- लक्षण - सारोपा लक्षणा</u> -

<u>दृग तपसी</u> पूजत रहत, करि अंसुनि कौ अंबु ।[4]

।अ। दृग और तपसी में सादृश्य संबंध स्थापित किए जाने से गौणी लक्षणा है ।

।ब। दृग को तपसी बना देने से ही दृग के द्वारा "पूजन" संभव हो सका । अतः दृग का अर्थ छूट गया । अतः लक्षण-लक्षणा है ।

।स। उपमेय -दृग एवं उपमान- तपसी दोनों का कथन होने से सारोपा है ।

।द। "दृग" को "तपसी" कहने का प्रयोजन प्रेम को एक साधना का रूप देना है । अतः प्रयोजनवती लक्षणा है ।

इस प्रकार "गौणी -लक्षण - सारोपा - प्रयोजनवती लक्षणा" सिद्ध हुई ।

---

।1। साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 2/8
।2। " " " - 2/9
।3। " " " - 2/9
।4। राजधर सतसई - दो० सं० - 152

(2) गौणी - लक्षण - साध्यवसाना प्रयोजनवती लक्षणा -

निरखि कढ़ी चंपक कली, कंपत अलि सब गात ।[1]

(भ्रमर का निकली हुई चंपक की कली को देखकर, समस्त गात कंपायमान है ।)

(अ) यहाँ, नायक और भ्रमर तथा नायिका और चंपक कली में सादृश्य संबंध स्थापित किए जाने के कारण गौणी है ।

(ब) भ्रमर और चम्पक कली का अपना अर्थ छूट जाने से, लक्षण लक्षणा है ।

(स) केवल उपमानों का कथन होने से साध्यवसाना है ।

(द) नायक को भ्रमर कहने का प्रयोजन - उसका रस लोलुप होना, किन्तु नायिका को कली कहने का प्रयोजन उसका मुग्धा होना -बतलाना है ।

इस प्रकार यहाँ "गौणी - लक्षण - साध्यवसाना - प्रयोजनवती लक्षणा" की सिद्धि होती है ।

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 559

## व्यंजना

व्यंजना शक्ति शब्द और अर्थ आदि की वह शक्ति है, जो अभिधा आदि शक्तियों के शान्त हो जाने पर । अपने कार्य कर चुकने के बाद क्षीण सामर्थ्य हो जाने पर । एक ऐसे अर्थ का अवबोधन कराया करती है, जो । वाच्य, लक्ष्यादिक अर्थों से । सर्वथा एक विलक्षण प्रकार का अर्थ हुआ करता है ।[1]

इस प्रकार व्यंजना के दो भेद हुए -

1-शाब्दी व्यंजना - जहाँ व्यंग्यार्थ किसी विशेष शब्द के प्रयोग पर ही निर्भर रहता है, वहाँ शाब्दी व्यंजना होती है । यह केवल अनेकार्थी शब्दों में होती है ।

2- आर्थी व्यंजना - जहाँ व्यंजना किसी शब्द विशेष पर अवलम्बित न हो अर्थात् उसका पर्याय रख देने पर भी बनी रहे ।

शाब्दी व्यंजना के भी दो उपभेद है -

।अ। अभिधा मूलक व्यंजना ।ब। लक्षणा मूलक व्यंजना [2]

### शाब्दी व्यंजना

।अ। अभिधा मूलक व्यंजना - शब्द की वह शक्ति है जो कि संयोगादि सब अभिधानियामकों में से किसी के द्वारा कहीं अनेकार्थी शब्द के किसी एक प्राकरणिक अर्थ में नियन्त्रित कर दिये जाने पर एक ऐसे अर्थ को उपस्थित करती है, जो कि वाच्यार्थ से सर्वथा विलक्षण हुआ करता है ।[3]

निरखि बात मैं ताप तनु, छवि के उठत तरंग ।
आई गए घनस्याम ह्वै, वरसौहैं सब अंग ।।[4]

यहाँ प्रस्तुत प्रसंग "घनस्याम" अर्थात् मेघ का है, और "घनस्याम" का यहाँ अर्थ संयोगादि द्वारा निर्णीत भी है, किन्तु अभिधा मूला व्यंजना द्वारा "घनस्याम" का अर्थ "कृष्ण" भी प्रतीत होता है, जिससे "मेघ" और "कृष्ण" में उपमेय उपमान भाव भी व्यंजित हो जाता है ।

---

।1। साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 2/12
।2। " - " - 2/13
।3। " - - - 2/14
।4। राजधर ललाई - दो0 सं0 - 67

यहाँ यह ध्यातव्य है, कि श्लेष अलंकार में कवि को दोनों अर्थ वाच्यार्थ रूप में अभीष्ट होते हैं और वे दोनों ही प्रस्तुत होते हैं, किन्तु अभिधामूला व्यंजना में एक अर्थ प्रस्तुत होता है और अर्थ अप्रस्तुत । प्रस्तुत अर्थ वाच्य होता है और अप्रस्तुत अर्थ व्यंग्य ।

।ख। लक्षणामूला व्यंजना - लक्षणामूला व्यंजना वह है जिसके द्वारा प्रयोजन का प्रत्यायन करवाया जाता है, जिसकी दृष्टि से लाक्षणिक पद का प्रयोग हुआ करता है ।[1]

दूसरे शब्दों में जिसके द्वारा । वाच्यार्थ और । लक्ष्यार्थ के उपरान्त प्रयोजक रूप व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है, उसे लक्षणामूला व्यंजना कहते हैं -

आतु ताप तन तापियतु, ताके उपसम हेत ।
कुच महेस सिर सलल घट, दृग अंसुनि नित देत ।।[2]

द्वितीय पंक्ति में अंसुओं ।उपमेय। और सहस्र घट ।जल। -उपमान - में सादृश्य संबंध है, अतः गौणी लक्षणा है । "सहस्र घट ।जल। अंसुओं के बहाने ।वाच्यार्थ है । तथा उसका अतिरिक्त लक्ष्यार्थ है - " अत्यधिक अश्रुपात" । अतः उपादान लक्षणा है । प्रस्तुत - अश्रु और अप्रस्तुत - सहस्र घट ।जल। - का प्रयोग होने से सारोपा है । नायिका की "व्याधि" ।कामदशा। का अतिशय प्रदर्शन प्रयोजन है ।अतः गौणी - उपादान -सारोपा- प्रयोजनवती लक्षणा है ।

इस प्रकार ।नायिका के । दृगों द्वारा कुच महेश के सिर पर सहस्रों घट ।जल। अंसुओं के ब्याज से देना ।अभिषेक करना।" वाच्यार्थ है । लक्ष्यार्थ है - अत्यधिक अश्रुपात और व्यंग्यार्थ है - "विरह की काम दशा -"व्याधि" - का आधिक्य - जो कि लक्षणामूला व्यंजना द्वारा गम्य है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 2/15

।2। राजधर सतसई - दो० सं० - 24

## आर्थी व्यंजना

अर्थसंभवा अथवा आर्थी व्यंजना वह व्यंजना है, जो कि इन निम्नांकित कारणों से किसी अन्य ही अर्थ का प्रत्यायन कराया करती है -

(1) वक्तृवैशिष्ट्य (2) बोद्धव्य वैशिष्ट्य (3) वाक्य वैशिष्ट्य (4) अन्य संनिधि वैशिष्ट्य (5) वाच्य वैशिष्ट्य (6) प्रस्ताव वैशिष्ट्य (7) देश वैशिष्ट्य (8) काल ~~वैशिष्ट~~ वैशिष्ट्य (9) काकु वैशिष्ट्य (10) चेष्टा वैशिष्ट्य (11) अन्यान्य वैशिष्ट्य ।[1]

(1) <u>वक्तृ वैशिष्ट्य</u> -

सुधि भूली जानी नहीं, लगि अंबर की भारु ।
माखनु धरतानि हरबरी, टूटयौ मुकता हारु ।।[2]

यहाँ नायिका सखी से कह रही है, " ध्यान न रहने से, अंबर के भार के कारण , माखन रखते हुए, हड़बड़ी में मेरा मोतियों का हार टूट गया है ।" यह वाच्यार्थ है ।

अतः यहाँ पर (वक्तृ वैशिष्ट्य से) नायिका द्वारा चौर्य रति के गोपन का प्रयत्न व्यंजना से प्रतीत हो रहा है ।

(2) <u>बोद्धव्य वैशिष्ट्य</u> -

उगलित से पिकु कंठ से, धरि अंजनु अधरानि ।
जावकु जावकु भाल हुए, भए लाल हरषानि ।।[3]

नायिका अपने पति से कह रही है, "कंठ से पिक उगलते हुए, अधरों पर अंजन धारण किए हुए, भाल पर महावर लगाए हुए, लाल नेत्रों युक्त (आप साक्षात्) शंकर जी हो गये हैं ।" - यह वाच्यार्थ है ।

यहाँ पर (बोद्धव्य वैशिष्ट्य से) नायक के द्वारा अन्य स्त्री का उपभोग व्यंजित हो रहा है, अर्थात् नायिका का खण्डिता होना व्यंग्य है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 2/16

(2) राधाधर सतसई - टी० सं० - 332

(3) " " - " - 358

(3) <u>वाच्य वैशिष्ट्य</u> -

ललित लता लपटी तरुनि, तरुनि तरुन जिमि अंग ।
नूतन कलिका तन भई मनो, पुलकित व्यापि अनंग ।।[1]

यहाँ नायिका - नायक से । अथवा नायक नायिका से । कह रही । अथवा कह रहा है। " ललित लता वृक्ष से । इस प्रकार। लिपटी हुई है, जिस प्रकार ।कोई। तरुणी ।किसी। तरुण के शरीर से लिपटी हुई है ।उनके शरीर में काम परिव्याप्ति जन्य पुलक मानो नूतन कलिका के रूप में शोभायमान है।" यह वाच्यार्थ है, जिसके द्वारा । वाच्य वैशिष्ट्य से। यह व्यंग्य है कि " हम दोनों भी आलिंगन बद्ध होकर तुरत कुंज में लिप्त हो जाँय ।"

(4) <u>चेष्टा वैशिष्ट्य</u> -

दृग फेरहि फेरति करनि, कुच छवि सहज सुभाहि ।
देखी अंग-अंग चतुरई, रही जितावति माँहि ।।[2]

यहाँ नायक अपने सखा से नायिका की चेष्टाओं का वर्णन कर रहा है," ।नायिका। दृग फिरा रही है, और अपने करों को कुचों पर फेर रही है।" यह वाच्यार्थ है, जिसके द्वारा नायिका "दृग फिराकर" "संकेत स्थल की ओर चलो," कुचों पर हाथ फेर कर "कुच-मर्दन हेतु नायक को अ उत्प्रेरित कर रही है, यह व्यंग्य प्रकट होता है । अतः, यहाँ पर नायिका द्वारा चेष्टाओं द्वारा गुप्त प्रियतम पर अपना विशेष अभिप्राय प्रकट किया जा रहा है ।

(5) <u>अन्य सन्निधि वैशिष्ट्य</u> -

धर्यो मौनु मुख मूँदि तट, हंस वसन तन सेत ।
भृग पुंज धरि मालु तपु, तपत कमल रवि हेत ।।[3]

किसी नायिका का अपने समीप छी प्रच्छन्न प्रेमी के प्रति यह कथन -"तटों ने मौन धारण कर लिया है, हंस श्वेत वस्त्र धारण किए हुए है और कमल भृंग पुंजों की माला धारण करके सूर्य के लिए तपस्या कर रहे हैं ।" - यह वाच्यार्थ है ।

---

(1) राजधर सतसई - दो0 सं0 - 552
(2) " " - " - 124
(3) " " - " - 625

"नटों" ने मौन धारण कर लिया है" से यह व्यंग्यार्थ निकलता है कि इस स्थान पर निःशंकता विराज रही है जो वस्तुतः इस व्यंग्यार्थ का व्यंजक है, कि यह स्थान ऐसा है जहाँ किसी के आने की संभावना नहीं है । "कुंज स्थित वृक्ष धारण किये हैं एवं कमल भृंग पुंजों की माला धारण किए हैं ।" से व्यंग्यार्थ निकलता है कि यह स्थान अभिसार हेतु अत्यन्त रमणीय है ।

चूँकि यह कथन नायिका द्वारा समीपस्थ प्रच्छन्न प्रेमी के प्रति है, अतः यहाँ "अन्य सन्निधि वैशिष्ट्य" से अर्थ व्यंजकता प्रकट हो रही है ।

यदि इसी कथन को नायिका के द्वारा नायक से मान लें तो (वाच्य वैशिष्ट्य से) यह व्यंग्य है कि "सुरत के लिये सुअवसर है ।"

(6) काल वैशिष्ट्य -

> ज्यौं रहिए सखि मिलिक बनु, फूले ताल तमाल ।
> माधव नहिं आए जदपि, आयो माधव काल ।।[1]

नायिका का सखि से कथन-ताल-तमाल फूले हुए हैं अर्थात् बसन्त आ गया है किन्तु माधव (नायक) नहीं आया, किस प्रकार रहूँ - वाच्यार्थ से (काल वैशिष्ट्य से) यह अभिव्यंग्य प्रकट होता है कि बसन्त काल अत्यन्त रति-उद्दीपक है ।

---

व्यंग्यार्थ के आधार पर व्यंजना के तीन भेद स्वीकार किये जाते हैं -

(1) वस्तु व्यंजना (2) अलंकार व्यंजना (3) रस व्यंजना ।

(1) वस्तु व्यंजना - जिस व्यंजना में कोई तथ्य व्यंजित किया जाता है, वह वस्तु व्यंजना कहलाती है ।

> ज्यौं ज्यौं तियगी कहत हैं, अबके तुम फिरि जाउ ।
> त्यौं त्यौं तिय हिय धकधकी, कौने कहा उपाउ ।।[2]

नायिका केलि भवन से बार-बार वापिस लौट आती है। उसके हृदय में धकधकी है, इसका क्या उपाय है ।" यह वाच्यार्थ से वस्तु अभिव्यंग्य यह प्रकट होता है कि नायिका के हृदय में लज्जा एवं भय के कारण धकधकी है अर्थात् नायिका "नवोढा" है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामधर सतसई - दो0 सं0 - 55।
(2) " " - " - 313

।2। अलंकार व्यंजना -

जिस व्यंजना में व्यंजित तथ्य का रूप किसी अलंकार के रूप से मिलता जुलता हो, वह अलंकार व्यंजना कही जाती है -

हौं उदौ राकेश किय, तिय आई इहि ओर ।
इत उत चित मैं चकितु सौ, पियु चितवै दुहु ओर ।।[1]

यहाँ सन्देह अलंकार व्यंग्य है ।

।3। भाव या रस व्यंजना -

जिस व्यंजना में हृदय के किसी मनोविकार अथवा भाव की व्यंजना हो वह भाव या रस व्यंजना कहलाती है ।अर्थात् जिस भाव व्यंजना में रस सिद्धि के उपादान - स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव - हों उसमें रस व्यंजना होगी ।

औटि उमावति नित रही, धरति झरोखे माँहि ।
छवि देखन की लाल की, छवी उपावै छाँहि ।।[2]

यहाँ नायिका का ।रति स्थायी भाव के अन्तर्गत अथवा पुष्टकर्ता । औत्सुक्य - संचारी भाव व्यंग्य है ।

सारतः, रामधर सतसई अभिधा प्रधान है । तत्पश्चात् लक्षणा एवं व्यंजना शक्ति को प्रयुक्त किया गया है ।

---

।1। रामधर सतसई - दो० सं० - 260
।2। " " - " - 76

## राजधर सतसई : छन्द विधान

**काव्य में छन्द का महत्व -**

"भावमयी भाषा में जो स्वाभाविक गति आ जाती है, छन्द उसी का बाहरी आकार है । छन्द में वर्ण नृत्य की भाँति ताल और लय से आश्रित रहते हैं । छन्द भाषा को भावानुकूल बनाकर पाठक अथवा श्रोता में एक विशेष ग्राहकता उत्पन्न कर देते हैं ।

शब्दों की ध्वनि द्वारा । शब्दों के जाने बिना भी । थोड़ी बहुत अर्थ व्यंजना हो जाती है । छन्दों द्वारा जो सौन्दर्य का उत्पादन होता है उसके मूल में भी अनेकता में एकता का सिद्धान्त है । छन्द में शब्दों और वर्णों के विभेद में स्वरों की या मात्राओं की गणना का । वर्णों के लघु - गुरु क्रम होने से, जैसे वर्ण वृत्तों में होता है अथवा मात्राओं की समानता में, जैसे मात्रिक छन्द में । साम्य रहता है । भेद में अभेद उच्चारण और श्रवण संबंधी इन्द्रियों को भी सुखकर होता है । नियम लय का ही आकार है । मुक्तक छन्दों में जो नियमों से परे होते हैं, बंधे हुए आकार के बिना ही लय की साधना होती है ।

तुक का अब उतना महत्व नहीं जितना पहले था, तुक स्मरण रखने में सहायक होती थी ।[1]

**छन्द का अर्थ -**

"छन्दस्" शब्द के दो अर्थ हैं - ।1। आच्छादन । छन्दति छादनात् । इसके द्वारा भाव या रस को आच्छादित किया जाता है ।

।2। आह्लादन - आह्लादन अर्थ वाली छन्द धातु से भी छन्दस् शब्द बनता है । इसके द्वारा पाठकों का आह्लादन होता है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। सिद्धान्त और अध्ययन - बाबू गुलाब राय - पृ0 233

राधाधर सतसई में छन्द विधान -
==========================

हिन्दी के समस्त सतसईकारों ने दोहा छन्द ही प्रयुक्त किया है। कहीं-कहीं अत्यल्प संख्या में सोरठा भी देखने को मिल जाता है। दोहा छन्द के प्रथम दर्शन प्राकृत पैंगलम् में होते हैं। वहाँ पर इसका लक्षण देते हुए लिखा गया है -

तेरह मत्ता पढम पअ, पुणु एआरह देह ।
पुणु तेरह एआरहहि, दोहा लक्खणु एह ॥[1]

अपभ्रंश का तो यह प्रसिद्ध छन्द है। "गाहा" कहने से जैसे प्राकृत का बोध होता है, वैसे ही "दूहा" कहने से अपभ्रंश का। बाद में यह हिन्दी का अत्यन्त लोकप्रिय छन्द हो गया और इसमें प्रचुर रचनायें होने लगीं।[2]

दोहा - दोहा अर्द्धसममात्रिक छन्द है। इसके प्रथम तथा तृतीय चरणों में 13-13 और द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में 11-11 मात्रायें होती हैं। यह दोहों का सामान्य लक्षण है। उदाहरणार्थ -

मोहन सौं मोहन गई, सोही आपहु जाइ ।
ऽ।। ऽ ऽ।।।ऽ ऽऽ ऽ।। ऽ।
कहौ कौन सौं कहि सकै, ठगु ज्यौं जात ठगाइ ॥
।ऽ ऽ। ऽ ।। ।ऽ ।। ऽ ऽ। ।ऽ।
=13 =11

"रत्नाकर" जी की कसौटी -

ब्रज भाषा के प्रकाण्ड पण्डित जगन्नाथ प्रसाद "रत्नाकर" ने। दोहे के कई लक्षणों को उद्धृत करते हुए उनमें अतिव्याप्ति अथवा अव्याप्ति दोष दिखाया है।[3] अपना लक्षण इस प्रकार दिया है -

आठ तीन है प्रथम पद, दूजें पद चहु ताल ।
चहु में जग पद है न गुरु, यह दोहा की चाल ॥[2]

इसका अभिप्राय यह है कि प्रथम तथा तृतीय चरण में 8, 3,2 और 8, । पर मात्रायें अलग हो जानी चाहिए अर्थात् 8वीं 9वीं से अथवा 11वीं से मिलकर गुरु न हो जाय। पर 8,3 इत्यादि पर शब्दों का भी पृथक हो जाना आवश्यक नहीं है। मात्राओं का वितरण का क्रम इस प्रकार होगा - 8+3+2,8+(ऽ।)

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) प्राकृत पैंगलम् - 138/78

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा० नगेन्द्र - पृ० -166 । भाग -6 ।

(3) कविवर बिहारी -प्र०सं० - पृ० सं० - 13

राजधर सतसई के अधिकांश दोहे इस कसौटी पर खरे उतरते हैं -

।1। मोहन सौं मोहन गई, मोही आपुहि जाइ ।
कहौ कौन सौं कहि सकै, कछु ज्यौं बात बनाइ ।।[1] ।रा०स०-दो० 475 ।

।2। कौतुक देखन कौं गई, दौरि द्वार लगि बाम ।
कौतुक लाग्यौ कौतुकी, निरखि रूप अभिराम ।।[2] ।रा०स०-दो० 474।

राजधर सतसई : दोहों के भेद -
=========================

आचार्यों ने दोहा छन्द के अनेक भेदों का कथन किया है । "प्राकृत पिंगल सूत्र" में दोहा के 23 भेदों का उल्लेख है । उनके पृथक-पृथक नाम भ्रमर आदि दिए हैं ।[3]

इनमें 26 अक्षर वाला दोहा 'भ्रमर' कहलाता है, उसमें कुल 4 लघु और 22 गुरु होते हैं । उनके भेदों में एक-एक गुरु कम होकर, दो-दो लघु बढ़ते चले जाते हैं ।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।3। भ्रमरो भ्रामरः शरभः श्येनः,
मण्डूको मर्कटः करभ
नरो मरालो मदकलः पयोधरः
चलो वानर स्त्रिकलः
कच्छपो मत्स्यः शार्दूलो अहिवरः
व्याघ्रो बिडालः शुनकस्तथा
उन्दुरः सर्प इत्याख्यः प्राकृत पिंगल सूत्र -श्री० लक्ष्मीनाथ भट्ट पृ० 37

।4। षड्विंशत्यक्षरो भ्रमरो गुरवो
द्वाविंशतिर्गुरवस्तथाः ।
गुरुह्रासादि द्वौ लघु वर्धते
तदन्यात विचारय ।।

इसके स्पष्टीकरण के लिए डा० पुष्प लता की तालिका द्रष्टव्य है।

| क्रम सं० | दोहे की जाति | गुरु | लघु | अक्षर संख्या |
|---|---|---|---|---|
| 1- | भ्रमरः | 22 | 4 | 26 |
| 2- | सुभ्रमरः | 21 | 6 | 27 |
| 3- | शरभः | 20 | 8 | 28 |
| 4- | श्येनः | 19 | 10 | 29 |
| 5- | मण्डूकः | 18 | 12 | 30 |
| 6- | मर्कटः | 17 | 14 | 31 |
| 7- | करभः | 16 | 16 | 32 |
| 8- | नरः | 15 | 18 | 33 |
| 9- | मरालः | 14 | 20 | 34 |
| 10- | मदकलः | 13 | 22 | 35 |
| 11- | पयोधरः | 12 | 24 | 36 |
| 12- | चलः | 11 | 26 | 37 |
| 13- | वानरः | 10 | 28 | 38 |
| 14- | त्रिकलः | 9 | 30 | 39 |
| 15- | कच्छपः | 8 | 32 | 40 |
| 16- | मत्स्यः | 7 | 34 | 41 |
| 17- | शार्दूलः | 6 | 36 | 42 |
| 18- | अहिवरः | 5 | 38 | 43 |
| 19- | व्याघ्रः | 4 | 40 | 44 |
| 20- | विडालः | 3 | 42 | 45 |
| 21- | शुनकः | 2 | 44 | 46 |
| 22- | उन्दुरः | 1 | 46 | 47 |
| 23- | सर्पः | 0 | 48 | 48 |

---

।।। रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन - डा० पुष्प लता - पृ० -225

वैसे, रामधर सतसई के दोहे इन जातियों के अनुसार लिखे गये नहीं प्रतीत होते हैं। अधिकांश दोहों पर यह जातियाँ घटित नहीं होती हैं, किन्तु कतिपय दोहों में कुछ जातियों के भेद भी देखे जा सकते हैं -

<u>श्येन:</u>

मैं जानी जनु जानिहै, कैसी हू है पीर ।
जोही मोही फिरति हों, तोही कहि का पीर ॥[1]

गुरु - 19, लघु - 10, अक्षर संख्या - 29

<u>मर्कट:</u>

किहि कारन आए नहीं, कहि पियारु तू धाम ।
कैसे है मिति बीतिहै, कैसे तुमि धाम ॥[2]

गुरु - 17, लघु - 14, अक्षर संख्या - 31

<u>नर:</u>

नगर औंछो वस्तु है, नहीं देखैं तीर ।
राजनि के रावर तहाँ, चलत कुबेला बीर ॥[3]

गुरु - 15, लघु - 18, अ०सं० - 33

<u>पयोधर:</u>

आषाढ़नु तुम सब की, मैन पीठ पिय कीन ।
पूरि भरी विधि नागनिरु, पलक सुलौड़ दीन ॥[4]

गुरु -12, लघु- 24 - अ०सं० - 36

---

(1) रामधर सतसई - दो० सं० - 111
(2) " " - " - 427
(3) " " - " - 03
(4) " " - " - 431

**बल:**

करै दौहरा सात है, भूप भये तिन हेत ।
रस बस पारु विचारु करि, उक्तिन युक्ति समेत ।।[1]

गुरु - 11, लघु - 26 , अक्षर - 37

**पान:**

प्यारी है तकियन रच्यौ, चिबुक बिंदु दुख देत ।
चंद बदन हिंग मदन बहु, कीनी तदनु सहेत ।।[2]

गुरु - 10, लघु - 28 , अक्षर - 38

**त्रिकल :**

पलक पलक प्रति पलक लौं, पलक लगत हरि हेत ।
रस सुधा पिय की मनी, स्वादि स्वादि दृग लेत ।।[3]

गुरु - 9 , लघु - 30, अक्षर - 39

**कच्छप:**

धरनि औ पहु दिन चरयो, दुख अधरनि लिए बाल ।
तब पायो हरि चरन पहु, बेधि सरीर प्रवाल ।।[4]

गुरु - 8, लघु- 32, अक्षर - 40

ऐसा प्रतीत होता है कि रामसहाय लालाई के दोहों का आयाम श्येन से लेकर कच्छप जाति के दोहों तक है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) रामसहाय लालाई - दो० सं० - 11
(2) " " - " - 539
(3) " " - " - 19
(4) " " " " - 546

## सोरठा

राजधर सतसई में मात्र 2 सोरठा छन्दों का प्रयोग किया गया है। सोरठा, दोहा का ठीक उल्टा होता है। इसके प्रथम तथा तृतीय चरणों में 11-11 मात्राएँ तथा चतुर्थ एवं द्वितीय चरणों में 13-13 मात्राएँ होती हैं -

(1) को पै जानत भेद, लाल तिहारे दृगनि के।
तिनही के मन खेद, हुवै जिनकी निकसत सदा॥[1]

(2) आई रितु हेमंतु, भयौ आगमनु सीत कौ।
तन संजोग बिनु कंत, कटै कौन विधि जामिनी॥[2]

## निष्कर्ष -

(1) सतसई परम्परा के अनुसार राजधर सतसई में (अन्य हिन्दी सतसइयों की भाँति) दोहा छन्द का ही प्रयोग हुआ है।

(2) अधिसंख्य दोहों की जान रत्नाकर जी की कसौटी पर खरी उतरती है।

(3) दोहों की कतिपय जातियाँ- श्येन आदि - भी प्राप्त हो जाती हैं।
परन्तु, अधिसंख्य दोहे किसी जाति के अनुरूप नहीं हैं।

(4) सम्पूर्ण राजधर सतसई में दो सोरठों को भी प्रयुक्त किया गया है।

---

(1) राजधर सतसई - सो0 सं0 - 16
(2) " " - सो0 सं0 - 63।

## राजधर सतसई : भाषा

भक्ति कालीन ब्रजभाषा के विषय में आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने सूर की भाषा को किसी चलती हुई परम्परा का विकसित रूप कहा है, परम्परा का मूल नहीं ।[1] सूर के पश्चात् महाकवि तुलसी दास भी आते हैं । यद्यपि इन्होंने राम चरित मानस की रचना अवधी भाषा में की है, परन्तु उनकी अन्य श्रेष्ठ रचनाएँ - कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका आदि ब्रज भाषा में ही हैं । रीतिकाल के कवियों में बिहारी, मतिराम, घनानंद, रसखान, देव, सेनापति, पद्माकर आदि ने ब्रज भाषा काव्य को अत्यन्त समृद्ध किया है । ब्रज भाषा साहित्य प्रमुख रूप से भक्ति तथा श्रृंगार की रचनाओं का भण्डार है ।[2] अतः प्रस्तुत आलोच्य कृति राजधर सतसई के रचयिता राजधर जी ने भी तत्कालीन साहित्यिक भाषा - ब्रज भाषा को ही अपनी भावाभिव्यक्ति के साधन स्वरूप प्रयुक्त किया है ।

### राजधर सतसई में ब्रज भाषा की भाषा वैज्ञानिक विशेषताएँ एवं व्याकरण

राजधर सतसई में ब्रज भाषा की सभी भाषा वैज्ञानिक विशेषताएँ एवं व्याकरण संबंधी विशेषताएँ विद्यमान हैं, जिनको निम्नलिखित सारणियों में देखा जा सकता है -

(1) ब्रज भाषा में स्वरों के अनुच्चारित एवं अल्पोच्चारित प्रयोग भी प्राप्त होते हैं।[3] किन्तु राजधर सतसई में इस प्रकार के प्रयोग का अभाव है । इससे ज्ञात होता है कि कवि को भाषा की शुद्धता और अशुद्धता का पूर्ण ज्ञान है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन - डा० राम चन्द्र शुक्ल - पृ० : 165

(2) ब्रज भाषा एवं खड़ी बोली के व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन - डा० गेंदा लाल शर्मा - पृ० - 31

(3) ब्रज भाषा के व्याकरण की रूपरेखा - डा० प्रेम नारायण टंडन - पृ० - 06

**[2] तत्सम शब्दों की ध्वनियों में अन्तर -**

ब्रज भाषा में तद्भव शब्द अधिक मिलते हैं। तत्सम शब्दों से तद्भव शब्दों में भी ध्वनियाँ बदल जाती हैं, के समरूपतापूर्ण उदाहरण रामधर सतसई में देखे जा सकते हैं -

[क] "श" और "ष" के स्थान पर "स" -

| साहित्यिक हिन्दी के तत्सम शब्द | ब्रजभाषा के तद्भव शब्द | रा० सतसई दो.सं. |
|---|---|---|
| रविवंशी | रविवंसी | 126 |
| शर | सर | 131, 134, 141 |
| वर्षा | बरसा | 650 |
| वेष | बेस | 166 |
| **[ख] "ण" के स्थान पर "न"** | | |
| गणपति | गनपति | 1 |
| शरण | सरन | 2 |
| चरण | चरन | 2 |
| गुण | गुन | 613 |
| **[ग] "क्ष" के स्थान पर "छ" अथवा "ख" -** | | |
| क्षमा | छमा | 45 |
| क्षीण | छीन | 384 |
| क्षिति | छिति | 54 |
| कुरुक्षेत्र | कुरुखेत | 63 |
| **[घ] स्वरहीन व्यंजन के स्थान पर स्वर युक्त व्यंजन -** | | |
| मार्ग | मारग | 12 |
| मुक्ति | मुकति | 13 |
| सम्मान | सनमानु | 283 |
| वर्षा | बरसा | 650 |
| **[ङ] "य" के स्थान पर "ज" -** | | |
| यश | जस | 5, 11 |
| यौवन | जौबन | 63 |

ध्यातव्य -

जैसे ब्रजभाषा में "व" के स्थान पर "ब" का प्रयोग होता है, परन्तु राजधर सतसई में इसके विपरीत "ब" के स्थान पर "व" का प्रयोग देखा जा सकता है -

| | | |
|---|---|---|
| बुद्धि | वुद्धि | 1 |
| बुन्देला | वुन्देला | 3 |
| बलवंतु | वलवंतु | 7 |
| सब | सव | 8, 23 |

13। तद्भव शब्दों की ध्वनियों में अन्तर -

साहित्यिक हिन्दी के तद्भव शब्दों में भी कुछ ध्वनियां ऐसी हैं, जो ब्रज भाषा में बदल जाती हैं। राजधर सतसई में ये इस प्रकार हैं -

(क) "ड़" के स्थान पर "र" -

| | | |
|---|---|---|
| बि: भिड़त | भिरत | 62 |
| पड़ती | परति | 72 |
| पड़ | पर | 103 |
| कूबड़ी | कूबरी | 262 |

(ख) "ल" के स्थान पर "र" -

| | | |
|---|---|---|
| हिंडोल | हिंडोर | 66 |
| कम्बल | कंमर | 103 |

14। खड़ी बोली में जहाँ शब्दों के अन्त में "ओ" होता है, ब्रजभाषा में वहाँ "औ" हो जाता है -

| | | |
|---|---|---|
| कहो | कहौ | 114 |
| देखो | देखौ | 124 |
| जो | जौ | 191 |

15। खड़ी बोली में शब्दों के अंत में जहाँ "ए" होता है, वहाँ ब्रजभाषा में "ऐ" हो जाता है -

| | | |
|---|---|---|
| गोरे | गोरै | 460 |
| कैसे | कैसै | 50 |
| के | कै | 9 |

## कारक चिह्न

राजधर सतसई में ब्रज भाषा के कारक चिह्न पाए जाते हैं, जिनके कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं -

| क्रम सं0 | कारक | कारक चिह्न | | दो0सं0 |
|---|---|---|---|---|
| 1- | कर्ता | करनै कैलासदास नैं | ।"ने" के स्थान पर "नैं" । | 4 |
| 2- | कर्म | समयै कौं बनि कुछ | ।"को" के स्थान पर "कौं"। | 221 |
| 3- | करण | हम पायौं विधि सगुन सौं | ।"से" के स्थान पर "सौं" । | 91 |
| 4- | " | सिय दृग अंजन तैं लख्यौ | ।"से" के स्थान पर "तैं" । | 43 |
| 5- | सम्प्रदान | हरिहर से बरदान कौं | ।"के लिए" के स्थान पर "कौं"। | 07 |
| 6- | अपादान | और तैं अनुराग बढ़ु | ।"से" के स्थान पर "तैं" । | 232 |
| 7- | सम्बन्ध | रावनि के राजा | । खड़ी बोली की तरह । | 3 |
| 8- | " | लगि सुगंध कौ लोई | ।"का" के स्थान पर "कौ"। | 25 |
| 9- | अधिकरण | रही कुंज मैं छवि छायी | ।"में" के स्थान पर "मैं" । | 33 |
| 10- | " | प्रिय पीठे कुच भौर पै | ।"पर" के स्थान पर "पै"। | 235 |

## संज्ञा

**एक वचन**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1- | नगरु ओड़छौं बसतु है | ।'नगर' के स्थान पर 'नगरु'। | 3 |
| 2- | दानि करनु से भौनु से | । 'दानी' के स्थान पर 'दानि'। | 7 |
| 3- | मारनु लगी मुरारि | । 'मुरारी' के स्थान पर 'मुरारि'। | 101 |

**बहु वचन**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 4- | रावनि के राजा जहाँ | ।'राजाओं' के स्थान पर 'रावनि'। | 3 |
| 5- | दिन दिन दाननि की बढ़तु | । 'दानियों' के स्थान पर 'दाननि'। | 22 |

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजधर सतसई में एक अकारान्त एवं इकारान्त क्रमशः उकारान्त एवं इकारान्त पाई जाती है । बहुवचन ओकारान्त संज्ञाओं के अन्त में "अनि" प्रत्यय जुड़ जाता है ।

## सर्वनाम

राजधर सतसई में ब्रज भाषा के ही सर्वनाम प्रयुक्त हुए हैं -

1- हौं जग जाहिर नाहिने ।मैं के स्थान पर "हौं"। 107

2- मोहि अकेली जानि कैं । मुझको के स्थान पर "मोहि"। 108

3- ता बिरहिन लखि ।उस" के स्थान पर "ता" । 366

4- तेरो मन कह देतु है ।"तेरा के स्थान पर "तेरो" । 331

5- तो कायै दुख देत है ।तुम्हारे लिए के स्थान पर तो ।कायै। 514

इत्यादि ।

## क्रिया

राजधर सतसई में ब्रज भाषा की क्रियायें प्रयुक्त हुई हैं -

पुल्लिंग

1- गोरी मुख भावत हिये ।"भाते" के स्थान पर "भावत"। 92

2- सिथिल होत सब गात ।"होते" के स्थान पर "होत" । 150

स्त्रीलिंग

1- पिय संग खेलति तिय तरुनि ।"खेलती" के स्थान पर "खेलति"। 86

2- आवति नहि पनिहारि ।"आती" के स्थान पर "आवति"। 101

नपुंसक लिंग

1- दिन दिन बाढ़तु जातु है77 ।"बढ़ता जाता है" के स्थान पर 306
दुहु दिसि प्रेम पयोधि "बाढ़तु जातु" ।

2- घटतु बढ़तु निसिनाथु ज्यों ।"घटता बढ़ता" के स्थान पर "घटतु बढ़तु"। 84

## पूर्वकालिक

1- पुलकिंतु धरोंतु लखि ।"लख कर" ।देखकर। के स्थान पर "लखि। 07

2- देहु मोहु करि प्रीति ।"करके" के स्थान पर "करि"। 08

3- छुवै जिनको निकसत सदा ।"छूकर" के स्थान पर "छुवै"। 16

4- नागरि घरन उठाइ ।"उठाकर" के स्थान पर "उठाइ"। 31

5- लालन तन मुसक्याइ ।मुस्कराकर" के स्थान पर "मुसक्याइ । 31

<u>आज्ञार्थक रूप</u> -

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1- | जोनि जाँनि जिय लेउ | । "लो" या लीजिये के स्थान पर "लेउ"। | 07 |
| 2- | ततछिया करि देहु | ।"कर दीजिए" के स्थान पर "कर देहु"। | 10 |
| 3- | तू जनि करै गुमान चित | ।"कर" के स्थान पर "करै"। | 14 |
| 4- | समुझि अबै तू सखिन सौं | ।"समझो" के स्थान पर"समुझि"। | 58 |
| 5- | सुनि राधे करि प्रीति | ।"सुनो" के स्थान पर "सुनि"। | 82 |

<u>भूतकाल</u>

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1- | कवी बरनै केशव दास मैं | ।"वर्णन किये"के स्थान पर"बरनै"। | 04 |
| 2- | राजकुल महाराज किय | ।"किया" के स्थान पर "किय"। | 07 |
| 3- | लिय जय संगर धीर | ।"लिये के स्थान पर "लिय" । | 09 |
| 4- | करै दोहरा लाल है | ।"किये" के स्थान पर "करै" । | 11 |
| 5- | अति प्रसन्न मन है कह्यौ | ।"कहा" के स्थान पर "कह्यौ"। | 10 |
| 6- | तबहुं ललचानौं कुँवर मनु | ।"ललचाया" के स्थान पर "ललचानौ"। | 53 |

<u>भविष्यत् काल</u>

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1- | फिरि उपजैगो देहु | ।"उपजेगा" के स्थान पर "उपजैगो"। | 58 |
| 2- | अब न बरनिहै कोई | ।"वर्णन करेगा" के स्थान पर "बरनिहै"। | 68 |
| 3- | है जानी जग जानिहैं | ।"जानेगा" के स्थान पर "जानिहै" । | 111 |
| 4- | छैली हुहै धीर | ।"होगी" के स्थान पर "हुहै"। | 111 |
| 5- | निशुदिन लाल लडाइयौ | ।"लडाना" के स्थान पर "लडाइयौ"। | 115 |

## शब्दावली

### 1- तत्सम शब्द

रामधर सतसई में कहीं-कहीं संस्कृत के (तत्सम) शब्दों को प्रयुक्त किया गया है। ये शब्द ब्रज भाषा में प्रचलित हैं -

| क्रम सं० | शब्द | रा०स०त० दो०सं० | |
|---|---|---|---|
| 1- | पट - नव पट | 1 | |
| 2- | दृग | 16 | |
| 3- | नील पीत पट | 30 | |
| 4- | भूतागति | 112 | |
| 5- | तिमिर | 248 | |
| 6- | पयोधि | 307 | |
| 7- | अचेत | 303 | |
| 8- | वत्सल | 478 | इत्यादि |

### 2- अरबी-फारसी के शब्द

अरबी फारसी के कतिपय प्रचलित शब्द ब्रजभाषीकरण करके रामधर ने प्रयुक्त किये हैं -

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1- | ज्वाब (जवाब) | 64 | |
| 2- | ख्वाबु (ख्वाब) | 64 | |
| 3- | मुसाहिब | 64 | |
| 4- | अखत्यारु (अख्त्यार) | 7 | |
| 5- | जाहिर | 6 | |
| 6- | जोरावर | 411 | |
| 7- | रोजु (रोज) | 435 | |
| 8- | जवान | 453 | |
| 9- | जोगु (जोग) | 121 | |
| 10- | सरीर (शरीर) | 138 | इत्यादि। |

3- <u>आँचलिक शब्द</u>

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1- | दह पट्ट किय | नष्ट करके | 09 |
| 2- | ततराइ | विचित्र गति को प्राप्त होना | 28 |
| 3- | गाँती | गँडासा | 61 |
| 4- | तकतकाति | तकपकाती | 136 |
| 5- | धुरवा | बादल | 194 |
| 6- | मदवावरी | प्रेम के कारण दीवानी | 371 |
| 7- | तिच्छ | तीक्ष्ण | 570 |
| 8- | चिरी चुहचुही | चिड़ियों की चहचहाट | 461 |
| 9- | निहचौ | निश्चय | 549 |

4- <u>बुन्देली शब्द</u>

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1- | कान | कृष्ण | 18 |
| 2- | नौने | अच्छे | 65 |
| 3- | मलार | मल्हार | 66 |
| 4- | इतै | इधर | 95 इत्यादि |

8-

<u>निष्कर्ष</u> -

राजधर सतसई में प्रयुक्त संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया एवं कारकों आदि के अध्ययन से ज्ञात होता है, कि राजधर सतसई की भाषा, ब्रजभाषा है । तत्कालीन साहित्यिक भाषा, ब्रजभाषा ही थी, अतः राजधर ने उसी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुना ।

राजधर सतसई में तत्कालीन ब्रजभाषा में प्रचलित शब्दों को ही प्रयुक्त किया गया है । जिसमें जहाँ संस्कृत के ःतत्समः शब्द हैं । वहाँ अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग है, वहाँ उनका ब्रजभाषीकरण करके अपनाया गया है ।कतिपय ब्रजभाषा के आंचलिक शब्द हैं । यतः, राजधर सतसई की रचना ओरछा ःबुन्देलखण्डः में हुई, अतः कतिपय बुन्देली शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक ही था । इस प्रकार राजधर की भाषा सरल, स्वाभाविक एवं भावोत्कर्ष में सर्वप्रकार सहायक है ।

00000000000000
0000000000000000000
00000000000000

## अध्याय - 7

# राजधर पर अन्य कवियों का प्रभाव

## रसखान पर अन्य कवियों का प्रभाव

कवि के लिए शक्ति (प्रतिभा) के उपरान्त सबसे अधिक स्पृहणीय गुण साहित्यिक व्युत्पन्नता है। वास्तव में कवि की शक्ति का संस्कार अपने प्राचीन तथा समसामयिक साहित्य के अध्ययन और मनन से ही होता है - और उसी के द्वारा उसकी अभिरुचि का भी निर्माण होता है।[1] इस दृष्टि से रसखान के पूर्ववर्ती प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी रीतिकाल तक के जो कवि थे, जिनसे रसखान प्रभाव ग्रहण कर सकते थे, इन्हीं कवियों के प्रभाव को स्पष्ट करना इस शीर्षक के अन्तर्गत हमारा उद्देश्य है।

<u>संस्कृत साहित्य का प्रभाव</u> :-

प्राकृत की हालकृत गाथा सप्तसती का रसखान पर कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ा है। गाथा सप्तसती एवं रसखान सतसई में काल का अत्यधिक अन्तराल भी होना हो सकता था, किन्तु हमें ऐसा नहीं लगता है क्योंकि रसखान के निकटस्थतम पूर्ववर्ती कवि बिहारी ने गाथा सप्तसती से प्रभाव ग्रहण किया। संभवतः, इन्होंने हमारे मतानुसार गाथा सप्तसती का अध्ययन ही नहीं किया होगा। संस्कृत साहित्य से ये अवश्य ही कुछ परिचित थे, अतः संस्कृत के कतिपय प्रसिद्ध कवियों का प्रभाव इन पर देखा जा सकता है। संस्कृत साहित्य से गृहीत भावों के उदाहरणार्थ कतिपय रसखान सतसई के दोहे देखिए —

<u>अमरुक</u>

सीत्कारांचितलोचना सरभसं ये चुम्बिता मानिनी प्राप्तं
तैरमृतं मुधैव माथितो मूढैः सुरैः सागरः ।।[2]

अमरुक शतकम्

। वास्तविक अमृत तो कोप पूर्वक सीत्कार करती हुई प्रिया के चुम्बन में है, मूर्ख देवताओं ने व्यर्थ ही समुद्र का मंथन किया ।।

---

(1) देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र - पृष्ठ 250

(2) अमरुक शतकम् - श्लोक - 32

सलज्जु पान कराइये, प्रीतम सदा सकाम ।
सुधा अधर में धरि कहा, करे अधर में वाम ।। [1]

यहाँ राजधर अमरुक से प्रभावित हैं ।

आर्या सप्तशती

किं परजीवैदीव्यसि विस्मयमधुराक्षि । गच्छ सखि दूरम्
अहिमपि चत्वरभुवम ग्राही खेलतु निश्चिन्त: । [2]

। गोवर्धनाचार्य ।

। सपेरा साँपों का खेल दिखा रहा है । दर्शकों में नायिका भी है । लोग उसी का मुख देख रहे हैं । साँपों के खेल की ओर किसी का ध्यान नहीं है - ऐसा देखकर सखी कह रही है -

हे सखि । विस्मय से मधुर नेत्र वाली । । तुम्हारे वदन विलोकन में आसक्त जनों में। सपेरे का खेल व्यर्थ ही जायेगा और वह कुछ धन न पा सकेगा - इस प्रकार उसकी जीविका में बाधा डालकर , दूसरे के प्राणों से क्यों खेलती हो; चौराहे पर सपेरा निश्चिन्त खेल करे और तुम दूर हटो । ।

कौतुक देखन कौं गई, दौरि द्वार लगि वाम ।
कौतुक लाग्यो कौतिकी, निरखि रूप अभिराम ।। [3]

। राजधर ।

आर्या सप्तशती में सपेरा खेल दिखा रहा है । दर्शकों में नायिका भी है । लोग उसी का मुँह देख रहे हैं । खेल की ओर किसी का ध्यान नहीं है ।

राजधर ने इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है - नायिका गई तो थी कौतुक देखने लेकिन । नयनाभिराम रूपवती होने के कारण, कौतुक देखने वाले दर्शक उसे ही कौतुकवश देखने लगे, अतः । स्वयं ही कौतुक बन गई ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। राजधर सतसई - दो०सं० - 97

।2। आर्या सप्तशती आर्या सं० - 187

।3। राजधर सतसई - दो० सं० - 474

"कौतुक" देखने वाली का स्वयं ही "कौतुक" बन जाने में "कौतुक" शब्द के प्रयोग से अधिक चमत्कृति उत्पन्न हो गई है ।

यह भाव राजधर ने भले ही आर्या सप्तशतीकार से लिया हो, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति में मौलिकतापूर्ण उत्कर्ष ही है ।

## श्री हर्ष

वियोगभाजो पि नृपस्य पश्यता तदेव साक्षादमृतांशुमाननम्
पिकेन रोषारुण चक्षुषा मुहुः कुहूरुता हूयत चन्द्रवैरिणी । [1]
। श्री हर्ष ।

(विरहातुर नृप के उस मुख को प्रत्यक्ष चन्द्रमा ही समझने वाले, क्रोध से लाल आँखों वाले कोकिल ने बार-बार "कुहू-कुहू" की ध्वनि से चन्द्र की शत्रु - (अमावस्या) बुलाई ।)

लखि वियोग जन चंद रिपु, अलि कोकिल रिपु मानि ।
कुहू बुलावति करि कुहू, प्रीतमु कर तन कानि ।। [2]

कोयल की बोली का अनुकरणात्मक शब्द "कुहू" है । "कुहू" अमावस्या को भी कहते हैं । इसलिए यह उत्प्रेक्षा की गई है, कि कोयल अपनी "कुहू-कुहू" की आवाज से मानो अमावस्या को बुला रही है, जिसमें चन्द्रमा नहीं आता है, क्योंकि चन्द्रमा वियोगीजनों के लिए कष्टप्रद होता है ।

उपर्युक्त भाव राजधर ने नैषध के रचयिता श्री हर्ष से ही लिया होगा ।

## हिन्दी साहित्यकारों से प्रभाव ग्रहण

राजधर ने संस्कृत साहित्यकारों से तो अत्यल्प ही प्रभाव ग्रहण किया, जो कुछ प्रभाव ग्रहण किया वह हिन्दी काव्यकारों से ही किया है । रीतिकालीन शृंगारिक सतसईकारों ने यत्र-तत्र धार्मिक आस्था विश्वासों एवं नीति संबंधी दोहे भी लिखे और राजधर भी इसके अपवाद नहीं हैं । जहाँ कहीं भी राजधर ने धार्मिक आस्था विश्वासों से संबंधित दोहे लिखे हैं, वहाँ उन्होंने भक्तिकालीन कवियों से भाव ग्रहण करके, उन्हें आत्मसात् करते हुए मौलिक अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

(1) नैषध चरित - श्री हर्ष - 1/100
(2) राजधर सतसई - दो० - 561

## भक्ति काल

भक्ति काल में निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के प्रतिनिधि कबीर, राम भक्ति धारा के प्रतिनिधि तुलसी कृष्ण भक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि सूरदास तथा अन्य कवि -मीरा, रसखान और नीति विषयक दोहों के प्रतिनिधि रहीम से राजधर ने किस प्रकार भाव ग्रहण किया है अब उसका विवेचन प्रस्तुत करेंगें।

### कबीर

राजधर के एक दोहे में कबीर का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है -

नैननि की करि कोठरी, पुतरी पलँग बिछाय।
पलकनि की चिक डारिकै, पिउ कौं लियो रिझाय॥

(कबीर)

आवाहनु पुनि सब की, नैन पीठ बिच कीन।
पूजि भली विधि मानसिक, पलक सुसंपुट दीन॥ [1]

कबीर की नायिका (आत्मा) ने अपने प्रियतम (परमात्मा) को नैनन की पुतरी रूपी पलँग पर बिठाकर पलकों की चिक डालकर रिझाया है। राजधर की प्रोषितपतिका नयन पीठ पर नायक को आसीन करती है, पलकों का सम्पुट देती हुई मानसिक पूजा करती है।

दोनों दोहों में प्रिय की छवि को नयनों में बसाकर पलक बन्द करने का भाव समान रूप से सन्निहित है। यह बात अवश्य है, कि कबीर का प्रिय आध्यात्मिक है जबकि राजधर की प्रोषितपतिका का प्रिय लौकिक। राजधर ने इस दोहे में कबीर के उपर्युक्त दोहे का प्रतिबिम्बन ही प्रतीत होता है। राजधर ने कबीर से इस भाव की प्रेरणा ग्रहण की होगी किन्तु उसे अपने ही ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान की है।

---

(1) राजधर सतसई दोहा सं० - 43

## सूरदास

सूरदास का सूर सागर भक्ति-श्रृंगार की कविता का सागर है । हिन्दी का कोई भी मध्यकालीन श्रृंगारी कवि सूर के प्रभाव से नहीं बच सका । उनका काव्य संयोग क्रीड़ा उपालम्भ तथा विरह का अमित भण्डार है और प्रकारान्तर से प्रायः सम्पूर्ण नायिका भेद भी उसमें आ जाता है ।[1]

राजधर ने काव्य और भक्ति दोनों ही दृष्टियों से सूर साहित्य का अध्ययन किया होगा । अतः राजधर के कतिपय दोहों पर सूर की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की स्पष्टतः छाप है । उदाहरणार्थ --

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पर आवै ।

। सूर सागर ।

तुव चरननि तजि जगति पति, लखि अधार नहिं और ।
मनु भो काग जिहाज को, कहु फिरमे किहि ठौर ।।[2]

। राजधर सतसई ।

सूर के उपर्युक्त पद का राजधर ने इस दोहे में मात्र शब्दों के हेरफेर से वही भाव ग्रहण किया है । राजधर ने सूर के " जहाज को पंछी " को " जहाज को काग" कह दिया है ।

अद्भुत एक अनुपम बाग ।
जुगल कमल पर गजवर क्रीडत, ता पर सिंह करत अनुराग ।
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग ।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, तेहि ऊपर अमृत फल लाग ।
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक पिक मृग मद काग ।
खंजन, धनुष, चन्द्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मनिधर नाग ।

। साहित्य लहरी - सूर ।

कर-पल्लव, द्रुम-कुसुम अरु, कुच-फल सोभा लेखि ।
नाभि-कूप तिय तनु सकल, लगी बगाइत देखि ।।[3]

---

(1) रीति काव्य की भूमिका तथा देव और उनकी ~~साहित्य~~ कविता - डा० नगेन्द्र -पृ० - 258
(2) राजधर सतसई - दो० सं० 187
(3) राजधर सतसई - दो० सं० 487

(3) उपर्युक्त सूर के पद में एवं राजधर का दोहा देखने पर स्पष्ट हो जाता है, कि राजधर ने सूर की भाँति ही नायिका के सम्पूर्ण-शरीर के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हेतु "बाग" को ही उपमान रूप में प्रयुक्त किया है ।

(4) नख शिख वर्णन के हेतु सूरदास ने रूपकातिशयोक्ति अलंकार का आश्रय लिया है, जबकि राजधर ने सांगरूपक अलंकार का ।

(5) सूरदास के कूट पद में रूपकातिशयोक्ति अलंकार होने से मात्र उपमानों का उल्लेख है, अतः अत्यन्त माथा पच्ची करने के पश्चात् रसानुभूति होती है किन्तु राजधर ने सांगरूपक अलंकार को प्रयुक्त किया जिससे सहज ही रसानुभूति हो जाती है । सूरदास की कविता कामिनी जहाँ अलंकार से इतनी बोझिल है कि चलने में ही बाधा उत्पन्न हो रही है, जबकि राजधर की कविता का अलंकार उसके सौन्दर्य संवर्धन में सहायक है । अतः रस और अलंकार के प्रयुक्त करने की दृष्टि से यहाँ राजधर श्रेष्ठ हैं ।

(6) सूर के पद में सम्पूर्ण नख शिख की वर्णना है जबकि राजधर ने नायिका के मात्र कतिपय अंगों का ही वर्णन किया है जिसका स्पष्ट कारण है -पद की अपेक्षा दोहे का कलेवर सीमित होना ।

सारतः , राजधर ने सूरदास से भाव ग्रहण करके यहाँ उसका उत्कर्ष ही किया है ।

## तुलसीदास

भक्ति के क्षेत्र में सभी सतसईकार किसी न किसी अंश में तुलसी से प्रभावित हैं । राजधर भी उस प्रभाव से अछूते नहीं हैं -

वारि मथे बरु होय घृत, सिकता तें बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥

(तुलसी)

जैसे हरि के भजन बिनु, कटै न तन के पापु ।
तैसे हिय पिय बिनु लगै, मिटै न तन की तापु ॥ 1

तुलसी के उपर्युक्त दोहे की द्वितीय पंक्ति में एवं राजधर सतसई के दोहे की प्रथम पंक्ति में क्रमशः भव से तरण के लिए एवं तन (शरीर) से पाप घटाने के लिए " हरि भजन " की अनिवार्यता का भाव सन्निहित है ।

यह " हरि भजन की अनिवार्यता" का भाव राजधर के इस दोहे में तुलसी के उपर्युक्त दोहे के प्रतिबिम्ब रूप में ही है ।

---

(1) " राजधर सतसई - दो0सं0 - 214

## मीरा

हेरी ! मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरो दरद न जाणे कोय ।
मीरा की प्रभु पीर मिटै जब, बैद सँवरिया होय ।।

---

। मीरा ।

तनु अति पीड़ित होतु है, लगि सुगन्ध की तोड़ ।
अगन ताप तबही मिटै, पियु धन्वंतरि होइ ।। [1]

मीरा की "पीर" का निवारण तभी हो सकता है जब उसका वैद्य "सँवरिया" हो । राजधर की प्रोषितपतिका की पीर भी तब ही मिटेगी जब उसका प्रिय "धन्वन्तरि" होकर आवे ।

मीरा और राजधर की प्रोषितपतिका की पीर में भिन्नता यह है कि एक की "पीर" आध्यात्मिक है एवं दूसरी की लौकिक अथवा शारीरिक अर्थात कामवासना जन्य ।

मीरा के पद में भक्ति शृंगार है जबकि राजधर के दोहे में शृंगार की भक्ति ।

"प्रिय" के ही वैद्य होकर आने पर पीर के निवारण का भाव राजधर ने मीरा से ही ग्रहण किया है, लेकिन अपनी मौलिकता के साथ ।

## रहीम

रहीम ने नीति प्रधान दोहों की रचना की है इनके दोहे नीति के क्षेत्र में अत्यन्त लोकप्रिय हुए । राजधर के एक दोहे पर रहीम का प्रभाव देखिए -

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय ।
प्यादे से फर्जी भयौ, टेढ़ो- टेढ़ो जाय ।।

। रहीम सतसई ।

कोलाहलु ऊपर करै, तुरत श्रवन हिंग जाइ ।
कहौ छमा क्यौं करि गहै, नीच ऊँच पद पाइ ।। [2]

---

।1। राजधर सतसई - दो० सं० - 25

।2। राजधर सतसई - दो० सं० - 45

दोनों दोहों में निम्नतम व्यक्ति से उच्च...
का भाव सन्निहित है । हो सकता है, राजधर ने यह भाव .

दोनों रहिमन एक है, जौ लौं बोलैं नाँहि ।
जान परत हैं काक पिक, रितु बसन्त के माँहि ॥

। रहीम ।

ज्यौं यदि ज्यौं सुरभि, बोलति है बेकाम ।
इक रंग कोकिल काग को, भेद न पाइहै ग्राम ॥[1]

। राजधर ।

दोनों दोहों में "कोयल और काग" का एक रंग (काला रंग) होने की समानता एवं वाणी का भेद होने के आधार पर अन्योक्ति द्वारा अभिव्यक्ति की गई है ।

राजधर ने यह आधार रहीम से ही ग्रहण किया होगा । या फिर दोनों ने ही संस्कृत के निम्नलिखित श्लोक से ग्रहण किया है -

काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिक काकयोः ।
वसन्ते तु पुनः प्राप्ते काकः काकः पिकः पिक : ॥

## रसखान

सेस महेस गनेस [illegible] दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं ।
जाहि अनादि अनंत अखंड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं ।
नारद से सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पर नाच नचावैं ।

। रसखान ।

ध्यावत रहत सुर मुनि सदा, नित नित थिर करि चित्त ।
तिनि हरि कौं सु ग्वालिनी, नाच नचावति नित्त ॥[2]

। राजधर ।

---

(1) राजधर सतसई दो० सं० - 79

(2) राजधर सतसई - दो० सं० - 483

परमेश्वर मात्र प्रेम से वशीभूत हो सकता है, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन रसखान और रामसहाय दोनों ने ही किया है ।

रसखान ने प्रथम तीन चरणों में ब्रह्म की महत्ता का प्रतिपादन किया है । अन्तिम अर्थात् चतुर्थ चरण में उसको । प्रेम से वशीभूत होकर । अहीर की छोहरियों द्वारा ।मात्र। छछिया भर छाछ पर नाच नचाते हुए दिखाया गया है ।

सवैया की तुलना में दोहा का कलेवर बहुत छोटा होता है, अतः रामसहाय ने दोहे की प्रथम पंक्ति में ब्रह्म की महत्ता का प्रतिपादन कर दिया है एवं द्वितीय पंक्ति में उसको ग्वालिनी द्वारा नचाते हुए दिखा दिया है ।

यह भाव रामसहाय ने निश्चित रूप से ही रसखान से ग्रहण किया है ।

ब्रह्म मैं ढूँढ्यौ पुरानन गानन, बेद रिचा सुन्यौ चौगुने चायन ।  
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितूँ, वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ।।  
हेरत हेरत हारि पर्यौ, रसखान बतायौ न लोग लुगायन ।  
देखौ दुरौ वह कुंज कुटीर में, बैठि पलोटत राधिका पायन ।।

। रसखान ।

जिनकी बघु बांछनि बरनि, परम पुरुष पहिचानि ।  
ते राधे पद मानु नहि, परी पायँ नृप आनि ।। [1]

। रामसहाय ।

इन दोनों ही दोहों में कृष्ण की ब्रह्म के रूप में भक्ति, एवं कृष्ण को राधिका के पैरों में पड़े दिखाकर, राधा की कृष्ण से श्रेष्ठता प्रतिपादन करने का भाव सन्निहित है । यह भाव रामसहाय ने रसखान से ग्रहण किया होगा ।

---

।1। रामसहाय सतसई - दो० सं० - 48।

# -: रीतिकाल :-

ØOOOOOOOØ

रीतिकाल में राजधर ने केशवदास, पद्माकर, सेनापति, बिहारी आदि से प्रभाव ग्रहण किया है । जैसा कि हम आगे स्पष्ट करेंगे । वस्तुतः सर्वाधिक प्रभाव राजधर ने बिहारी से ही ग्रहण किया है ।

## केशवदास

केशवदास जी ओरछा महाराज इन्द्रजीत सिंह के दरबारी कवि थे । इन्हीं महाराज इन्द्रजीत सिंह के वंशज ओरछा नरेश महाराज उदोत सिंह के आश्रय में राजधर जी ने अपनी सतसई लिखी । केशवदास जी भी मिश्र थे और राजधर जी भी जाति के मिश्र ब्राह्मण थे । हो सकता है, केशव के ही वंशज हों । ऐसी स्थिति में राजधर पर केशवदास का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था ।

केशवदास ने काव्यशास्त्र सम्बन्धी ४ ग्रन्थों की रचना की -
।1। रसिक प्रिया ।2। नख शिख ।3। कवि प्रिया ।4। छंद माला ।
"कवि प्रिया" के निर्माण का उद्देश्य कवि के शब्दों में है -
सुकुमार बुद्धि पाठकों के लिए काव्यशास्त्र जैसे जटिल विषय का सुगम अवबोध -

> समुझै बाला बालकहू, वर्णन पंथ अगाध ।
> कवि प्रिया केशव करी, छमियो कवि अपराध ।।

कवि प्रिया में केशव ने अलंकार को कविता का आवश्यक तत्व स्वीकार करते हुए सर्वगुण सम्पन्न अलंकार रहित कविता को उसी प्रकार शोभाहीन माना है, जिस प्रकार सर्वगुण सम्पन्न आभूषण रहित नारी -

> जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त ।
> भूषन बिन न बिराजई, कविता बनिता मित्त ।। ।कवि प्रिया ।

राजधर ने भी कविता के संबंध में लिखा है -

> अति सुवृत्त, सुबरन मई, मई ओप सब अंग ।
> अलंकार युत राजई, कविता वनिता रंग ।।[1] ।राजधर ।

---

।1। राजधर सतसई - दो० सं० - 339

केशव और राजधर दोनों ने ही "सुवरन", "सुवृत्त" अलंकार की कविता-वनिता के तत्वों को स्वीकार किया है ।

"सुवरन", "सुवृत्त" , "अलंकार" और "कविता-वनिता" शब्दों को देखकर निश्चित रूप से कहा जा सकता है, यहाँ राजधर पर केशव की स्पष्ट छाप है ।

दोनों में प्रमुख अन्तर यह है, कि केशव ने अलंकार के बिना कविता-वनिता की शोभा को स्वीकार नहीं किया, जबकि राजधर के अनुसार अलंकार से [और] कविता-वनिता की शोभा वृद्धि होती है । अर्थात् अलंकार कविता के शोभा वृद्धि कारक तत्वों में से एक है ।

एक उदाहरण और देखिए -

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहौं धौं उदार कौन की भई ।
देवता प्रसिद्ध सिद्ध, ऋषि-राज तप वृद्ध,
कहि कहि हारे सब, कहि न कहूँ लई ।
भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है,
"केशवदास" केहू ना बखानी काहू पै गई ।
वर्णे पति चार मुख, पूत वर्णे पांच मुख,
नाती वर्णे षट्मुख, तदपि नई नई ॥

। केशव ।

एक एक की त्रिगुणि है, अवरन रह्यो न जाइ ।
पारवती के भाव लखि, ससुर, पुत्र पति पाइ ॥[1]

। राजधर ।

राजधर ने यह उपर्युक्त आधार के कवदास से ही ग्रहण किया होगा, किन्तु राजधर को उतनी सफलता नहीं मिली है, क्योंकि राजधर ने "ससुर, पुत्र, पति पाइ" में क्रम गड़बड़ी कर दी है । ससुर के पश्चात् पति तत्पश्चात् पुत्र का उल्लेख होना चाहिए था ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। राजधर सतसई - दो0 सं0 - 219

## पद्माकर

अधखुली कंचुकी उरोज अध आधे खुले, अधखुले वेष नख रेखन के झलकैं ।
कहै पद्माकर नवीन अध नीवी खुली, अधखुले छहरि छुराके छोर छलकैं ।
भोर जग प्यारी अध उरध इतै की ओर, भाषी छिति छिरकि उघारि अध पलकैं ।
आँखें अध खुली अध खुली खिरकी है खुली, अध खुले आनन पै अध खुली अलकैं ।

। पद्माकर ।

खुली अलक सिर भाल पर, रही व्याल सम सोहि ।
खुली अध खुली पलक छवि, पलक न बिसराति मोहि ।।[1]

। रामसहाय ।

आधी खुली हुई पलकों से विशिष्ट सौन्दर्य बोध प्राप्त करना दोनों कवियों में समान रूप से दृष्टिगत होता है । शायद, रामसहाय ने पद्माकर के उपर्युक्त पद से ही यह भाव ग्रहण किया होगा ।

## : बिहारी :

रामसहाय सतसई पर सबसे अधिक छाप बिहारी सतसई की पड़ी है । सम्भवतः रामसहाय ने बिहारी सतसई से ही प्रभावित होकर अपनी कृति की रचना की होगी, जैसा कि हम अनेक उदाहरणों से स्पष्ट कर सकते हैं -

नाव नहीं निकसत, घेरि रहे घर माँहि ।
गोरसु चाहत फिरत हो, गोरस चाहत नाँहि ।।[2]

तो रस राचिय बिंदु लग्यो, गोरस की चहि चाह ।
तो रस पकहि अरे बेर कै, चाहयों चाहत नाह ।।[3]

---

(1) रामसहाय सतसई - दो० सं० - 649
(2) बिहारी रत्नाकर - दो० सं० - 126
(3) रामसहाय सतसई - दो० सं० - 120

बिहारी के दोहे में वाग्विदग्धा नायिका नायक से "गोरस" शब्द के श्लिष्ट प्रयोग से संकेत-स्थल। नायिका का घर। पर पहुँचने हेतु संकेत कर रही है। रामधर के दोहे में दूती नायिका से नायक का प्रणय निवेदित कर रही है।

यहाँ बिहारी एवं रामधर ने "गोरस"शब्द का प्रयोग किया है। बिहारी ने जो चमत्कार "गोरस" शब्द के श्लिष्ट प्रयोग से उत्पन्न किया है वह रामधर ने नहीं किया है।

रामधर ने बिहारी से प्रेरणा तो ग्रहण की है, किन्तु चमत्कार उत्पन्न नहीं कर सके हैं।

जदपि नाहिं नाहीं नहीं, बदन लगी जक जाति।
तदपि भौंह हाँसी भरिनु, हाँसीयै ठहराति ॥ [1]

। बिहारी ।

दृग चंचल चंचल करनि, अंचल पकरति सोइ।
नाहि की जक मुँह लगी, नाही लगिथिर होइ ॥ [2]

। रामधर ।

दोनों ही कवियों ने चेष्टालंकार "कुट्टमित" ।कृत्रिम-निषेध। का चित्रण किया है।

बिहारी कहते हैं, कि यद्यपि नायिका मुँह से "नहीं - नहीं" की रट लगा रही है, किन्तु हँसी भरी भौंहों के कारण। वह नहीं - नहीं की रट। हाँसी। हाँ सी ही। ठहरती है।

रामधर ने भी इसी तथ्य को कहने की चेष्टा की है कि नायक के द्वारा अंचल पकड़ने पर नायिका "नहीं - नहीं" की रट लगा रही है। नायिका के चंचल नैनों से उसके मन की बात भी स्पष्ट हो रही है। फिर भी वह नायक से लगकर स्थिर नहीं होती है।

रामधर ने बिहारी से यह भाव ग्रहण किया होगा, किन्तु बिहारी ने "हाँसी" शब्द के श्लिष्ट प्रयोग से जो चमत्कृति उत्पन्न की है, वह रामधर नहीं कर सके।

---

।1। बिहारी रत्नाकर - दो० सं० - 324

।2। रामधर सतसई - दो० सं० - 139

पीठि दिए ही नैंक मुरि, कर घूँघट पटु डारि ।
भरि गुलाल की मूठि सौं, गई मूठि सी मारि ॥ [1]

। बिहारी ।

इत उत ह्वै अति लपकती, छल सौं आपु छपाइ ।
दीठि लाल की लाल कैं, मूठि घालि ही जाइ ॥ [2]

। राजधर ।

बिहारी ने "मूठ" शब्द से यमक अलंकार द्वारा चमत्कृति उत्पन्न की है, किन्तु राजधर ने बात साधारण ढंग से कही है ।

राजधर ने बिहारी से ही "मूठ मारने का" भाव ग्रहण किया होगा, किन्तु चमत्कृति एवं भावाभिव्यक्ति की उस ऊँचाई तक नहीं पहुँच सके ।

चलतु घैर घर घर तऊ, घरी न घर ठहराइ ।
समुझि उही घर कौं चलै, भूलि उही घर जाइ ॥ [3]

। बिहारी ।

इत उत ह्वै ग्वालनि करति, बैठी गली घुमेहु ।
मोहन मोही सब लखि, भयी कामल देहु ॥ [4]

। राजधर ।

दोनों ही कवियों ने नायिका के विभ्रम संचारी भाव की अभिव्यंजना की है । यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है, कि अचेतनावस्थित मनुष्य अचेतन मन के संस्कारों के अनुरूप कार्य कर बैठता है । नायिका के अवचेतन मन में नायक के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है । वह । अचेतनावस्था में । प्रेम में डूबी हुई है, अतः वह अनजाने में ही नायक के घर की ओर उन्मुख हो जाती है । उसके पैर उसी ओर चल पड़ते हैं ।

इस भाव की प्रेरणा राजधर ने बिहारी से ही ग्रहण की होगी ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

।1। बिहारी रत्नाकर - दो० सं० - 350

।2। राजधर सतसई - दो० सं० - 256

।3। बिहारी रत्नाकर - दो० सं० - 460

।4। राजधर सतसई - दो० सं० - 249

बुधि अनुमान प्रमान श्रुति, किएँ नीठि ठहराई ।
सूक्ष्म कटि पंर ब्रह्म की, अलख लखी न जाई ।। [1]

।बिहारी ।

बहुत भाँति बरनन कहयु, बरनी कछू न जाइ ।
अति सूक्ष्म कटि तट लखत, नीठि दीठि ठहराइ ।। [2]

। राजधर ।

दोनों ही कवियों ने नायिका की कटि वर्णन में ऊहा का आश्रय लिया है ।

बिहारी की नायिका की कटि ब्रह्म के समान बिलकुल अदृश्य है, जबकि राजधर की नायिका की कटि कुछ गनीमत है, कि बड़ी मुश्किल से ही सही, कम से कम दृश्य तो है ।

जुवति जोन्ह में मिलि गई, नैकु न होतु लखाइ ।
सौंधे के डोरे लगी, अली चली सँग जाइ ।। [3]

। बिहारी ।

विमल सुधारस धवल गृह, सित सारी तन ऐन ।
उदित सरद की जोन्ह में, सुंदरि देह लखैन ।। [4]

। राजधर ।

दोनों ही कवियों ने गौरवर्ण नायिका के जुन्हाई (ज्योत्स्ना) में (तद्रूप होने के कारण) न दिखाई पड़ने के भाव की अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

अंग अंग नग जगमगत, दीप सिखा सी देह ।
दिया बढ़ाये हू रहै, बड़ौ उज्यारौ गेह ।। [5]

। बिहारी ।

अधिक अँधेरे भौन में, परगट परति लखाइ ।
सहज उज्यारी ह्वै रहै, जहाँ जु तिय जाइ ।। [6]

। राजधर ।

दोनों ही कवियों ने नायिका की दीप्ति से अँधेरे घर में प्रकाश फैलने का कथन किया है ।

यह भाव राजधर ने बिहारी से ग्रहण किया होगा ।

---

(1) बि०र० - 648 (2) रा०स० - 382 (3) बि०र० - 07 (4) रा०स० - 630 (5) बि०र० - 69 (6) रा०स० - 329

छिनकु चलति ठठुकति छिनकु, भुज प्रीतम गल डारि ।
चढ़ी अटा देखति घटा, बिज्जु छटा सी नारि ।। [1]

। बिहारी ।

देखन को घन की घटा, अटा चढ़ी एक बाम ।
लसति धरे तन चूनरी, चपला सी अभिराम ।। [2]

। राजधर ।

बिहारी और राजधर दोनों की नायिका अटा पर चढ़कर घटा देख रही है और । स्वयं। विद्युत छटा सी शोभित हो रही है ।

यह चित्र बिहारी से ही राजधर ने ग्रहण किया है ।

देह दुलहिया की बढ़े, ज्यौं जोबन जोति ।
त्यौं त्यौं लखि, सौत्यैं सबैं, बदन मलिन मुख होति ।। [3]

। बिहारी ।

लखि लखि लोचन नलिन दल, सौति मलिन मुख होति ।
सुकल पख के चंद लौं, बाढति है मुख जोति ।। [4]

। राजधर ।

ज्यौं - ज्यौं नायिका की दीप्ति बढ़ती है, त्यौं - त्यौं सपत्नियों के मुख मलिन होते जाते हैं ।

यह भाव राजधर ने बिहारी से ही ग्रहण किया है ।

---

।1। बिहारी रत्नाकर - दो० सं० - 384
।2। राजधर सतसई - दो० सं० - 602
।3। बिहारी रत्नाकर - दो० सं० - 40
।4। राजधर सतसई - दो० सं० - 387

## सेनापति एवं बिहारी का संयुक्त प्रभाव

दूरि जदुराई, सेनापति सुखदाई, देखौ आई रितु पावस न पाई प्रेम पतियाँ ।

× × × ×

× × × ×

बीति औधि आवन की, लाल मन भावन की, डग भई बावन की, सावन की रतियाँ ।

। सेनापति ।

रह्यौ ऐंचि अंतु न लहै, अवधि दुसासन बीरु ।
आली बाढ़त बिरह ज्यौं, पंचाली कौ चीरु ।। [1]

। बिहारी ।

सावन सौं है पग बढ़े, पंचाली सौं चीर ।
मो तन बाढ्यौ बिरह अति, लगि बरसा को नीर ।। [2]

सेनापति ने प्रोषित पतिका के लिए पावस ऋतु की रात्रि के विरह को " बावन का डग" कहा, और बिहारी ने " पंचाली का चीर" ।

राज्यर ने इन दोनों से ही संयुक्त संस्कार ग्रहण करके अपने दोहे को निर्मित किया होगा ।

---

(1) बिहारी रत्नाकर - दो० सं० - 400

(2) राज्यर सतसई - दो० सं० - 293

## परिपाटी रूप में गृहीत प्रभाव

कतिपय काव्य भाव परिपाटी के रूप में भी गृहीत होते रहे हैं। जैसे राजधर की खण्डिता नायिका के चित्रों को सूक्ष्मता से देखा जाय तो स्पष्ट ही आता है, कि ये एक परम्परागत परिपाटी की ही पुष्टि कर रहे हैं। यह परम्परा संस्कृत से हिन्दी में आई है। और भी सूक्ष्मता से देखा जाय तो ज्ञात होता है कि जो काव्य भाव संस्कृत से परिपाटी रूप में हिन्दी में बिहारी तक आये अथवा बिहारी ने सीधे संस्कृत से ही ग्रहण किये हैं, तब राजधर ने बिहारी से ही ग्रहण किये हैं। आगे हम यही स्पष्ट कर रहे हैं। उदाहरणार्थ --

### अमरु - शतक

लाक्षालक्ष्म ललाटपट्टमभितः केयूर मुद्रा गले वक्त्रे
कज्जल कालिमा नयनयोस्ताम्बूलरागोदयः।
दृष्ट्वा कोपविधायि मण्डनमिदं प्रातश्चिरं प्रेयसो
लीलातामरसोदरे मृगदृशः श्वासाः समाप्तिं गताः ॥ ।

। अमरुक शतकम् ।

। ललाट पर (अन्य स्त्री के चरणों में गिरने से लगा हुआ) महावर का चिन्ह, कंठ में (आलिंगन सूचक) बाजूबंद की रेखा, मुख में (नायिका द्वारा चुम्बन सूचक) ताम्बूल का रंग, यह प्रियतम का कोप उत्पन्न करने वाला श्रृंगार सवेरे बहुत देर तक देखकर कुरंग लोचनी के श्वास लीला कमल के भीतर ही समाप्त हो गए अर्थात् लीला कमल सूंघती हुई मूर्छित हो गई।।

### सूरदास xxx

।।। प्यारी चिते रही मुख पिय को।
अंजन अधर कपोलनि बंदन, लागौं काहू तिय को।

---

।।। अमरुक शतकम् - श्लोक सं० - 88

।2।　चन्द्रावलि धाम स्याम भोर भये आये ।

×　　×　　×

बिन गुन बनी हृदय माल, ता बिच नख छत रसाल ।
लोचन दोउ दरति लाल, ऐसी रुचि बाढ़ी ।
जावक रँग लग्यौ भाल, चंदन भुज पर बिसाल ।
पीक पलक अधर झलक, काम प्रीति गाढ़ी ।

।3।　लाल उनींदे लोचना, आलस भरि आए ।
उरझि काम की बेलि सौं कौन बिलमाए ।
सिथिल बँध सिर पाग के, जावक रँग भीने ।
लाली भरे लाल की सब तनु दीने ।

।4।　आजु हरि रैनि उनींदे आए ।
बिनु गुन माल बिराजति उर पर, चंदन रेख लगाए ।
अधर अधर मिलाइ महावर, नयन तमोर खवाए ।

।5।　धन्य आजु यहि दरस दियो ।

×　　×　　×　　×

भले स्याम यह भली भई भावती, मिले भले मिलि भली करी ।

। सूर सागर, खण्डिता वर्णन ।

## देव

।1।　गात ते गिरत फूल, पलटे दुकूल अनुराग अनुकूल भाग जागे बड़ भाग है ।
अंजन अधर पीक नख रेख लाल-लाल, जावक तिलक भाल लसत सुहाग है ।
भौंहें अलसौहें, पल सौहें पगे पीक रस रँग मन नैन रैनि जागे लगे लाग है ।
काहे को लजात अलसात से बदन मोहि महा सुखदेत आए देव पँच पाग है ।

।2। औरनी आये दया करि मोपर, बैठिए दर्पन देति मँगाय ।
ओठन अंजन लीक लसै, दृग देख दुहूँ पल पीक लगाय ।

।3। पीक भरी पलकैं झलकैं अलकैं जुगई जु लसीं भुव बीच की ।

।4। भोर ही भूरि भराई भरे उत भाँतिन भाँतिन कै मनभाय ।

× × × × × × ×

× × × × × × ×

लाल भले हो भली सिख दीन्ही, भली भई जु आज भले बनि आए ।

। देव ।

## बिहारी

।1। पलनु पीक अंजनु अधर, धरे महावर भाल ।
आजु मिले तो भली करी, भले बने हो लाल । 1

।2। पावक सो नैननु लगै, जावक लाग्यौ भाल ।
मुकुर होहुगे नेक मैं, मुकुर बिलोकौ लाल ।। 2

।3। कत बेकाज चलाइयति, चतुराई की चाल ।
कहे देत यह रावरे, सब गुन निरगुन माल ।। 3

## राजधर

।1। उगलित ते पिय कंठ तैं, धरि अंजनु अधरानि ।
आयहु पावक भाल दृग, अब लाल हरषानि ।। 4

---

।1। बिहारी रत्नाकर - दो० सं० - 22
।2। बिहारी रत्नाकर - दो० सं० - 79
।3। बिहारी रत्नाकर - दो० सं० - 446
।4। राजधर सतसई - दो० सं० - 358

(2) सुघट पातु लागी करन, मृग मद मिलि घनसार ।
आजु विराजत है भली, विनु गुन हिय पर हार ।।[1]

(3) अनखौहैं सौंहैं दृगनि, बिथुरे पेंचनि पाग ।
लटपटाई आए इहाँ, मेरे बड़े सभाग ।।[2]

उपर्युक्त उदाहरणों से देखने से स्पष्ट है कि अमरुक शतक की खण्डिता के नायक का जो चित्र खींचा गया है, उसी के आधार पर सूर और देव ने चित्रण किया है, किन्तु बिहारी ने खण्डिता की व्यंग्योक्तियों का आश्रय लिया है, जिसमें अन्य नायिका संभोगजन्य विशिष्ट चिन्हयुक्त नायक का चित्रण एवं उसे देखकर खण्डिता की प्रतिक्रिया दोनों की झलक मिलती है । इस प्रकार बिहारी की खण्डिता मध्याधीरा है ।[3] राजधर ने बिहारी को ही आधार बनाकर खण्डिता की व्यंग्योक्तियों की वर्णना की है ।

## कालिदास

(1) यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः ।

। कालिदास कुमार संभव ।

(2) कहा कुसुम कह कौमुदी, कितक आरसी जोति ।
जाकी उजराई लखै, आँखि ऊजरी होति ।।[4] । बिहारी ।

(3) अति पवित्र तन तियन के, छवि के करत उदोत ।
निरखि ऊजरे अंग सब, नैन ऊजरे होत ।।[5]

---

(1) राजधर सतसई - दो० सं० - 379
(2) राजधर सतसई - दो० सं० - 421
(3) साहित्य दर्पण, विश्वनाथ - 3/60
(4) बिहारी रत्नाकर - दो० सं० 572
(5) राजधर सतसई - दो० सं०-233

कालिदास के अनुसार रूप पापवृत्ति की ओर उन्मुख नहीं होता और अगर होता है, तो वह, रूप नहीं ।

इन्होंने सौन्दर्य एवं सात्विकता को साथ-साथ देखा है अर्थात् सौन्दर्य हमें उदात्त वृत्ति की ओर प्रेरित करने वाला है । वह मनुष्य को पापोन्मुख नहीं बनाता है ।

संभवतः, बिहारी ने इसी भाव की अभिव्यक्ति के लिये कहा है कि " नायिका की उजराई ।उज्ज्वलता। देखकर आँखें उजारी । उज्ज्वल। हो जाती है ।

बिहारी से प्रेरित होकर राजधर ने यह कथन सामान्य रूप से सभी नायिकाओं के संबंध में कह दिया है, कि उनके । नायिकाओं के । उज्ज्वल अंग देखकर नयन उज्ज्वल हो जाते हैं ।

यह भाव निश्चित ही राजधर ने बिहारी से ग्रहण किया है ।

।1। संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ ------------------ । रघुवंश, कालिदास

।2। अंग-अंग नग जगमगत, दीप सिखा सी देह ।[1] । बिहारी ।

।3। शिशिर रूप बाधा हरनि, और न ऐसी होति ।
दीप सिखा तैं सौ गुनी, राधा की मुख जोति ।।[2]

कालिदास ने नायिका की दीप्ति के लिए दीप शिखा उपमान को प्रयुक्त किया है । संभवतः यही उपमान बिहारी ने कालिदास से ग्रहण किया है ।

राजधर ने नायिका राधा को दीप शिखा से सौ गुनी दीप्तिमती कह दिया है ।

यहाँ राजधर ने नायिका की दीप्ति के लिए " दीप शिखा" उपमान संभवतः बिहारी से ही ग्रहण किया है ।

## भर्तृहरि

कामिनी काय कान्तारे, कुच पर्वत दुर्गमे ।
मा संचर मनः पान्थ तत्रास्ते स्मर-तस्करः ।।[3] । श्रृंगार शतक ।

---

।1। बिहारी रत्नाकर - दो0 सं0 - 69

।2। राजधर सतसई - दो0 सं0 - 329

।3। श्रृंगार शतक, भर्तृहरि - श्लोक सं0 - 75

कुच गिरि चढ़ि, अति थकित ह्वै चली डीठि मुँह चाड़ ।
फिरि न टरी, परियै रही, गिरी चिबुक की गाड़ ।।[1] ।बिहारी।

कुच गिरिवर की शिखर चढ़ि, उतर न सिरत सकाई ।
नाभि कूप वाकी लखी, छूटि कढ्यो न जाई ।।[2] ।रसनिधि।

भर्तृहरि ने उरोजों की दुर्गम घाटियों में सौन्दर्य रूपी ठग द्वारा मन पथिक के लूटे जाने का वर्णन किया है ।

बिहारी ने भर्तृहरि से प्रेरित होकर "दृष्टि का कुच गिरिवर पर चढ़कर अति थकित होकर चिबुक के गड्ढे में विश्राम करना" लिखा है ।

बिहारी से प्रेरित होकर रसनिधि के चित्त ने भी कुच गिरिवर पर चढ़ाई कर दी और नाभि - कूप में डूबकर निकल नहीं सका ।

यह/भाव भर्तृहरि से बिहारी और बिहारी से रसनिधि तक आया है, फिर भी रसनिधि बिहारी से ही प्रभावित हैं ।

निष्कर्ष :-

रसनिधि पर प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी के रीतिकाल तक के पूर्ववर्ती कवियों के प्रभाव को सारांशतः कह सकते हैं, कि -

।1। प्राकृत की हालकृत गाथा सप्तशती का रसनिधि पर प्रत्यक्षतः कोई प्रभाव नहीं है ।

।2। रसनिधि जी संस्कृत साहित्य से कुछ परिचित थे, अतः उन्होंने संस्कृत के कतिपय प्रसिद्ध कवियों - अमरुक, गोवर्धनाचार्य एवं श्री हर्ष आदि से किंचित प्रभाव ग्रहण किया है ।

।3। हिन्दी के भक्तिकालीन - कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, रहीम एवं रसखान तथा रीतिकालीन केशवदास, सेनापति एवं पद्माकर - कवियों से रसनिधि ने फुटपुट प्रभाव ग्रहण किया है ।

---

।1। बिहारी रत्नाकर - दो० सं० - 26
।2। रसनिधि सतसई - दो० सं० - 380

।4।  राजधर को सर्वाधिक प्रभावित किया है, सर्वश्रेष्ठ सतसईकार बिहारी ने। देशकाल की दृष्टि से बिहारी ही इनके निकटस्थतम थे। बिहारी सतसई से ही प्रेरणा ग्रहण करके इन्होंने अपनी सतसई की रचना की होगी। राजधर सतसई के अनेक दोहों के भाव बिहारी सतसई से ही सीधे लिये गये हैं, यहाँ तक की कतिपय दोहों में तो बिहारी के शब्दों तक को गृहीत किया गया है।

।5।  राजधर अनेक कवियों से भाव ग्रहण करते हुए भी अपनी मौलिकता को अक्षुण्ण रखते हैं।

।।। 00 ।।।

अध्याय - 8

## सतसईकारों में रामधर का स्थान

## OO सतसईकारों में राजधर का स्थान OO

सतसई साहित्य की एक सुदीर्घ परम्परा है, अतः साधारणतः, समस्त सतसईकारों में राजधर का स्थान निर्धारण करना न संभव ही है और न ही समीचीन। फिर हिन्दी में तो विभिन्न विषयों पर सतसइयों का प्रणयन हुआ है, अतः विषय वैभिन्न्य को देखते हुए, किसी एक सतसईकार का समस्त स्वक्षेत्रीय एवं परक्षेत्रीय सतसईकारों में स्थान निर्णय कर देना सर्वथा भ्रामक एवं निराधार होगा। जो जाति, धर्म, प्रकृति, गुणों में असमान है, उनकी तुलना का आधार ही क्या, और बिना आधार के स्थान का निर्धारण हो ही नहीं सकता है। अतः स्थान का निर्धारण स्वक्षेत्रीय में ही संभव होता है।

प्राकृत में गाथा सप्तशती एवं संस्कृत में तदनुप्रेरित आर्यासप्तशती का प्रणयन हुआ। ये दोनों ही शृंगारिक सतसइयां हैं। हिन्दी में भक्तिकालान्तर्गत भक्ति प्रधान तुलसी सतसई एवं नीति प्रधान रहीम सतसई की रचना हुई। रीतिकाल में बिहारी सतसई से ही शृंगारिक सतसइयों का श्री गणेश हुआ है। ध्यातव्य है कि बिहारी के परवर्ती जितने भी रीतिकालीन शृंगारिक सतसईकार - मतिराम, विक्रमसाहि, राम सहाय एवं रसनिधि - हैं, इन सभी ने बिहारी सतसई को आदर्श मानकर अपनी-अपनी सतसइयों का प्रणयन किया है। वैसे इनका अपना-अपना वैशिष्ट्य है, परन्तु फिर भी इन्होंने अनेक भावों और कहीं-कहीं बिहारी की पदावली तक का अनुकरण किया है। राजधर का स्थान इन्हीं। बिहारी परवर्ती रीतिकालीन शृंगारिक। सतसईकारों के बीच में ठहरता है।

रीतिकालीन शृंगारिक सतसईकारों में बिहारी और मतिराम ने ही अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। शेष सतसईकार अपना/विशिष्ट स्थान नहीं बना सके। अतः राजधर का स्थान निर्णीत करने हेतु हम विशेषतः इन्हीं दो सतसईकारों - बिहारी और मतिराम - से तुलना करके राजधर का स्थान निर्धारण करेंगे। और स्थान निर्धारण करने के लिये रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयों की सामान्य विशेषताओं को आधार मानकर अध्ययन करेंगे।

अतः तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने से पूर्व इन सतसइयों की सामान्य विशेषताओं का उद्घाटन करना आवश्यक है ।

## oo रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसइयों की विशेषतायें oo

ये सतसइयाँ कोष के अमुक्तरचित भेद के अन्तर्गत आती हैं । इनका नामकरण कवि के नाम पर हुआ है । इन सतसइयों में सात सौ की निर्धारित संख्या से कुछ कम अधिक छन्दों की रचना की गई है । इनमें श्रृंगार रस का प्राधान्य है । श्रृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों का गौण स्थान प्रयोग किया गया है । कम सम इनमें नीति संबंधी सूक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं । प्रायः इन सतसइयों का मंगलाचरण राधा-कृष्ण की वन्दना से हुआ है, किन्तु राम सतसई में गणेश वन्दना एवं राजधर सतसई में गणेश एवं सरस्वती वन्दना से मंगलाचरण किया गया है । श्रृंगारपरक छन्दों में प्रायः राधा-कृष्ण ही नायिका-नायक के रूप में लिये गये हैं । श्रृंगार रस की प्रमुख आलम्बन नायिका ही ठहरती है, अतः इन सतसइयों में नायिका भेद का महत्व पूर्ण स्थान है, जिसके अन्तर्गत विभिन्न नायिकाओं के भेदोपभेदों की विस्तृत वर्णना दृष्टव्य है । आलम्बन रूप में नायिका का रूप चित्रण " नख शिख वर्णन " की परिपाटी के अन्तर्गत हुआ है, जिसमें परम्परागत उपमानों का प्रयोग करके सौन्दर्य निरूपण किया गया है । उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नायिकाओं के " यौवनालंकार" अथवा "हावों" की रमणीय वर्णना है । प्राकृतिक उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत प्रायः षड् ऋतुओं का उद्दीपन रूप में चित्रण किया गया है । अनुभावों के अन्तर्गत प्रायः "हावों" का ही चित्रण है । प्रायः सभी श्रृंगारोचित संचारी भावों की वर्णना भी देखी जा सकती है । इन सभी सतसइयों में नागर भावनाओं - कामशास्त्रीय भावनाओं - का चित्रण देखना सम्भव है । श्रृंगार रस के दोनों भेदों - संयोग एवं विप्रलम्भ - की वर्णना है, किन्तु संयोग श्रृंगार का अपेक्षाकृत प्राधान्य है । संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत दर्शन, स्पर्शन, चुम्बनादि का रमणीय चित्रण है । विप्रलम्भ श्रृंगार के अन्तर्गत पूर्वराग, मान एवं प्रवास विप्रलम्भ का वर्णन है , जिसमें विप्रलम्भ के भेदोपभेदों की वर्णना है । मान वर्णन में इन सतसईकारों ने अधिक रुचि प्रदर्शित की है । प्रवास विप्रलम्भ के अन्तर्गत नायिका की विरहजन्य " काम की दस दशाओं " का चित्रण है । करुण विप्रलम्भ का इन सतसइयों में अभाव है । प्रकृति वर्णन में षड् ऋतुओं का, कहीं-कहीं बारहमासे का परम्परागत रूप में वर्णन

हुआ है, जिसमें इन्होंने प्रकृति के उद्दीपन रूप का आधिक्य दिखाया है। धार्मिक भावनाओं की दृष्टि से पौराणिक विचारधारा से प्रभावित हैं। कृष्ण-कथा एवं राम-कथा को भी इन्होंने पर्याप्त उपजीव्य बनाया है। वैसे ये सतसईकार भक्ति भावना के संबंध में समन्वयवादी विचारधारा के हैं। कुछ सतसइयों में राज प्रशस्ति संबंधी दोहे भी पाये जाते हैं जिनमें आश्रयदाता राजा की दानवीरता एवं वैभव का ही चित्रण है। इन सतसइयों में ब्रज भाषा का प्रयोग किया गया है। इन सतसइयों में दोहा छंद का ही प्रयोग है, किन्तु कहीं-कहीं एकाध सोरठा भी देखा जा सकता है। इन सतसईकारों का अलंकारों की ओर झुकाव है। इन्होंने प्रायः परम्परायुक्त उपमानों का ही प्रयोग किया है। सतसईकारों ने कल्पना की समाहार शक्ति का प्रयोग किया है, जिसमें बिहारी अग्रगण्य हैं। भाषा के गुणों की दृष्टि से इनमें माधुर्य एवं प्रसाद गुण विद्यमान हैं। शब्द शक्ति की दृष्टि से बिहारी सतसई में व्यंजना की प्रधानता है, किन्तु शेष में लक्षणा एवं अभिधा का ही प्राधान्य है।

इन उपर्युक्त, रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयों की सामान्य विशेषताएँ एवं काव्य शास्त्रीय दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करके अब हम राजयर का इन सतसईकारों में स्थान निर्धारित करेंगे।

## भाव पक्ष

जैसा कि हम देख चुके हैं, रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयों की सर्वप्रमुख विशेषता है - उनमें शृंगार रस का प्राधान्य होना। उनमें शृंगार के दोनों भेदों - (1) सम्भोग एवं (2) विप्रलम्भ - का वर्णन है।

अतः, सर्वप्रथम हम इन सतसइयों में वर्णित शृंगार रस के विभाव, अनुभाव एवं संचारीभाव की दृष्टि से तुलना करके सतसईकारों का स्थान निर्धारित करेंगे।

### विभाव :-

<u>आलम्बन विभाव</u> :- शृंगार रस के आलम्बन - परस्पर अनुरक्त युवक युवती (नायक-नायिका) हैं।

रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयों में आलम्बन विभाव के अन्तर्गत - नायिका भेद एवं नायिका का रूप चित्रण (नख शिख वर्णन) - विशेष रूप से देखा जा सकता है।

## नायिका भेद

रीतिकालीन सतसईकारों में केवल मतिराम ही आचार्य कवि हैं। उन्होंने "रसराज" के प्रारम्भ में नायिकाओं के भेद, लक्षण एवं उदाहरण सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किये हैं। उदाहरणों के जितने भी दोहे हैं, उनको "मतिराम सतसई" में भी समावेश कर दिया है। इस प्रकार उनकी सतसई में नायिका एवं नायक के समस्त भेद-उपभेदों का समावेश स्वतः हो गया है।

बिहारी ने लक्षण ग्रंथ तो नहीं लिखा, पर यह निश्चित है कि सतसई का प्रणयन करते समय उनके मस्तिष्क में नायिकाओं के भेद और लक्षण अवश्य घूम रहे थे। अतः, बिहारी सतसई में भी प्रायः समस्त भेद-उपभेदों को देखा जा सकता है। बिहारी और मतिराम का चित्त स्वकीया की अपेक्षा परकीया और वेश्या में अधिक रमा है, संभवतः कुछ इसका कारण उनकी कृष्ण भक्ति के साथ-साथ अत्यधिक रसिक प्रवृत्ति ही है। जबकि, रामसहाय का चित्त स्वकीया की वर्णना में अधिक रमा है। स्वकीया के पातिव्रत्य, शील और मर्यादा का अधिक वर्णन उन्होंने किया है। स्वकीया के भेदों में मुग्धा के अन्तर्गत अंकुरित यौवना, नवोढ़ा एवं ज्ञात यौवना को वर्ण्य बनाया है। नवोढ़ा के अन्तर्गत रतिवामा एवं समधिकलज्जावती का वर्णन किया है। मध्या के उपभेद स्वरूप प्ररूढ़ यौवना, प्ररूढ़स्मरा, मध्यमव्रीडिता एवं प्रौढ़ा के उपभेदों में स्मरान्धा, गाढ़तारुण्या, समस्तरतकोविदा, भावोन्नता, स्वल्पव्रीडा, आक्रान्ता एवं आनन्दसम्मोहवती की वर्णना की है। परकीया के उपभेदों में गुप्ता। वृत्तसुरतगोपना। वाग्विदग्धा एवं क्रिया विदग्धा, लक्षिता, कुलटा एवं मुदिता की वर्णना है। अवस्थाभेदानुसार - वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता एवं स्वाधीन भर्तृका, खण्डिता अभिसारिका, प्रोषितपतिका। दशानुसार मानवती एवं प्रेमगर्विता, गुणानुसार मध्यमा एवं जात्यानुसार पद्मिनी की वर्णना रामसहाय सतसई में देखी जा सकती है। दूती वर्ग की वर्णना में रामसहाय ने विशेष सफलता प्राप्त किया है।

यहाँ ध्यातव्य है, कि बिहारी की परकीया में अधिक रुचि है किन्तु रामसहाय की स्वकीया में। रामसहाय ने सामान्या का वर्णन बिल्कुल नहीं किया। नायक भेद में धृष्ठ एवं शठ नायक से संबंधित दोहे नहीं लिखे। इस प्रकार हम देखते हैं, कि रामसहाय का श्रृंगारिक एवं दरबारी कवि होते हुए भी संभवतः मर्यादा स्थापन की ओर झुकाव है।

रसलीन के बाद नायिका भेद की दृष्टि से राम सहाय, विक्रमसाहि एवं रसनिधि का क्रमशः स्थान ठहरता है, किन्तु इनका विशेष योगदान नहीं है ।

निष्कर्षतः, नायिका भेद के शास्त्रीय भेद-उपभेदों की दृष्टि से मतिराम एवं बिहारी के पश्चात् रसलीन का स्थान ठहरता है, किन्तु आदर्श स्थापन की दृष्टि से ये प्रथम हैं ।

## :: नखशिख वर्णन ::

रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसइयों में नखशिख वर्णन प्रबन्धबद्ध न होकर यत्र-तत्र बिखरा हुआ है । जैसा कि हम स्थापित कर चुके हैं कि रीतिकालीन सतसईकारों का झुकाव वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य की ओर है एवं डा० नगेन्द्र के अनुसार "रीतिकाल में वस्तुपरकता एक दूसरे ही रूप में मिलती है- वह है परिपाटीयुक्त उपमान आदि का परिगणन । इस प्रकार का वर्णन प्रायः कवि की व्यक्तिगत भावना से शून्य होता है । उसमें भावगत सामंजस्य के स्थान पर प्रायः उपमानों और प्रतीकों का वस्तुपरक सामंजस्य ही मिलता है ।"[1] डा० नगेन्द्र का यह कथन सभी रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसईकारों के नखशिख वर्णन पर भी लागू होता है । फिर भी इन सतसईकारों की अपनी विशेषताएं हैं ।

डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने बिहारी की नखशिख वर्णन संबंधी प्रवृत्तियाँ- (1) बाह्य प्रसाधनों की हीनता (2) सौन्दर्य का मादक प्रभाव (3) सौन्दर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन (4) शास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर सौन्दर्य की व्यंजना - दर्शायी है ।[2] उनके अनुसार " बिहारी का समस्त नखशिख उपर्युक्त चारों प्रवृत्तियों से युक्त है । नखशिख वर्णन के पीछे उनका लक्ष्य विभिन्न अंगों की खानापूर्ति करना ही रहा है । ---- वे अपने वर्णन को प्रभावशाली बनाने के लिए बुद्धि एवं कल्पना प्रसूत तथ्यों का आश्रय ग्रहण करते हैं, किन्तु उनके पीछे भावना की तरलता न होने के कारण उनका निरूपण शुष्क और नीरस बन गया है ।[3]

---

(1) रीति काव्य की भूमिका, डा० नगेन्द्र - पृ० 95

(2) महाकवि बिहारी का श्रृंगार निरूपण , डा० गणपति चन्द्र गुप्त - पृ० 20,21,22

(3) ---------------- वही ---------- ---------- पृ० 22

रसवार ने समानानुपात नखशिख वर्णन किया है । इनकी नखशिख वर्णना की निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है -

(1) प्रेमानुभूतियुक्त सरस वर्णन (2) अत्यधिक रसोद्दीपक वर्णन

(3) ऊहात्मक वर्णन (4) अंगों के गुण रंग, व्यापार एवं मारक प्रभाव दिखाने हेतु रूढ़ उपमानों से साम्यमूलक पर भावना शून्य वर्णन ।

इनमें प्रथम प्रकार का वर्णन श्रेष्ठ है । दूसरे में मांसलता का पुट है । तृतीय में बुद्धि की कसरत एवं चतुर्थ में पुरानी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है ।

रसनिधि ने कहीं-कहीं मौलिक कल्पना के बल पर चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है, यथा - यह कटि प्रेमी को काटने वाली है इसलिए इसका नाम कटि पड़ा ।[1] राम सतसई में ऊहात्मकता एवं विक्रम सतसई में वासना का पुट दृष्टिगोचर होता है । मतिराम ने सतसई में नखशिख वर्णन में उत्तम रुचि प्रदर्शित की है ।

## शृंगार रस के उद्दीपन विभाव

भरत मुनि के नाट्य शास्त्रानुसार मानुषी एवं प्राकृत दोनों ही प्रकार के उपकरण शृंगार रस के उद्दीपन विभाव होते हैं ।[2] रीतिकालीन शृंगारिक सतसईकारों ने विशेषतः मानुषी उद्दीपन विभावान्तर्गत नायिकाओं के । यौवनालंकार अथवा । "हाव" की वर्णना की है तथा प्राकृत उद्दीपन विभावान्तर्गत षट् ऋतु वर्णन किया है ।

शृंगार रस के आलम्बन विभाव सिद्धान्ततः नायक-नायिका हैं, परन्तु व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नायिका ही आलम्बन ठहरती है ।[3] अतः रीतिकालीन सतसईकारों ने उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नायिकाओं की वे मनोहारी चेष्टाएँ, जो नायक के मन में रतिभाव को उद्दीप्त करती हैं, काव्य शास्त्र में उन्हें "हाव" की संज्ञा दी गई है । साहित्य दर्पण में इनकी संख्या 18 मानी गई है ।

कविवर बिहारी ने इन 18 हावों का सफलतापूर्वक चित्रण किया है । चाहे हाव चित्रण शास्त्रीय लक्षणों को ध्यान में रखकर किया हो अथवा स्वतन्त्र रूप से किन्तु इनमें सरसतापूर्ण मात्रा में विद्यमान है । इनमें कवि कल्पना शक्ति, वास्तविक

---

(1) रसनिधि सतसई दो० सं० - 358

(2) शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन - डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी पृ० - 16

(3) - वही -

अनुभूतियों से सामग्री ग्रहण करती हुई आगे बढ़ती है । वस्तुतः, बिहारी इस क्षेत्र में ज्ञान और चमत्कार के प्रदर्शन की प्रवृत्ति से बचकर चले हैं । [1]

मतिराम ने "रसराज" में दस हावों के लक्षण- उदाहरण दिए हैं और इन उदाहरणों को "मतिराम सतसई" में भी देखा जा सकता है । इसके अतिरिक्त साहित्य दर्पण में निर्दिष्ट अन्य हाव भी देखे जा सकते हैं इनके दोहों में सरसता एवं सहजता दर्शनीय है ।

विक्रमसाहि ने भले ही शास्त्रीय दृष्टि से समस्त हावों की वर्णना न की हो, किन्तु इनके हाव चित्रण अत्यन्त मनोहारी एवं दर्शनीय हैं ।

रामसहाय सतसई में साहित्य दर्पण में निर्दिष्ट 18 हावों । सात्त्विक अलंकारों । में से 11 की सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति की गई है, जिसके उदाहरण योषितालंकारों के प्रसंग में पहले ही दर्शाये जा चुके हैं । इनमें सरसता एवं सहजता का समन्वय है ।

रामसहाय एवं रसनिधि ने भी कतिपय हावों को अभिव्यक्त किया है ।

## षड्‌ ऋतु वर्णन

रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसईकारों ने षड्‌ ऋतु वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति का उद्‌दीपन रूप में चित्रण किया है । प्रायः सतसईकारों ने विरह में प्रकृति का उद्‌दीपन रूप से वर्णन किया है । संयोग में बसन्त और वर्षा का ही अधिकांश वर्णन मिलता है ।

बिहारी को सबसे अधिक प्रिय बसन्त है, उसके पश्चात वर्षा वर्णन । शेष ऋतुओं में से शरद, शिशिर आदि का वर्णन तो संभवतः ऋतुओं की संख्या पूरी करने के लिए ही किया है ।

मतिराम ने कतिपय ऋतुएं - बसन्त, वर्षा, शरद से संबंधित प्रकृति उद्‌दीपन रूप में अत्यल्प दोहे लिखे हैं ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है, कि रामसहाय ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने संयोगकाल में ग्रीष्म को छोड़कर, षड्‌ऋतुओं का संयोग और वियोग काल में विस्तृत वर्णन किया है । इनका प्रकृति वर्णन सरल और हृदयग्राही है ।

---

1- महाकवि बिहारी का श्रृंगार निरूपण - डा० गणपति चन्द्र गुप्त - पृ० 24 - 25

## अनुभाव योजना

रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसईकारों की सतसइयों में प्रयुक्त कायिक अनुभावों का उल्लेख हम " हाव " शीर्षक के अन्तर्गत कर चुके हैं, क्योंकि नायिका की जो चेष्टाएँ नायक के लिए उद्दीपन हैं, वही नायिका को आश्रय की दृष्टि से देखने से अनुभाव सिद्ध होती हैं ।

नायिका के सात्विक अनुभाव की वर्णना इन सतसईकारों की एक प्रमुख विशेषता रही है, अतः इसी आधार पर इनकी तुलना की जानी चाहिए ।

बिहारी एवं मतिराम ने आठों सात्विक भावों की वर्णना की है, किन्तु रामधर की एक विशेषता यह है कि इन्होंने एक दोहे में दो - दो, तीन - तीन सात्विक भावों का मनोहारी चित्रण किया है । [1]

### संचारी भाव :-

संचारी भावों की संख्या 33 है । रामधर ने भी अन्य सतसईकारों की भाँति श्रृंगार रसोचित समस्तप्राय संचारी भावों की वर्णना की है ।

## // विप्रलम्भ श्रृंगार //

संस्कृत के आचार्यों ने विप्रलम्भ श्रृंगार के चार भेदों - पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण - का विवेचन किया है । " सतसईकारों में करुण कविता का अभाव है, शेष तीनों भेदों में परम्परा का पालन किया गया है । अधिकांश सफलता मान वर्णन में मिली है ।"[2] यहाँ यह भी ध्यातव्य है, कि श्रृंगारिक सतसईकारों ने प्रवास विप्रलम्भ के अन्तर्गत विरहजन्य नायिका की दस कामदशाओं का चित्रण [illegible] किया है ।

मतिराम ने " रसराज " के वियोग श्रृंगार के भेदों के उदाहरण स्वरूप दोहों का समावेश " मतिराम सतसई " में कर दिया है, अतः पूर्वानुराग, मान, प्रवास विप्रलम्भ श्रृंगार के भेद - उपभेदों का इस सतसई में वर्णन किया गया है । विशेष तथ्य यह है कि जहाँ संस्कृत व हिन्दी आचार्यों ने प्रवास विप्रलम्भ की दस दशाओं का उल्लेख किया है, इन्होंने " श्री विरह की नव दशाओं " को ही मान्यता दी है । " मरण " दशा का नामोल्लेख नहीं किया है । [3]

---

1- रामधर सतसई दोहा सं० - 205, 128 आदि । 2- रीतिकालीन श्रृं० सत० का तुल० अध्ययन - डा० पुष्पलता-पृ० 132 । 3- रसराज सम्पादक कृष्णबिहारी मिश्र पृ०- 358

बिहारी ने पूर्वराग गुणश्रवण द्वारा, साक्षात् दर्शन एवं स्वप्न दर्शन जन्य तीनों भेदों का चित्रण किया है । मान के अन्तर्गत प्रणय मान - नायिकागत, नायक गत एवं उभयगत - का चित्रण किया है । ईर्ष्या मान में भी इन्हें सफलता मिली है । प्रवासगत नायिका के विरह की दस काम दशाओं की वर्णना की है, किन्तु संताप, दौर्बल्य, तन्मयता एवं उन्माद में इन्हें अधिक सफलता मिल ी है । बिहारी की प्रवास वर्णनगत मार्मिक उपलब्धियों का उल्लेख डा० देशराज सिंह भाटी ने किया है । " बिहारी द्वारा विप्रलम्भ का वर्णन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवं मर्मस्पर्शी है । कहीं-कहीं आलंकारिक या ऊहात्मक शैली के कारण सहज भावों की प्रभावशीलता को अवश्य क्षति पहुँची है ।"[1]

राजधर सतसई में पूर्वानुराग प्रायः दर्शन जन्य है । इन्होंने नायिकारब्ध एवं नायकारब्ध दोनों प्रकार के पूर्वानुराग का चित्रण किया है ।इन्होंने साहित्य दर्पण में निर्दिष्ट काम दशाओं में से अभिलाषा, उद्वेग, स्मृति, गुणकथन आदि की वर्णना की है । राजधर ने प्रणयमान और ईर्ष्या मान दोनों का वर्णन किया है । मान भंग के उपायों में राजधर ने "भेद" एवं "नति" का चित्रण किया है । प्रवास के तीनों भेद - [1] भावी प्रवास [2] वर्तमान प्रवास एवं [3] भूत प्रवास - का वर्णन राजधर सतसई में देखा जा सकता है । विरह में नायिका की दसों काम दशाओं का चित्रण राजधर सतसई में तो है ही, साथ ही स्वप्न में मिलन, सन्देश प्रेषण आदि की सुन्दर वर्णना राजधर सतसई की विशेषता है ।राजधर के विरह वर्णन में अपेक्षाकृत सहजता दृष्टव्य है ।

इस प्रकार विरह वर्णना की शास्त्रीय दृष्टि से मतिराम एवं बिहारी के पश्चात राजधर का ही स्थान सिद्ध होता है ।

अन्य रस :-
======

शृंगारिक सतसइयों में अन्य रसों का गौण स्थान स्वाभाविक ही है । बिहारी ने कतिपय दोहे - हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, शान्त, अद्भुत - रस से संबंधित लिखे हैं ।

-----------------------------------------

1- बिहारी और उनका साहित्य - डा० देशराज सिंह भाटी, पृ० - 160 - 61

बिहारी के पश्चात् राजधर ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने अन्य रसों में हास्य,[1] शान्त,[2] वात्सल्य[3] एवं वीर रस[4] को छुटपुट स्थान दिया है ।

## भक्ति

प्रायः रीतिकालीन शृंगारिक सतसईकारों ने शृंगार रस के इष्टदेव राधा - कृष्ण की भक्ति से संबंधित दोहे लिखे हैं । राम सतसई में राम भक्ति से संबंधित दोहे अपेक्षाकृत अधिक हैं । बिहारी ने " त्यौं त्यौं हमको सेइयौ, [illegible] नन्द किशोर" कहकर सभी देवी देवताओं को भगवान का स्वरूप कहकर समन्वय स्थापन का प्रयत्न किया है । यह राजधर सतसई की ही विशेषता है कि इसमें प्रायः समस्त देवी-देवता -- गणेश, सरस्वती, राम-जानकी, राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती, भैरव जी, गंगा जी आदि - से संबंधित भक्ति परक दोहे इसमें देखे जा सकते हैं । इस प्रकार राजधर भक्ति की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ समन्वयवादी सतसईकार सिद्ध होते हैं ।

## नीति

प्रायः सतसईकारों ने यत्र-तत्र नीति संबंधित दोहे भी लिखे हैं । जिनमें सज्जनों की प्रशंसा, सत्संग महिमा , खल निन्दा, [illegible] आर्थिक सुविधाएँ एवं व्यावहारिक जीवन से संबंधित नीति परक दोहे लिखे हैं । बिहारी के नीति परक संबंधित दोहों में चमत्कार प्रदर्शन एवं अलंकरण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है, किन्तु राजधर के नीति संबंधी दोहों में कहीं-कहीं शृंगारिकता का पुट है । शृंगारिक सतसई में नीति संबंधी दोहों में भी शृंगारिकता का समन्वय राजधर की अपनी विशेषता है एवं उनकी श्रेष्ठता सिद्ध करता है ।[5]

---

1- राजधर सतसई - दो० सं० - 80
2- " " - दो० सं० - 392
3- " " - दो० सं० - 288 29,265
4- " " - दो० सं० - 9
5- " " - दो० सं० - 45,214 इत्यादि ।

## राज प्रशस्ति

सतसइयों में राज प्रशस्ति परक दोहे अत्यल्प प्राप्त होते हैं। मात्र बिहारी, मतिराम एवं राजधर ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में दोहे लिखे हैं। प्रायः इन दोहों में आश्रयदाता राजाओं की वीरता एवं दानशीलता का वर्णन देखने को मिलता है। रामसहाय एवं रसनिधि ने इस प्रकार के दोहे लिखने को महत्व नहीं दिया और फिर विक्रमसाहि तो स्वयं ही राजा थे। डा० पुष्प लता के अनुसार बिहारी और मतिराम के इन प्रशस्ति परक दोहों के आधार पर कहा जा सकता है कि दोनों ही कवि अपने आश्रयदाताओं की स्तुति करने में पूर्णतः सफल रहे हैं। यदि भाव सौन्दर्य की दृष्टि से देखा जाय तो इन दोहों में उसका नितान्त अभाव पाया जाता है। इनको पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है, कि मानो दोनों ही कवियों ने परम्परा का पालन मात्र ही किया है। अपनी कला का चमत्कार दिखाने का प्रयत्न नहीं किया है।[1] यदि हम राजधर सतसई के प्रशस्ति परक दोहों पर दृष्टिपात करें तो दूसरी ही बात समझ आती है। एक तो महाराज उदोत सिंह इतिहास के आधार पर एक वीर एवं दानी राजा थे, अतः कवि के प्रशस्ति परक दोहों में सत्य का समावेश है। साथ ही राजधर ने कहीं-कहीं "राजधर" शब्द को श्लिष्ट रूप प्रयुक्त करके अर्थात राजधर= आश्रयदाता राजा एवं राजधर = स्वयं कवि का नाम - चमत्कृति उत्पन्न करने में साफल्य प्राप्त किया है। इस प्रकार के दोहों में राजधर ने राज प्रशस्ति के साथ-साथ आत्म प्रशंसा भी की है। अतः कहा जा सकता है, राजधर बिहारी एवं मतिराम की तुलना में इस विषय में श्रेष्ठ हैं।

## बहुज्ञता

यह बात ठीक है कि कवि को बहुत से विषयों का ज्ञान होता है, किन्तु जब कवि अपने पांडित्य प्रदर्शन हेतु क्लिष्ट सिद्धान्तों अथवा तथ्यों को अपनी कविता में ठूंस देता है, तो यह प्रवृत्ति उसके भावोत्कर्ष में बाधक ही सिद्ध होती है। अतः इसे हम दोष ही कहेंगे। डा० गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार बिहारी ने अपने अनेक

---

1- रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन - डा० पुष्प लता - पृ०

...ता में गणित, ज्योतिष, वैद्यक आदि के ज्ञान का पुट दिया है, जो काव्य की सरसता में बाधक सिद्ध होता है ।[1] मतिराम में भी बहुज्ञता प्रदर्शन की प्रवृत्ति देखी जा सकती है, किन्तु उनकी बहुज्ञता इतनी क्लिष्ट नहीं है जितनी बिहारी की ।[2] इस दोष से रामसहाय सर्वथा मुक्त हैं । उन्होंने कहीं भी बहुज्ञता का प्रदर्शन करके विषय को क्लिष्ट ग्राह्य नहीं बनाया है ।

## प्रकृति चित्रण

रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसईकारों ने प्रकृति वर्णन प्रायः परम्परागत है । सतसईकारों ने प्रायः प्रकृति के उद्दीपन रूप को ही गृहीत किया है । अतः इनका प्रकृति वर्णन प्रमुखतः षड्ऋतु के वर्णन की परिपाटी में समाविष्ट हो जाता है ।

डा० गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार बिहारी को सबसे अधिक प्रिय वसंत वर्णन है, उसके पश्चात वर्षा वर्णन । शेष ऋतुओं में से शरद, शिशिर आदि का चित्र वर्णन तो संभवतया ऋतुओं की संख्या पूरी करने के लिये किया गया है ।[3] बिहारी की प्रकृति वर्णन के क्षेत्र में सबसे अधिक सफलता मानवीकरण संबंधी दोहों में मिली है ।[4] श्रृंगार रस के उद्दीपन की दृष्टि से उनका प्रकृति वर्णन सफल कहा जा सकता है ।[5]

रामसहाय ने प्रकृति के सभी रूपों- आलम्बन, उद्दीपन, उपदेशात्मक, अलंकार, और मानवीकरण - का चित्रण किया है । षड्ऋतु वर्णन के अन्तर्गत इन्होंने संयोग एवं वियोग दोनों कालों में प्रकृति का वर्णन प्रायः उद्दीपन रूप में किया है । इसमें रामसहाय ने प्रवत्स्यत्पतिका नायिका में षड्ऋतुओं का क्रमशः आरोप करके प्रकृति के अलंकारिक रूप में अद्भुत चमत्कार प्रदर्शित किया है, जो अन्य किसी सतसईकार ने नहीं किया है । इन्होंने प्रकृति के आलम्बन रूप वर्णन में अन्य सतसईकारों की तुलना में अधिक साफल्य प्राप्त किया है ।[6] इस प्रकार हम देखते हैं कि रामसहाय को विशेषतः प्रकृति के आलम्बन, अलंकार एवं साधारणतः उद्दीपन रूप चित्रण में अन्य सतसईकारों में श्रेष्ठ कहा जा सकता है ।

---

1- महाकवि बिहारी का श्रृंगार निरूपण - डा० गणपति चन्द्र गुप्त - पृ० 52
2- मतिराम ग्रन्थावली (समीक्षा)- डा० कृष्ण बिहारी मिश्र - पृ० - 92, 93, 94
3- महाकवि बिहारी का श्रृंगार निरूपण - डा० गणपति चन्द्र गुप्त - पृ० - 35
4- 〃 〃 〃 〃 〃 〃 - पृ० - 36
5- 〃 〃 〃 〃 〃 〃 - पृ० - 37
6- प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्तर्गत शीर्षक "प्रकृति का चित्रण", वि०वि० हेतु देखिए ।

:0:0:0:0:0:0:0:0:0:0:

**कला पक्ष**

:0:0:0:0:0:0:0:0:0:0:

**भाषा :-**

रीतिकालीन श्रृंगारिक सतसइयों में ब्रज भाषा प्रयुक्त हुई है । ब्रज भाषा का काव्य क्षेत्र बहुत विस्तृत रहा है । ब्रज प्रदेश के अतिरिक्त राजपूताना, बुन्देलखण्ड, अवध मध्य भारत, बिहार, गुजरात और महाराष्ट्र तक इस भाषा का काव्यभाषा के रूप में प्रचार था ।[1]

डा० विजयेन्द्र स्नातक, के अनुसार बिहारी ने समास पद्धति स्वीकार करके ब्रज भाषा को ऐसा परिष्कृत रूप दिया जो व्याकरण की दृष्टि से सुगठित है । मुहावरों का प्रयोग प्रसंगीय और समर्थ पदावली के समन्वय से शोभन बन पड़ा है । भाषा पर सच्चा अधिकार रखने वाला कवि ही ऐसी प्रौढ़, प्रांजल भाषा का प्रयोग कर सकता है ।[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार मतिराम की भाषा स्वाभाविक एवं अकृत्रिम है । भाषा शब्दाडम्बर से सर्वथा मुक्त है - केवल अनुप्रास के चमत्कार के लिए अशक्त शब्दों की भरती कहीं नहीं है । जितने शब्द और वाक्य हैं, वे सब भावव्यंजना में ही प्रयुक्त हैं ।[3]

विक्रमसाहि की भाषा अत्यन्त मधुर एवं मर्मस्पर्शी है । बीच-बीच में उर्दू के शब्दों के प्रयोग से रस को और अधिक सम्प्रेषणीयता प्रदान की गई है ।

इसी प्रकार राम सतसई की भाषा भी सरल एवं स्वाभाविक है । रसनिधि की भाषा में उर्दू और फारसी के शब्दों की भरमार है, अतः भाषा में वैविध्य दृष्टिगोचर होता है ।

रामसहाय की भाषा अत्यन्त सरल और सरस है । इन्होंने असमस्त पदों को प्रयोग किया है ।

भाषा के गुणों की दृष्टि से तुलना करने पर हम देखते हैं, कि भाषा की रमणीयता का बिहारी ने अत्यधिक ध्यान रखा है । माधुर्य गुण के अनुरूप वृत्तियों का विन्यास, शब्दों का चयन, अनुप्रास का विधान बिहारी सतसई की विशेषता है ।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भाग -6, सं० डा० नगेन्द्र, पृ०- 399
(2) ---------- वही ---------- पृ०- 400
(3) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ० रामचन्द्र शुक्ल, पृ०- 243,244
(4) हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भाग -6, सं० डा० नगेन्द्र पृ०- 400

मतिराम की सी रसस्निग्ध और प्रसाद पूर्ण भाषा रीति का अनुसरण करने वाले कवियों में बहुत कम मिलती है ।[1] विक्रम सतसई, राम सतसई एवं रसनिधि सतसई की भाषा माधुर्य एवं प्रसाद गुण से युक्त है ।

राजधर सतसई की भाषा भी माधुर्य-प्रसाद गुणोपेत है, किन्तु प्रसाद का ही प्राधान्य है । मात्र एकाध दोहे जो वीर रस से संबंधित हैं, उनमें ओजगुण देखना संभव है ।

## अलंकार :-

रीतिकाल में अलंकरण की प्रवृत्ति एक सामान्य विशेषता है । बिहारी सतसई के अनेक दोहों में शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का प्रयोग यत्नपूर्वक हुआ है, जो स्वयं बिहारी के शब्दों में उनकी भावनाओं की " सुकुमारता के लिए भुजभार" सिद्ध होता है । इसके अतिरिक्त अलंकार प्रियता के कारण कहीं-कहीं तो काव्य का अर्थ अस्पष्ट हो गया है । इन्होंने श्लेष का अच्छा चमत्कार दिखाया है । काव्य का अर्थ ढूँढ़ने के लिए पाठक की बुद्धि को अच्छा व्यायाम करना पड़ता है । इसी प्रकार विरह वर्णन संबंधी कई दोहों में भी चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति मिलती है ।[2]

मतिराम रचित " ललित ललाम " में मात्र अर्थालंकारों का वर्णन है । इसमें अलंकारों के लक्षण एवं उनके उदाहरण दिए हैं । इन्हीं उदाहरण स्वरूप दोहों को " मतिराम सतसई " में समाविष्ट कर दिया गया है । काव्यलिंग का अभाव है, परन्तु भाषा भूषण के समान "चित्र" का समावेश है । आचार्य शुक्ल के अनुसार "ललित ललाम" के अलंकारों के उदाहरण बहुत सरस एवं स्पष्ट हैं ।[3] इसके अतिरिक्त इन्होंने शब्दालंकारों का प्रयोग भी किया है, किन्तु कहीं-कहीं इनकी सतसई में अनुप्रास का अनुचित मोह [illegible] दिखाई पड़ता है ।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आ० रामचन्द्र शुक्ल - पृ० - 244
(2) महाकवि बिहारी का शृंगार निरूपण - डा० गणपति चन्द्र गुप्त - पृ० -53
(3) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आ० रामचन्द्र शुक्ल - पृ० - 244
(4) " " " " " "

विक्रम, राम सहाय एवं रसनिधि ने भी शब्दालंकार एवं अर्थालंकारों को यत्र-तत्र प्रयुक्त किया है, पर कहीं-कहीं ये चमत्कार प्रदर्शन के कारण भाव को आघात पहुँचाते हैं, परन्तु साधारणतया समुचित प्रयोग करके भावोत्कर्ष में सहायक सिद्ध होते हैं ।

राजधर ने शब्दालंकार एवं अर्थालंकारों का समुचित प्रयोग किया है, जो भावोत्कर्ष में सहायक है । वैसे तो इन्होंने अनेक अलंकारों का सफल प्रयोग किया है, किन्तु शब्दालंकारों में अनुप्रास, पदमैत्री एवं यमक से इन्हें विशेष प्रेम है । अर्थालंकारों में उत्प्रेक्षा एवं रूपक में इन्होंने अपेक्षाकृत अधिक रुचि प्रदर्शित की है ।

कल्पना की समाहार शक्ति में बिहारी बेजोड़ हैं, जिन्होंने गागर में सागर भरने वाली उक्ति चरितार्थ की है । शब्द शक्ति की दृष्टि से बिहारी सतसई व्यंजना प्रधान है एवं शेष सतसइयों में लक्षणा एवं [illegible] अभिधा का प्राधान्य है ।

निष्कर्ष :-

सारांशतः रीतिकालीन शृंगारिक सतसईकारों का भावपक्ष एवं कलापक्ष की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करने पर बिहारी ही सर्वश्रेष्ठ सतसईकार सिद्ध होते हैं । हिन्दी में शृंगारिक सतसई परम्परा का श्री गणेश करने का श्रेय भी इन्हें प्राप्त है । इन्हीं को आदर्श मानकर अन्य रीतिकालीन शृंगारिक सतसईकारों ने इनका अनुसरण एवं अनुकरण किया है । डा० विजयेन्द्र स्नातक ने बिहारी के संबंध में निष्कर्षतः कहा है, "बिहारी के काव्य पर चाहे ध्वनि काव्य की दृष्टि से विचार करें, चाहे रस परिपाक की दृष्टि से, चाहे बिहारी की अलंकार योजना को लें, चाहे नायिका भेद या नखशिख पर दृष्टिपात करें अथवा अन्योक्ति और सूक्ति का अवगाहन करें, बिहारी का काव्य सभी दृष्टियों से अनुपम प्रतीत होता है ।"[1]

इसके अतिरिक्त डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार " बिहारी ने ब्रजभाषा को इतना परिनिष्ठित कर दिया कि वह आगे के कवियों के लिए पुष्ट आधार ही बन गया ।"[2] डा० गणपति चन्द्र ने इनके अनेक गुणों और दोषों पर दृष्टिपात किया है । इनके अनुसार " : बिहारी सतसई में अनेक ऐसे दोष विद्यमान हैं जिनके कारण उसकी मुक्तक शैली का महत्व न्यून पड़ जाता है । सबसे पहला तो दोष यही है कि उनके दोहों में पाठक को एकाएक उनका प्रसंग ही समझ में नहीं आता । स्वयं आचार्य शुक्ल ने स्वीकार किया है, कि बिहारी सतसई में पाठक को विशिष्ट कल्पना

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(1) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग -6, (सं० डा० नगेन्द्र) पृ० - 402

(2) बिहारी वैभव - डा० भगीरथ मिश्र - पृ० 96

करनी पड़ती है । जिस समास शक्ति की इतनी प्रशंसा की गई है, उसमें रसानुभूति की दृष्टि से दोष है । बिहारी का पाठक दोहों को पढ़ते ही रसमग्न नहीं हो पाता है अपितु उसे अर्थ समझने के लिए उसके मस्तिष्क को अच्छा व्यायाम करना पड़ता है । —— बिहारी के अनेक दोहे कोरी सूक्तियाँ हैं, जिनमें रसानुभूति का योग नहीं मिलता । —— शुक्ल जी ने मुक्तक काव्य को गुलदस्ते की उपमा दी है किन्तु बिहारी के इस गुलदस्ते में फूलों के साथ काँटे भी विद्यमान हैं, जो कभी-कभी पाठक के हृदय को रससिक्त करने के स्थान पर उसके मस्तिष्क को कुरेद देते हैं ।[1]

मतिराम ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ " रसराज" से नायिका भेद, संयोग एवं वियोग शृंगार के भेद-उपभेदों के उदाहरणों का एवं "ललित ललाम" से अलंकारों के उदाहरण स्वरूप दोहों का मतिराम सतसई में भी समावेश कर देने से इनकी सतसई शास्त्रीय भेदोपभेदों की पूर्णता की दृष्टि से समृद्ध है । प्रेम की सुकुमार व्यंजना, नखशिख वर्णन, संयोग एवं वियोग का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हमें मतिराम सतसई में उपलब्ध होता है । किन्तु, बिहारी जैसा उद्दाम शृंगार रस यहाँ नहीं है । सघन धीर गम्भीर प्रवाहिनी की मंथर गतिशीलता इस सतसई में उपलब्ध है । कहीं-कहीं बिहारी का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है । बिहारी सतसई के दोहों की तरह इसके दोहों का प्रसंग एवं ध्वनित अर्थ समझने के लिए दिमागी कसरत नहीं करनी पड़ती, क्योंकि इस सतसई में माधुर्य के साथ-साथ प्रसाद गुण विद्यमान है । फिर भी, इस सतसई का स्थान बिहारी सतसई के पश्चात् ही ठहरता है ।

विक्रम सतसई में प्रमुखता तो शृंगार रस की ही है, किन्तु साथ ही साथ शान्त रस का भी प्रयोग किया है । शृंगार के विरोधी रस का शृंगारिक सतसई में रखना हमारी दृष्टि से एक दोष ही कहना चाहिये । यह बात ठीक है, कि दोहा अपने आप में पूर्ण होता है, किन्तु शृंगारिक मूड में शान्त रस के दोहे पढ़ना अखरता ही है । इस सतसई में संयोग शृंगार का वर्णन अत्यन्त चारुता एवं भव्यतापूर्ण ढंग से किया है । अनुभावों की व्यंजना साफल्य इस सतसईकार की अपनी विशेषता है । यद्यपि इसमें बिहारी के दोहों जैसी नक्काशी और उच्च कोटि के कवित्व का अभाव है, फिर भी सतसई परम्परा के रूप में इसका महत्व है ।

---

1. बिहारी का शृंगार निरूपण - डा० गणपति चन्द्र मिश्र पृ० - 129, 130

रसनिधि प्रमुखतः प्रेम के कवि हैं। प्रेम में तो कवि इतना लीन है, कि उसकी कविता असीमता की सीमाओं का स्पर्श कर बैठती है। इनकी भाषा में उर्दू और फारसी के शब्दों की अधिक भरमार है, अतः शैलीगत वैविध्य प्राप्त होता है।

राम सतसई पर बिहारी एवं मतिराम दोनों का यत्किंचित प्रभाव परिलक्षित होता है। इस नखशिख वर्णन में सतसईकार का मन खूब रमा है। सतसई की भाषा सरल एवं सहज है। इसमें माधुर्य एवं प्रसाद गुण का प्राचुर्य है। कवि सुरुचि सम्पन्न है। इस सतसई में रस का पूर्ण परिपाक परिलक्षित होता है।

रामसहाय ने श्रृंगार के दोनों भेदों - संयोग एवं विप्रलम्भ - की रमणीय वर्णना की है, किन्तु संयोग श्रृंगार का प्राधान्य है।

शास्त्रीय दृष्टि से संयोग और विप्रलम्भ के अधिकांश भेदोपभेदों की वर्णना रामसहाय सतसई में देखना सम्भव है। यदि, मतिराम सतसई में स्वतः ग्रन्थ - "रसराज" - के दोहा स्वतः उदाहरणों का समावेश होने से इस सतसई में भी ही श्रृंगार के भेदोपभेद पूर्ण रूप से प्राप्त हो जायें, किन्तु बिहारी सतसई के पश्चात् श्रृंगार के भेदोपभेदों की दृष्टि से रामसहाय का ही स्थान सिद्ध होता है। रस परिपाक की दृष्टि से भी रामसहाय को साफल्य प्राप्त है। रामसहाय वस्तुतः सौन्दर्य के कवि हैं, अतः इन्होंने श्रृंगार रस की प्रमुख आलम्बन नायिका के सौन्दर्य निरूपण - नखशिख - चित्रण में विशिष्ट रुचि प्रदर्शित की है। प्रेम व्यंजना में भी इन्हें सामान्य सफलता मिली है। अनुभाव वर्णन में बिहारी एवं विक्रमादित्य के पश्चात इन्हीं का स्थान है।

प्रकृति चित्रण में प्रकृति के आलम्बन रूप एवं अलंकारिक रूप वर्णन में रामसहाय अन्य सतसईकारों से श्रेष्ठ हैं।

भक्ति-भावना की दृष्टि से इन्होंने सर्वाधिक देवी देवताओं की स्तुति वन्दनादि करके अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समन्वयवादी सिद्ध किया है। नीति संबंधी दोहों में भी श्रृंगारिकता का पुट है, जो श्रृंगारिक सतसई की दृष्टि से उचित ही है।

इनकी भाषा अत्यन्त सरल-सहज है, जो माधुर्य एवं प्रसाद गुण युक्त है । इनकी भाषा सदैव भावानुकारिणी है, कतिपय दोहों में जहाँ वीर रस की वर्णना है, भाषा ओज गुण से परिपूर्ण हो उठी है । इन्होंने असमस्त पदों का प्रयोग किया है । सारतः, राजधर भाषा के प्रसाद गुण की दृष्टि से सभी सतसईकारों से श्रेष्ठ हैं ।

अलंकार नियोजन सहज और रसोत्कर्ष में सहायक सिद्ध होता है । यह अच्छा ही है, कि इन्होंने आलंकारिक शैली का प्रयोग एक-दो दोहों में ही किया है ।

निष्कर्षतः, समग्ररूपेण तुलना करने पर रीतिकालीन शृंगारिक सतसईकारों में बिहारी और मतिराम के पश्चात् राजधर का ही स्थान सिद्ध होता है ।

॥ समाप्त ॥

# सन्दर्भ - ग्रन्थ - सूची

## संस्कृत ग्रन्थ


| | | |
|---|---|---|
| ।1। | अग्नि पुराण, व्यास,<br>सं0 आचार्य बलदेव उपाध्याय | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी - 1,<br>तृतीय संस्करण, 1970 ई0 |
| ।2। | अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कालिदास,<br>हि0व्या0-डा0 महावीर प्रसाद | कमला प्रकाशन, स्वरूप नगर,<br>कानपुर , 1975 ई0 |
| ।3। | अलंकार सर्वस्वम्, रुय्यक,<br>हि0व्या0 डा0 रेवाप्रसाद द्विवेदी | चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस,<br>वाराणसी - 1 |
| ।4। | अष्टाध्यायी, पाणिनि, श्री वासुदेव<br>दीक्षित, बालमनोरमा व्याख्या | मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली |
| ।5। | आर्या सप्तशती, गोवर्धनाचार्य,<br>हि0व्या0 पं0 रमाकान्त त्रिपाठी | चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी - 1,<br>तृतीय संस्करण, सन् 1965 ई0 |
| ।6। | आर्या सप्तशती,<br>पर्वतीय पं0 विश्वेश्वर | काव्यमाला - 21 ।सं0 मथुरानाथ<br>शास्त्री । |
| ।7। | काव्यानुशासन, हेमचन्द्र | महावीर जैन विद्यालय बम्बई,1938ई0 |
| ।8। | काव्यादर्श, दण्डी | जीवानन्द विद्यासागर व्याख्या सहित<br>कैलकटा, 1952 |
| ।9। | काव्यालंकार, भामह | बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना |
| ।10। | काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, वामन,<br>व्या0 आचार्य विश्वेश्वर | आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6,<br>1954 ई0 |
| ।11। | काव्यप्रकाश, मम्मटाचार्य,<br>सं0 डा0 श्रीनिवास शास्त्री | साहित्य भण्डार मेरठ,तृतीय संस्करण<br>1970 ई0 |
| ।12। | काव्यमीमांसा, राजशेखर<br>हि0व्या0 केदारनाथ शर्मा | चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी- 1 |
| ।13। | कामसूत्र, वात्स्यायन,<br>हि0व्या0 देवदत्त शास्त्री | चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी |
| ।14। | कुमार संभव, कालिदास | निर्णय सागर प्रेस,बम्बई,1955 ई0 |
| ।15। | गीत गोविन्द, जयदेव<br>हि0टी0-श्री मोरेश्वरराव देशमुख | ठाकुर प्रसाद एण्ड संस, बुकसेलर,<br>वाराणसी - 1 |
| ।16। | दशरूपक, धनंजय,<br>सं0 डा0 श्रीनिवास शास्त्री | साहित्य भण्डार मेरठ, तृतीय<br>संस्करण, 1970 ई0 |

| | |
|---|---|
| (17) दुर्गासप्तशती<br>अनु०पं० रामनारायणदत्त शास्त्री | गीताप्रेस, गोरखपुर, 29वां संस्करण<br>सं० 2036 |
| (18) ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन | गौतम बुक डिपो, दिल्ली, 1952 ई० |
| (19) नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, सं० पं० बटुकनाथ<br>शर्मा एवं पं० बल्देव उपाध्याय | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी - 1,<br>प्रथम संस्करण |
| (20) नाट्य दर्पण, रामचन्द्रगुणचन्द्र (हि०व्या०) | दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1961ई० |
| (21) नारदभक्तिसूत्र (प्रेम दर्शन)<br>हि०व्या० श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार | गीताप्रेस गोरखपुर |
| (22) नैषधचरितम्, श्रीहर्ष<br>हि०व्या० शेषराज शर्मा | चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी-1 |
| (23) प्रतापरुद्रयशोभूषण, विद्यानाथ | बालमनोरमा प्रेस, मद्रास, 1950 ई० |
| (24) भर्तृहरि शतक त्रय, भर्तृहरि<br>हि०व्या०-पं०रामनारायण पाठक | ठाकुर प्रसाद एण्ड संस बुकसेलर,<br>वाराणसी - 1 |
| (25) भाव प्रकाशन्, शारदातनय | ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1930ई० |
| (26) महाभारत, वेदव्यास, हि०व्या०<br>पं०रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय"राम" | गीताप्रेस गोरखपुर 1956 ई० |
| (27) मानसागरी, मानसागर | ठाकुर प्रसाद एण्ड संस, वाराणसी-1 |
| (28) रसमंजरी, भानुदत्त<br>हि०व्या० पं० जगन्नाथ पाठक | श्री हरिकृष्ण निबन्ध भवनम्,<br>वाराणसी - 1, 1978 ई० |
| (29) रस तरंगिणी, भानुदत्त,<br>हि०व्या०-पं० सीताराम चतुर्वेदी | श्री हरिकृष्ण निबन्ध भवनम्<br>वाराणसी - 1, 1978 ई० |
| (30) रसार्णवसुधाकर, शिंगभूपाल,<br>सं० टी० वेंकटाचार्य | चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस,<br>वाराणसी - 1 |
| (31) रामायण (वाल्मीकि (हिन्दी अनु०<br>पं० रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय"राम" | गीताप्रेस गोरखपुर तृतीय संस्करण । |
| (32) साहित्य दर्पण, विश्वनाथ,<br>हि०व्या० - डा० सत्यव्रतसिंह | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी - 1<br>तृतीय संस्करण, सं० - 2026 |
| (33) श्रीमद्भगवद्गीता (हि०टी० सहित) | गीताप्रेस गोरखपुर 1970 ई० |

----

## प्राकृत ग्रन्थ


।1। कर्पूरमंजरी, राजशेखर — स्वरेल कालेज, बम्बई - 16

।2। गाथा सप्तशती, सातवाहन हाल, हि0अनु0 डा0 परमानंद शास्त्री — प्रकाशन प्रतिष्ठान, आनन्दपुरी, मेरठ, प्रथम संस्करण, 1965 ई0

।3। प्राकृत भाषाओं का व्याकरण आर0पिशेल, अनु0- डा0 हेमचंद्र — बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना-3 सं0 2015 वि0

।4। प्राकृत पिंगलसूत्र, सं0 लक्ष्मीनाथ भट्ट — निर्णय सागर प्रेस बम्बई, 1894 ई0

।5। वज्जालग्गं, जयवल्लभ — चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी - 1


---

## हिन्दी ग्रन्थ


।1। ओरछा का इतिहास, ठाकुर लक्ष्मणसिंह गौर — डा0 लक्ष्मणसिंह गौर, ओरछा, 7वां सं0, सन् 1978 ई0

।2। कविवर पद्माकर और उनका युग, डा0 व्रजनारायण सिंह — ग्रन्थभारती, देवनगर कानपुर, प्र0सं0 सन् 1966 ई0

।3। काव्य के रूप - बाबू गुलाब राय — आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6, सं0 1975 ई0

।4। किसान सतसई - श्री अमनसिंह तोमर — हिन्दुस्तान बुक डिपो अलीगढ़, प्र0सं0, सन् 1948 ई0

।5। चिन्तामणि (प्रथम भाग) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल — इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्रा0लि0 इलाहाबाद, 1975 ई0

।6। तुलसी सतसई - तुलसीदास सं0 श्याम सुन्दर दास — प्रयाग हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद प्रथम संस्करण, सं0 1931

।7। दयाराम कृत सतसैया - सं0 अंबाशंकर नागर — नागरीप्रचारिणी सभा, काशी सं0 2013

।8। पंकिल सतसई - रामदत्त शर्मा "पंकिल" — हिमाचल पुस्तक भण्डार, गांधी नगर, दिल्ली- 31, प्र0सं0 1980

।9। पद्मावत (जायसी ग्रंथावली) जायसी, सं0 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल — नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी - 1

।10। ब्रजभाषा व्याकरण की रूपरेखा, डा0 प्रेमनारायण टंडन — लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्र0सं0- 1962 ई0

| | | |
|---|---|---|
| 111) | ब्रजभाषा एवं खड़ीबोली के व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन- डा0गैंदालाल शर्मा | प्रकाशन प्रतिष्ठान, आनन्दपुरी, मेरठ प्र0सं0 1965 ई0 |
| 112) | ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद, प्रभुदयाल मीतल | ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा सं0 2010 वि0 |
| 113) | ब्रज सतसई - रामचरित उपाध्याय | इण्डियन प्रेस लि0,प्रयाग प्र0सं0सन्1937ई0 |
| 114) | बिहारी: पं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र | हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस सं0 2004 वि0 |
| 115) | बिहारी की वाग्विभूति, पं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र | हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस सं0 2004 वि0 |
| 116) | बिहारी वैभव - डा0भगीरथ मिश्र | अनुसंधान प्रकाशन,आचार्य नगर, कानपुर, 1967 ई0 |
| 117) | बिहारी रत्नाकर - सं0 जगन्नाथदास "रत्नाकर" | ग्रंथकार, शिवाला, बनारस, द्वि0सं0 1955 ई0 |
| 118) | बिहारी और उनका साहित्य देवराजसिंह भाटी | अशोक प्रकाशन दिल्ली - 6 |
| 119) | बुन्देल वैभव (द्वितीय भाग) पं0 गौरी शंकर द्विवेदी "शंकर" | बुन्देल वैभव ग्रंथमाला, टीकमगढ़ प्र0 सं0 1992 वि0 |
| 120) | बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पं0 गोरेलाल तिवारी | नागरी प्रचारिणी सभा, काशी |
| 121) | भारतीय काव्यशास्त्र - सं0 डा0 कृष्ण बल | राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली - 6 सन् 1969 ई0 |
| 122) | भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका डा0 नगेन्द्र | नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वि0सं0 1963 ई0 |
| 123) | भारतीय साहित्य शास्त्र (दूसरा खण्ड) -पं0 बल्देव उपाध्याय | चौखम्बा विद्यामन्दिर, वाराणसी - 1 |
| 124) | मतिराम कवि और आचार्य डा0 महेन्द्र कुमार | भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, प्र0 सं0 1960 ई0 |
| 125) | मतिराम ग्रंथावली, सं0 कृष्ण बिहारी मिश्र | गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ चतुर्थ सं0 2029 वि0 |
| 126) | मतिराम सतसई, मतिराम सं0 श्याम सुन्दर दास | प्रयाग हिन्दुस्तानी एकेडमी,इलाहाबाद प्र0 सं0 - 1931 ई0 |

| | |
|---|---|
| 127। महाकवि बिहारी का शृंगार निरूपण- डा० गणपतिचंद्र गुप्त | नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली-6, सं० 1972 |
| 128। मिश्रबन्धु विनोद । भाग - 2 । मिश्रबन्धु | गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ 1970 वि० |
| 129। नंददास ग्रंथावली, सं० ब्रजरत्न दास | नागरी प्रचारिणीसभा, काशी सं० 2014वि० |
| 130। रस मीमांसा -आचार्य रामचन्द्र शुक्ल | नागरी प्रचारिणी सभा,काशी चतुर्थ सं०- 2023 वि० |
| 131। रसनिधि सतसई - रसनिधि, सं० श्याम सुन्दर दास | प्रयाग हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद प्र० सं० - 1931 |
| 132। रहीम सतसई - रहीम सं० मायाशंकर "याज्ञिक" | गोपालदास सेवक साहित्य सदन, काशी |
| 133। रसराज - "मतिराम" सं० रामजी मिश्र | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी -1 प्र० सं० 2017 |
| 134। रस प्रबोध - रसलीन, सं० बाबू रामकृष्ण वर्मा | भारत जीवन प्रेस, काशी प्र० सं० |
| 135। रस विलास - देव, । सं० तिलिवरनाथ शर्मा | साहित्य संसार कलकत्ता सं० - 1961 ई० |
| 136। रसिक प्रिया - केशवदास डा० लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी | मातृभाषा मन्दिर दारागंज प्रयाग, प्र० सं० 1954 ई० |
| 137। रामधर सतसई - पं० रामधर मिश्र सं० डा० मोहनलाल गुप्त "चातक" | बुन्देलखण्ड शोध संस्थान, झांसी सन् 1980 ई० |
| 138। राम सतसई - राम सहाय दास सं० श्यामसुन्दरदास | प्रयाग हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद प्र० सं० 1931 |
| 139। रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता -डा० नगेन्द्र | गौतम बुक डिपो, दिल्ली, सन् 1949 |
| 140। रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना डा० बच्चन सिंह | नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी, प्र० सं० 2015 वि० |
| 141। रीतिकालीन शृंगारिक सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन - डा० पुष्पलता | सहविता प्रकाशन, दिल्ली- 51, प्र० सं०, सन् 1980 ई० |
| 142। रीतिकाव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि डा० वी० वेंकटरमनाय | जवाहर पुस्तकालय मथुरा, प्र० सं० सन् 1972 ई० |
| 143। रीतिकाव्य के स्रोत - डा० रामजी मिश्र | आदर्श साहित्य प्रकाशन दिल्ली - 31 प्र० सं० 1973 ई० |

144। बूंद सतसई - बूंद, सं० श्यामसुन्दरदास — प्रयाग हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद प्र० सं० 1931

145। विक्रम सतसई - विक्रमसाहित, सं० श्यामसुन्दरदास — प्रयाग हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद प्र० सं० 1931

146। वीर सतसई - वियोगीहरि — साहित्य भवन प्रा०लि० इलाहाबाद, सप्तम सं० 1957 ई०

147। सतसई सप्तक - सं० श्यामसुंदरदास — प्रयाग हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद प्र० सं० 1931

148। शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन - डा० राकेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी — सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा - 3 प्र० सं० 2025 वि०

149। सिद्धान्त और अध्ययन - बाबू गुलाब राय — आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली - 6, सन् 1975 ई०

150। शब्द रसायन ।देव ग्रंथावली। देव, सं० डा० लक्ष्मीधर मालवीय — नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, दिल्ली

151। हरिऔध सतसई - अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" — अखिल भारतीय विक्रम परिषद, हरिऔध प्रकाशन मन्दिर, काशी प्र०सं० 1947

152। हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण - डा० किरणकुमारी गुप्त — हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय सं० 2014 वि०

153। हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी-डा० गणपतिचंद्र गुप्त — नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-6, सन् 1972 ई०

154। हिन्दी साहित्य ।उसका उद्भव और विकास। -डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी — अतरचंद कपूर एण्ड संस लि०, प्र० सं० 2020 वि०

155। हिन्दी साहित्य कोश । भाग - 2 । सं० धीरेन्द्र वर्मा — वाराणसी ज्ञान मण्डल लि०, प्र० सं० 2020 वि०

156। हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल — नागरीप्रचारिणी सभा, काशी सं० 2025 वि०

157। हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास । भाग-6। सं० डा० नगेन्द्र — नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, द्वि०सं० सं० 2030 वि०


----

## पत्र - पत्रिकाएँ

।1। कादम्बिनी, नवम्बर 1984

।2। टीकमगढ़ दर्शन, परिशिष्टांक, अप्रैल 1978

।3। समालोचना । सौन्दर्यशास्त्र अंक ।

00000000
000000000000000000
00000000

## संकेतसारिणी

।1। आर्या० - आर्या सप्तशती - गोवर्धनाचार्य

।2। का०प्र० - काव्य प्रकाश - मम्मटाचार्य

।3। कामसूत्र - कामसूत्र - वात्स्यायन

।4। गाथा० - गाथा सप्तशती - हाल

।5। दश० - दशरूपक - धनंजय

।6। ना०शा० - नाट्य शास्त्र - भरतमुनि

।7। प्रता० - प्रतापरुद्रयशोभूषण - विद्यानाथ

।8। रस० - रसमंजरी - भानुदत्त

।9। सा०द० - साहित्य दर्पण - विश्वनाथ

।10। रा०स०टी०सं० - राजधर सतसई टीका संख्या -